D-223

धर्मोपदेशक ग्रन्थमाला के द्वितीय भाग का प्रथमोपदेश

SANATAN DHARAM
S D S
SINGAPORE
SHRI KRISHNA TEMPLE, WAT

श्रीगणेशाय नमः

धर्मप्रकाशः

सत्यार्थप्रकाश दयानन्दतिमिरभास्कर भास्कराभ्रकाशैः संयुतः ।

तस्यैवायम्,

प्रथम समुल्लासः ।

पण्डित कालूराम शास्त्रिणा लिखितः

सोऽयम्

कामताप्रसाद दीक्षितेन करणपुरनाम्निनगरे
मर्चण्टाख्येमुद्रणागारे लाला रामनारायणस्यप्रबन्धेन
मुद्रापयित्वा प्रकाश्यंनीतः

द्वितीयवार १०००] फाल्गुण संवत् १९८५ [मूल्य ७)

नं० १८
मा० मु० पु० D-223

303

श्रीगणेशाय नमः

धर्मप्रकाशः

सत्यार्थप्रकाश दयानन्दतिमिरभास्कर भास्करप्रकाशैःसंयुतः ।

तस्यैवायम्

प्रथम समुल्लासः ।

पण्डित कालूराम शास्त्रिणा लिखितः

सोऽयम्

कामताप्रसाद दीक्षितेन करणपुरनाम्निपत्तने
मर्चण्टाख्येमुद्रणागारे लाला रामनारायणस्यप्रबन्धेन
मुद्रापयित्वा प्रकाश्यंनीतः

द्वितीयवार १०००] फाल्गुण सम्वत् १९८५ [मूल्य ।=)

2)

धर्मप्रकाश पर मिश्रजी की सम्मति।

(जिस समय हम धर्मप्रकाश प्रकाशित करने लगे उस समय विद्या-वारिधिजी ने इस ग्रन्थ के विषय में जो अपनी सम्मति भेजी थी वह यह है)

* धर्मप्रकाशः *

इस समय पं० कालूराम शास्त्रीजी सनातनधर्म जगत् में जो कुछ काम कर रहे हैं वह किसी विज्ञजन से छिपा नहीं है। आपकी निर्माण की हुई ग्रन्थमाला (जिसमें मूर्तिपूजा, अवतार, श्राद्ध, वर्णव्यवस्था, पुराणसिद्धि, आदि मुख्य ग्रन्थ हैं) पाठक अच्छी प्रकार देख चुके हैं, इस वर्ष से आपने इस ग्रन्थमाला में जिस ग्रन्थ का प्रकाश करना आरम्भ किया है वह सनातन-धर्मियों के बड़े काम का ग्रन्थ होगा, कई वर्षों से मेरे पास बराबर सज्जनों के पत्र आते थे कि तुलसीराम रचित—

भास्करप्रकाश का खंडन

तैयार किया जाय। शास्त्रीजी का यह धर्मप्रकाश नामक ग्रन्थ भास्कर प्रकाश के खण्डन में बड़े विचार के साथ आरम्भ हुआ है, इसमें सत्यार्थप्रकाश, फिर दयानन्दतिमिरभास्कर पश्चात् भास्करप्रकाश का लेख उद्धृत करके प्रमाणों के सहित उसका उत्तर देकर सनातनधर्म की पुष्टि इस प्रकार से की गई है कि आर्यसमाज की पोल जानने में और सनातनधर्म का गौरव समझने में यह एक ही ग्रन्थ बहुत होगा। प्रति मास ८० पृष्ठ अर्थात् प्रति वर्ष ९६० पृष्ठ इस ग्रन्थ के धर्मानुरागियों के पास पहुँचा करेंगे वार्षिक मूल्य महसूल सहित ३-) आशा है कि धर्मानुरागी सज्जन एक २ प्रति इस ग्रन्थ की लेकर शास्त्रीजी के उत्साह को बढ़ावेंगे—

अनुग्रहीत

पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र,

ठीनदारपुरा—मुरादाबाद।

नं० 936 नं० १८
D-223
नं० १८ मण्डल

* श्रीहरिः *

SANATAN DHARAM SABHA
स॰ ध॰ स॰
SINGAPORE.
SHRI KRISHNATEMPLE WATERLOO ST.

भूमिका ।

सृष्टि के प्रारम्भकाल से वैक्रमीय सम्वत् १९२० तक इस पवित्र भूमि भारतवर्ष के निवासियों का वेदों पर पूर्ण विश्वास रहा और धर्म्म में श्रद्धा रही। यद्यपि बीच बीच में चार्वाक, बौद्ध आदि आदि धर्मों का भी प्रादुर्भाव हुआ तथापि अन्त में इन धर्म्मों ने हिन्दूधर्म्म के आगे शिर झुकाया। इस कार्य्य से हिन्दू धर्म्म की कीर्ति और भी फैल गई। इसके बाद कई एक सज्जनों ने हिन्दूधर्म को तिलाञ्जली देकर मुसलिम आदि धर्म का ग्रहण भी किया किन्तु इस कोटी में वेही मनुष्य [illegible] जिनका मन किसी स्त्री पर आसक्त होगया था या जो संसारीसुख के पंजे में पड़ कर लक्ष्मीदेवी के लच्चे (अनन्य) सेवक बन चुके थे और जिन सज्जनों ने संसारीसुख को तुच्छ समझा मनुष्य शरीर के कर्त्तव्य पर दृष्टि रक्खी उनके गलों में खड्ग गिरे हाथी के पैरों के नीचे दबाये गये जीवित ही दीवारों में चुनवा दिये गये उन्होंने इन समस्त यातनाओं को स्वीकार किया किन्तु धर्म से स्वप्न में भी विमुख नहीं हुये। इस विषय में आर्य्यावर्त्त की हिस्ट्री के पन्ने के पन्ने भरे पड़े हैं।

काल ने चक्कर खाया। सौभाग्यवश भारतवर्ष में बृटिश गवर्नमेण्ट की हुकूमत हुई, विद्या सीखने पर मनुष्यों की रुचि आई, थोड़े ही दिन बाद योरुप की हिस्ट्री और साइन्सविद्या के पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस अवसर पर जिन मनुष्यों के अन्तःकरण में संस्कारवश वा हिन्दूधर्म के गूढ़ भावों का बीज नहीं बोया गया था उनको साइन्स की शिक्षा पाते ही धार्मिक सिद्धान्त ढकोसले प्रतीत होने लगे, रात दिन धार्मिककार्य्यों या मन्तव्यों पर शंकाओं की बौछार हुई। इन शंकाओं के समय में उस समय के किञ्चित् संस्कृत जाननेवाले स्वामी दयानन्दजी तक भी इन शंकाओं के गिरोह पहुँचने लगे अर्थात् जब से स्वामी दयानन्दजी का संसर्ग अंगरेजी शिक्षित समुदाय के साथ हुआ तब से

स्वामी दयानन्दजी के ऊपर भी रात दिन यही प्रश्न होने लगे कि मूर्तिपूजन से क्या लाभ और गंगास्नान से क्या फायदा, विधवाओं के विवाह क्यों न किये जावें। स्वामी दयानन्दजी का दिमाग वह दिमाग नहीं था जो इन शंकाओं के अकाट्य उत्तर देता। उत्तर न आने के कारण स्वामीजी के चित्त की प्रवृत्ति भी उन्हीं के पीछे २ चली और इन्होंने भी समझ लिया कि यह हिन्दूधर्म एक ऐसा धर्म है कि जिसके ऊपर आनेवाली शंकाओं का कुछ उत्तर ही नहीं हो सकता। वास्तविक में स्वामी दयानन्दजी ने यह बड़ी भारी गलती की कि उन्होंने इन शंकाओं को संस्कृत के विद्वानों से न पूछा यदि वे ऐसा करते तो औरों को न बचा सकते तो कम से कम आप तो इस बहाव में बहने से बच जाते। अस्तु, स्वामीजी स्वतः भी उसी बहाव में बह चले जिसमें अंगरेजी शिक्षित समुदाय बह रहा था। जब इस बहाव में बहे फिर क्या था "गुरु तो गुड़ चेला चीनी होगये" की कहावत को सत्य किया। अंगरेज़ी शिक्षित समुदाय तो उस में आपही बहा किन्तु स्वामी दयानन्दजी ने हिन्दु साहित्य का बहाव भी उधरही को करना चाहा। किसी ग्रन्थ को लिखा कि यह मानने के लायक नहीं क्योंकि पोपों का बनाया है। किसी के लिये लिखा कि यह इतनाही मान्य है शेष अमान्य। किसी के लिये लिखा कि यह प्रमाण तो है किन्तु परतः प्रमाण है और किसी के लिये लिखा कि यह पुस्तक तो स्वतः प्रमाण है परन्तु इसका भाष्य गलत है इसका अर्थ वह ठीक है कि जो हम लिखेंगे। इस कतरब्योंत से फायदा यह निकला कि जिन विषयों को अंगरेजी शिक्षित समुदाय मान्य समझता था वे विषय हिन्दु साहित्य में मान्य निकले और जिनको उपरोक्त समुदाय अमान्य या अनुचित समझता था वे हिन्दु साहित्य में भी अमान्य या अनुचित ही मिले। अब क्या था अब तो अंगरेजी शिक्षित समुदाय पर स्वामीजी का प्रभाव पड़ा, माल मिलने लगा। जो स्वामी दयानन्दजी किसी जमाने में दिगम्बर रहते थे अब कोट बूट पहिन घड़ी छड़ी लेकर जण्टलमैन बने और हुक्का पीने लगे। आधुनिक साइन्स पर मनुष्यों के मनों को ले जाने के लिये "आर्यसमाज" नामक एक मत चलाया। लक्ष्मी के फन्दे में फँस सन्यासी होकर भी रुपया जमा करना आरम्भ किया। इन महात्मा ने अपने चलाये मत के प्रचारार्थ "सत्यार्थ-प्रकाश" नामक एक पुस्तक लिखी है कि जिसमें आरम्भ से लेकर अन्त तक खण्डन ही खण्डन भरा है और यही पुस्तक आर्यसमाज की धार्मिकपुस्तक है। इस पुस्तक से खण्डन को सीख कर बिना लिखे पढ़े मनुष्य भी पण्डितों

D-223

के सम्मुख आने लगे। झूठ थोड़े ही दिन चलता है। पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र कृत दयानन्दतिमिरभास्कर छपते ही सत्यार्थप्रकाश की कलई खुल गई, सैकड़ों समाजी दयानन्दतिमिरभास्कर [illegible] कर सनातनधर्मी होगये और होते जाते हैं। इस पुस्तक के खण्डन में पं० तुलसीराम ने भास्करप्रकाश लिखा। यद्यपि भास्करप्रकाश का लेख दयानन्दतिमिरभास्कर के खण्डन की शक्ति नहीं रखता तथापि सनातनधर्म पर यह कलंक आता है कि भास्करप्रकाश का उत्तरही सनातनधर्म नहीं दे सकता। इस कलंक को दूर करने और भास्कर-प्रकाशकर्त्ता की चालें दिखलाने के लिये मैं यह धर्मप्रकाश ग्रन्थ पाठकों के करकमलों में इस प्रकार तैयार कर समर्पण करता हूं कि प्रथम "सत्यार्थ प्रकाश द्वितीयावृत्ति" इसके नीचे "दयानन्दतिमिरभास्कर" इसके बाद "भास्कर-प्रकाश" इसके पश्चात् "धर्मप्रकाश"। अब पाठक सत्यासत्य का निर्णय स्वतःही कर सकेंगे। पाठकों के अवलोकन मात्र से ही मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा- इतिशम्।

मार्गशीर्ष शुक्ला ११ शनौ
सम्वत् १९७१ वैक्रमीय

कालूराम शास्त्री।

383

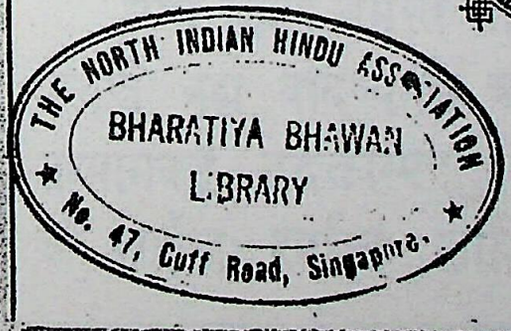

D-223

* श्रीगणेशाय नमः *

* धर्मप्रकाश *

THE NORTH INDIAN HINDU ASSOCIATION
BHARATIYA BHAVAN
LIBRARY
No. 47, Cuff Road, Singapore.

नमो नमो ब्रह्म सदा शिवाय
नमोनमः कारणकारणाय ।
नमो नमो वेदजगद्धिताय
नमो नमो धर्मसनातनाय ॥ १ ॥

शन्नो मित्रः शंवरुणः शन्नो भवत्वर्यमा ।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ २ ॥

नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु । अवतु मामवतु वक्तारम् । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ३ ॥

भूमिका ।

द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश भूमिका पृष्ठ १ पंक्ति १ से—

ओ३म् सच्चिदानन्देश्वरायनमः जिस समय मैंने यह ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने पठन पाठन में संस्कृतही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था इससे भाषा अशुद्ध बनगई थी अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास होगया है इसलिये इस ग्रन्थ को भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरीबार छपवाया है कहीं २ शब्द वाक्य रचना का भेद हुआ है सो करना उचित था क्योंकि इसके भेद किये बिना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी परन्तु अर्थ का भेद नहीं कियागया है प्रत्युत विशेष तो लिख गया है हां जो प्रथम छपने में कहीं २ भूल थी वह निकाल शोध कर ठीक २ करदी गई है ।

प्रथमावृत्ति तिमिरभास्कर पृ० २ पं० २१ से—

इस लेख से पहिला सत्यार्थप्रकाश गुजराती भाषा मिश्रित विदित होता है किन्तु उसमें कोई गुजराती भाषा का शब्द पाया नहीं जाता भला वह तो अशुद्ध होचुका पर अब यह तो आपके लेखानुसार सम्पूर्ण ही शुद्ध है क्योंकि इसके बनाने के पूर्व न तो आपको लिखना ही आता था न शुद्ध भाषाही बोलनी आती थी इससे यह भी सिद्ध होता है कि इस सत्यार्थप्रकाश से पूर्व रचित वेदभाष्य भूमिका, तथा यजुर्वेदादि भाष्यों की भाषा भी अशुद्ध होगी क्योंकि शुद्ध २ भाषा का ज्ञान तो आपको इस सत्यार्थ-प्रकाश के लिखने के समय हुआ है और इसी कारण आप इसको निर्भ्रान्त सत्य मानते हैं ।

तृतीयावृत्ति भास्करप्रकाश पृ० १० पं० १२ से—

स्वामीजी का आशय यह नहीं है कि जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने से इसमें उसका मेल होगया किन्तु वे स्पष्ट लिखते हैं कि मातृभाषा

D-223

गुजराती थी और सम्प्रति बोलने आदि का काम था क्योंकि इस देश के लोगों के साथ (जहां लेखकों को[1] सत्यार्थप्रकाश बोलकर तात्पर्य समझा कर लिखवाया) संस्कृत ही में काम चलाया जाता था अतः समझने समझाने में भूल होकर तात्पर्य ठीक २ न रहा बहुत लोगों ने देखा है वे अब तक वर्त्तमान हैं कि स्वामीजी महाराज आर्यसमाजों के स्थापन से पूर्व दिगम्बर हो गङ्गा तट पर विचरा करते और संस्कृत का ही भाषण करते तथा संस्कृत में ही सेवा सत्संगादि करने वालों को वैदिक धर्म का उपदेश तथा वेदविरुद्ध मतों का खण्डन भी किया करते थे उसी समय राजा जयकृष्णदासजी ने यह समझ कर कि इनके पवित्र विचार से लेखद्वारा दूरदेशवर्त्ती लोगों का भी उपकार होसकता है प्रथम सत्यार्थप्रकाश काशी में छपवाया था उस समय तक स्वामीजी गङ्गातटादि विविक्त स्थानों में ही प्रायः रहते थे यही कारण था कि भाषादि को अच्छे प्रकार न जांच पाये और यह भी विदित रहे कि प्रथम का सत्यार्थप्रकाश लेखके समय से बहुत पीछे छपा और भूमिका व वेदभाष्य एक तो लिखने के थोड़े ही काल पीछे छपे और वे पुस्तक (असल) मूल संस्कृत में स्वामीजी ने बोल २ कर लेखकों को लिखवाये फिर उनका भाषा नौकर पण्डितों ने की इसलिये ऊपर लिखा आक्षेप निर्मूल है।

समीक्षा—ये जो तीन सज्जनों के लेख आपने देखे थे सत्यार्थ प्रकाश पर नहीं किन्तु उसकी भूमिका (दिबाचा) मात्र पर हैं हम भी कुछ इसी विषय पर लिखना चाहते हैं और आगे लिखेंगे किन्तु प्रथम इस लेख से भिन्न जो इस भूमिका पर विवाद है उसको दिखलाना चाहते हैं। कई एक विचारशील सज्जनों का कथन है कि यह भूमिका और द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश ये दोनों ही स्वामी दयानन्दजी के लिखे हुये नहीं हैं किन्तु समाज ने भूमिका लिखकर नीचे स्वामी [illegible] का नाम डाल दिया और प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश को काट छांट करके नया स्वरूप कर दिया अर्थात् जितना अच्छा लगा उतना रख लिया शेष उड़ा दिया।

१—यह बात स्वामी दयानन्द नहीं लिखते।

इसमें (१) प्रमाण यह है कि स्वामी दयानन्दजी का देहान्त सं० १९४० में होगया और यह भूमिका सम्वत् १९४१ में बनकर प्रेस में छपने को भेजी गई। "जो लोग इस भूमिका को स्वामी दयानन्दकृत मानते हैं वे इस प्रमाण पर यह कहा करते हैं कि भूमिका में सम्वत् १९३९ और बनने का स्थान उदयपुर लिखा है फिर अन्य कृत और सम्वत् १९४१ की बनी कैसे" इसके ऊपर इन सज्जनों को उधर से उत्तर मिलता है कि आजकल भी समाजी लोग प्रायः ऐसाही करते हैं कि जो कुछ जी में आता है लिख देते हैं और उस लेख के जिम्मेदार स्वामी दयानन्दजी को बना देते हैं अर्थात् लिखते ये हैं किन्तु लेखक में नाम स्वामी दयानन्दजी का जब भी लिखते थे और अब भी लिखते हैं प्रमाण के लिये आप देख सकते हैं कि "[illegible]र्कमिन्दुर्विधुं भूमिभा" यह सिद्धान्त-शिरोमणि का वचन ऐसा पाठ स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है किन्तु सन् १८९७ में जो सत्यार्थप्रकाश छपा उसमें "छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभा" यह "ग्रहलाघव के चौथे अध्याय का चौथा श्लोक है" ऐसा पाठ कर दिया, बदलनेवाले का पता नहीं चलता, इसका लेखक भी समाज ने स्वामीजी को बना दिया। ग्रहलाघव में अध्यायही नहीं हैं किन्तु अधिकार हैं इस अशुद्धता के जिम्मेदार स्वामी दयानन्दजी ही रहेंगे। ऐसे २ सैकड़ों लेख समाज बनाती है और उन २ लेखों के लेखक स्वामी दयानन्दजी को ही लिखती है बस इसी प्रकार इस भूमिका में किया है इत्यादि वादाविवाद के पश्चात् पक्ष सबल उन्हीं का रहता है कि जो भूमिका को स्वामीकृत नहीं मानते हैं।

(२) प्रमाण यह देते हैं कि [illegible] १९३५ के विज्ञापन में स्वामी दयानन्दजी ने साफ लिखा है कि मैं केवल मृतक पितरों के श्राद्धतर्पण को नहीं मानता इसको छोड़ कर और समस्त सत्यार्थप्रकाश मुझ को मान्य है। वह विज्ञापन यह है—

विज्ञापनम् ।

"सब को विदित हो कि जो जो बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं उनको मैं मानता हूँ विरुद्ध बातों को नहीं इससे जो जो मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश व संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्रों मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं वे उन २ ग्रन्थोंके मतोंको जताने के लिए लिखे हैं उनमेंसे वेदार्थ

के अनुकूलका साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूँ जो जो बातें वेदार्थ से निकलती हैं उन सबको प्रमाण करता हूँ क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य है और जो ब्रह्माजी से लेकर जैमिनी मुनि पर्यन्त महात्माओंके बनाये वेदार्थ अनुकूल ग्रन्थ हैं उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूँ और जो सत्यार्थप्रकाश के ४२ पृष्ठ [illegible] पंक्ति पितर आदिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करे और जितने मर गए हैं उनका तो अवश्य करे तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ मरे भये पितर आदिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो लिख गया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छपगया है इस के स्थान में ऐसा समझना चाहिये कि जीवितों की श्रद्धा से सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्र आदि का परमधर्म है और जो २ मरगये हों उनका नहीं करना क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरेहुए जीवों के पास किसी पदार्थ को पहुँचा सकता है और न मरा हुआ जीव पुत्र आदि ने दिए पदार्थों को ग्रहण कर सकता है उससे यह सिद्ध है कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं इस विषय में वेदमंत्र आदि का प्रमाण भूमिका के ११ अङ्क के पृष्ठ २५१ से लेके १२ अंक के पृष्ठ २६८ तक छपा है वहां देख लेना"।

इस विज्ञापन में श्राद्ध तर्पण को छोड़ अन्य कोई लेख सत्यार्थप्रकाश का अशुद्ध नहीं बतलाया किन्तु यह भूमिका जिस द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में लगी है वह प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश का ही खण्डन करती है अर्थात् उसको अशुद्ध बतलाती है।

(३) यह है कि स्वामीजी जिस मान्य विषय को अमान्य और जिस अमान्य विषय को मान्य ठहराते थे उसके लिये नोटिस निकाला करते थे स्वामी जी ने कोई नोटिस नहीं निकाला कि प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश अशुद्ध है केवल

१—इतनी भूल लेखक और संशो[illegible] हो सकती स्वामीजी का सिद्धान्त बदल गया।

२—स्वामी दयानन्दजीने इस कपोलकल्पित युक्तिके पंजे में पड़कर श्राद्धके कहनेवाले पांचसौ मन्त्रों पर पानी फेरा है किन्तु समाज इस अन्धेर को कब तक छिपावेगी किसी दिन समाजी मनुष्य ही मरे पितरों का श्राद्ध मान कर स्वामी दयानन्दजी के लेख को अशुद्ध बतलावेंगे नहीं तो वेद से तो हाथ धोही बैठे हैं।

मृतक पितरों के श्राद्ध तर्पण अमान्य मानने लग गये थे उसके लिये उन्होंने ऊपर लिखे सम्वत् में नोटिस दे दिया था अतएव श्राद्ध तर्पण से भिन्न को अशुद्ध कैसे मान लें।

(४) द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में स्वामी दयानन्दजी के सिद्धान्तों का कतल कर दिया गया है स्वामीजी ने प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ४५ में सायं और प्रातः दोनों वक्त मांस से हवन करना लिखा उसको निकाल डाला। पृष्ठ ३०३ में बैल आदि पशुओं में नरों का यज्ञ में मारना धर्म लिखा इस सत्यार्थप्रकाश में ऐसा उड़ाया मानों सत्यार्थप्रकाश में लिखा ही न था। पृष्ठ ३०३ में स्वामीजी गोबध भी लिखते हैं दूसरी आवृत्ति में उसका पता भी नहीं जब कि द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में स्वामीजी के सिद्धान्तों का चकनाचूर कर दिया कि जिनके ऊपर स्वामीजी का पूर्ण विश्वास था फिर हम कैसे समझ कि यह सत्यार्थप्रकाश स्वामी कृत है इत्यादि अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं कि यह भूमिका और यह सत्यार्थप्रकाश स्वामीकृत नहीं है औरों को तो जाने दीजिये किन्तु इन दिये हुये उदाहरणों को देख कर भी इस भूमिका तथा सत्यार्थप्रकाश को कोई भी स्वामीकृत नहीं मान सकता हां उनका हम जिक्र नहीं करते कि जो न तो निर्णय करना चाहते हैं और न किसी की सच्ची बात मानने को ही तैयार हैं जबर्दस्ती घोड़े की ३ टांगें बतला रहे हैं।

यह कथन केवल [illegible] या मुसलमानों या ईसाई अथवा जैन लोगों का ही नहीं किन्तु इस बात को आर्यसमाजी भी स्वीकार करते हैं कि यह भूमिका और द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश स्वामी दयानन्दकृत नहीं है इस के लिये मैं समाज के एक प्रतिष्ठित पुरुष को उदाहरण में रखता हूं आर्य-समाज लाहौर के मन्त्री भी इसी बात को मानते हैं कि स्वामी दयानन्द का बनाया सत्यार्थप्रकाश प्रथमावृत्तिही है वह सत्यार्थप्रकाश मिलना कठिन था किन्तु आर्यसमाज को प्राप्ति के लिये उन्होंने सन् १९१२ में ज्यों का त्यों ऊर्दू अक्षरों में मुद्रित करवा दिया यह पुरुष साधारण पुरुष नहीं है सम्भव है कि साधारण पुरुष धर्म को बेपरवाही करके कुछ का कुछ लिख दे किन्तु यह पुरुष धर्मपाल है इसको सनातनधर्मी आदि धर्मपाल नहीं कहते किन्तु यह उपाधि आर्यसमाजियों ने इनको उस समय दी थी जब कि समाज ने इस

बात को अच्छी प्रकार से समझ लिया था कि इनका शरीर धर्म की रक्षा के लिये ही है फिर सनातनधर्म चाहे इनको भले ही मुसलमान की दृष्टि से देखता हो किन्तु समाज की दृष्टि में ये [illegible] महात्मा हैं इसी नाम से समाज इनको पुकारने और लिखने में याद करती है। जब कि आर्यसमाज के एक मान्यपुरुष प्रतिष्ठित पुरुष अपने छपवाये सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में यह सिद्ध कर गये कि स्वामी दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाश तो प्रथमावृत्ति ही है फिर इनके बराबर में किसी द्वितीय समाजी को उदाहरण में देना जवाहिरात के साथ पैसे मिलाना समझता हूँ। इस विषय में इतना ही लिखकर अपने आर्यसमाजी भाइयों से प्रार्थना करता हूँ या तो वे इस बात को प्रकट करें कि स्वामी दयानन्दजी ने मांस का हवन आदि अपने सिद्धान्तों को छोड़ दिया था इसमें स्वामीजी का विज्ञापन आदि भी पेश करें और या फिर द्वितीयावृत्ति को छोड़ प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश को मानें। एक सन्यासी जो कि योग्य हो जोकि समाज की दृष्टि में महर्षि हो उसके सिद्धान्तों को कतर करना और उनके नाम से कुछ का कुछ लिखना यह अयोग्य है। यह लेख इस कारण नहीं लिखा कि किसी समाजी भाई का चित्त दुखित हो किन्तु प्रयोजन यह है कि वर्त्तमान समाज स्वामी दयानन्दकृत प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के न मानने का कारण बतलावे और साथ ही साथ यह भी बतलावे कि और २ मनुष्य जो लेख लिखते हैं वे लेख उनके नाम से न छापकर स्वामी दयानन्द के नाम से क्यों छापे जाते हैं और द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश और उसकी भूमिका किसने लिखी है।

अब हम उन आर्यसमाजियों के मत को उठाते हैं कि जो इस भूमिका को स्वामीकृत मानते हैं। पं० तुलसीरामजी ने लिखा है कि स्वामीजी का यह आशय ही नहीं कि सत्यार्थप्रकाश में गुजराती भाषा मिल गई किन्तु उनका यह आशय है कि मातृभाषा गुजराती था और संस्कृत बोलते थे इस पर हमारा यह उज्र है कि जब उनको हिन्दी भाषा नहीं आती थी तो प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश कौन लिख गया ? यदि कहो कि लेखकों ने लिखा, यह बात तो पं० तुलसीरामजी लिखते हैं स्वामीदयानन्दजी तो लेखकों का नाम भी नहीं लेते वह तो कहते हैं कि इसमें हिन्दीभाषा हमारी बनाई है और हम से अशुद्ध बनगई अब इन दोनों लेखों में जो परस्पर में विरोधी हैं कौन सत्य है

इसमें यदि स्वामी दयानन्द का लेख सत्य है तो पं० तुलसीराम का कैसा और यदि पं तुलसीराम का सत्य हो तो स्वामी दयानन्द का कैसा ठहरेगा इसका विचार करिये। वह कहते हैं कि भाषा बनने में अशुद्ध हो गई यह कहते हैं कि स्वामी दयानन्दजी लेखकों को संस्कृत बोलकर ही समझाते थे स्वामीजी तो हिन्दी का लिखना बोलना स्वीकार करते हैं किन्तु पं० तुलसीराम कहते हैं कि उनको बिल्कुल हिन्दी लिखना बोलना नहीं आती थी स्वामी दयानन्दजी तो कहते हैं कि हिन्दी अशुद्ध बन गई थी अब हिन्दी व्याकरणानुसार ठीक कर दी और पं० तुलसीराम कहते हैं नहीं तात्पर्य्य ही ठीक २ न रहा यहां तो "गुड़ तो गुड़ चेला चीनी होगये" पं० तुलसीरामजी निराली चाल पर यों चले कि जहां २ से सत्यार्थप्रकाश का लेख निकालना आवश्यकीय था और वह निकाल भी दिया गया अब कोई पूछेगा कि क्यों तो कह देंगे कि लेखकों के समझ से ऐसा होगया। सिद्धान्त यह है कि लेख तो निकालाही गया किन्तु स्वामीजी उसके लिखने के जिम्मेदार भी न ठहरें यदि लेख के जिम्मेदार स्वामीजी ठहरगये तो समाज के दिये महर्षि पद पर आपत्ति आवेगी इस वास्ते कलंक का टीका लगाने के लिए भास्करप्रकाश में लेखक धसाये गए यदि ऐसाही है लेखकों परही दोष है तो कृपाकर समस्त सत्यार्थप्रकाश को ही क्यों नहीं कह देते कि सत्यार्थ-प्रकाश तो लेखकों का ही लिखा है बेशक ऐसा कहने से बिना अपराध किये भी लेखक अपराधी ठहरें। किन्तु इस सत्यार्थप्रकाश से धर्म का नाश जो होने वाला है वह तो बच जावेगा।

पण्डितजी महाराज स्वामीजी यही कह देते कि हमको हिन्दी भाषा नहीं आती थी तो क्या इतना लिखने से काम न चल जाता यदि चल जाता तो मेरी मातृभाषा गुजराती थी इसके लिखने का क्या प्रयोजन था क्या हेतु के लिए लिखी यहां पर तो बिना हेतुही काम चलता था जब बिना हेतु काम चलता था फिर हेतु देना क्या "प्रयोजनं बिना मन्दोपि न प्रवर्त्तते" न मानना पड़ेगा प्रयोजन क्या है कहो कुछ नहीं जब कि इसका कोई खास प्रयोजन नहीं भला फिर पं० ज्वालाप्रसाद का यह लेख कि इससे मालूम होता है कि प्रथमावृत्ति सत्यार्थ-प्रकाश गुजराती भाषा [illegible] ठीक नहीं है पं० तुलसीरामजी इसको ठीक तो मान लेते किन्तु एक कमजोरी ने साफ इनकार करा दिया वह क्या वह

यह कि आगे पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र लिखते हैं कि उसमें तो एक भी शब्द गुजराती भाषा का नहीं यह [illegible] था कि स्वामीजी का लेख तो गुजराती भाषा मिश्रित होना साबित करता है किन्तु उसमें कोई शब्द गुजराती का है नहीं फिर इसका क्या उत्तर होगा अतएव पं० तुलसीरामजी ने उसको हेतु बना दिया व्यर्थ हेतु देना क्या यह आग्रह में पूर्ण प्रमाण नहीं है।

फिर पं० तुलसीरामजी का यह लिखना है कि इस सत्यार्थप्रकाश के तैयार करने के समय तक स्वामीजी हिन्दी भाषा नहीं बोल सकते थे यह कहां तक सत्यता रखता है जब कि स्वामी दयानन्दजी इससे भी पहिले जब शैव मत का प्रचार करने जयपुर गये तब भी हिन्दी भाषा बोलते थे इसी के आस पास फर्रुखाबाद की पाठशाला में भी हिन्दी में बातचीत किया करते थे। अजी भाई साहब स्वामी बिरजानन्द सरस्वतीजी के पास जब मथुरा में पढ़ते थे तब भी धड़ाके की हिन्दी बोलते थे फिर क्या बाच में भूल गये मुझको तो पं० तुलसीराम के लेख पर हँसी आती है पं० तुलसीरामजी इसमें बहादुरी समझते हैं कि खूब सिद्ध करदो कि स्वामी दयानन्दजी को हिन्दी ही नहीं आती थी।

पं० तुलसीरामजी जब तिमिरभास्कर के उत्तर में असमर्थ होगये तब स्वामी दयानन्दजी की बड़ाई पर उतर आये कि वे नग्न होकर गङ्गातट पर विचरा करते थे आप तो दिगम्बरों की प्रशंसा करते हैं और आप के छोटे भाई पं० छुट्टनलालजी "आर्यसमाज ने क्या किया" पुस्तक में महादेव की मसखरी इसी के ऊपर करते हैं कि वे नग्न रहते थे नग्न रहना अच्छा या बुरा हम छोटे भाई की बात मानें या बड़े की। गङ्गातट पर विचरने से यदि कोई स्वामी दयानन्द की इज्जत कर सकता है तो वह सनतानधर्म ही है न कि आर्यसमाज। आज आप स्वामी दयानन्दजी का तो नाम न लें और किसी कट्टर समाजी के आगे कहें कि एक महात्मा गङ्गातटपर ही विचरता है और गङ्गा को पवित्र मानता है इतना सुनते ही समाजी भाई कह देगा कि बेवकूफ है गङ्गा में क्या धरा है क्या गङ्गा से मोक्ष होती है यदि गङ्गा के जल से ही मोक्ष होती तो समस्त मगरमच्छ मोक्ष पद को चले जाते, गङ्गादि से मोक्ष मानना पोपों का चलाया वेद विरुद्ध धर्म है। समाजियों का यह कथन जो सबके लिये है क्या स्वामी दयानन्दजी के लिये नहीं। जो आर्यसमाज गङ्गा का खण्डन करना ही अपने जीवन का सार समझता

है वह इस कारण से कि स्वामी दयानन्दजी को गौरवता नहीं दे सकता कि वे गङ्गातट पर विचरा करते थे किन्तु गङ्गातट पर विचरना समाज की दृष्टि में उनकी गौरवता में धब्बा लगाता है इसके अतिरिक्त गङ्गाजी में श्रद्धा स्वामीजी की तबहीं तक रही कि जब तक वे सनातनधर्मी रहे। अङ्गरेजीवालों की संगति करते ही उन्होंने सनातनधर्म के सिद्धान्तों को दूर फेंका और पश्चिमीय धर्म को गौरवता की दृष्टि से देखते हुए वेदों के भाष्य आदि को उसी धर्मपथ पर पहुँचाने का परिश्रम किया। पुस्तकों में ही पश्चिमीभाव नहीं आये किन्तु शरीर पर भी आ गये। जो स्वामी दयानन्दजी दिगम्बर रहते थे फिर उन्हीं की यह दशा हुई कि "कोटश्च बूटश्च घड़ी छड़ी च चैनश्च चश्मा च लसन्ति देहे" सो पण्डितजी महाराज दिगम्बर रहने की प्रशंसा स्वामी दयानन्द की सनातनधर्मी करेंगे आप तो उस रूप की प्रशंसा करें जो आर्यसमाज में आते ही धारण किया था किन्तु आप उस रूप को दबाना चाहते हैं ऐसा न किया करें कि आर्यसमाज के विरुद्ध सनातनधर्म की पुष्टि में छिपी २ कलम चलाते हैं।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी बड़े अभिमान से कहते हैं कि सेवा सत्संगादि करनेवालों को वेदधर्म का उपदेश और वेदविरुद्ध मतों का खण्डन किया करते थे। क्या पं० तुलसीरामजी का यह लेख सर्वथाही सत्य है? क्या स्वामी दयानन्दजी ने वेदों का किञ्चित् भी खण्डन नहीं किया? पण्डितजी महाराज, और २ धर्मों का खण्डन करते २ स्वामी दयानन्दजी ने वेदों का ऐसा खण्डन किया है कि उनका एक अक्षर भी न छोड़ा। क्या पण्डितजी आप इसको नहीं जानते, अवश्य जानते हैं, यदि नहीं जानते तो लीजिये जानिये हम बतलाते हैं– ऋषि मुनि तथा पण्डित सभी इस बात को जानते हैं कि वेद तीन भागों में विभक्त हैं – प्रथम शाखा (मन्त्र भाग), द्वितीय ब्राह्मणभाग और तृतीय उपनिषद्भाग इन तीनों भागों को छोड़ कर (इससे भिन्न) कहीं वेद का एक अक्षर भी नहीं है और स्वामी दयानन्दजी इन तीनों ही भागों को स्वतः प्रमाण वेद नहीं मानते यह आप उत्तमरीति से जानते हैं यदि आप इस विषय में प्रमाण मांगते हैं तो प्रमाण भी लीजिये। स्वामीजी [illegible] ग्रन्थों को वेद नहीं मानते द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के पृ० २०५ पंक्ति ६ से लिखते हैं कि संहिता पुस्तक के आरम्भ में अध्याय की समाप्ति में "वेद" यह सनातन से लिखा रहता है और ब्राह्मण

पुस्तक के आरम्भ व अध्याय की समाप्ति में कहीं नहीं लिखा और निरुक्त में "इत्यादि निगमो भवति इति ब्राह्मणम् नि० अ० ५ खं० ३।४" "छन्दो ब्राह्मणानिच तद्विषयाणि अष्टाध्यायी ४ । २ । ६६" यह पाणिनीय सूत्र है इस से स्पष्ट विदित होता है कि वेद मन्त्रभाग और ब्राह्मण व्याख्याभाग है इससे विशेष देखना चाहै वह ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में देख ले इत्यादि कुछ लेख स्वामी जी ने आगे भी चलाया है इस लेख में यह अच्छी रीति से सिद्ध कर दिया गया कि ब्राह्मणभाग वेद नहीं इस पर चाहे सनातनधर्मी कुछ लेख भी लिखें या स्वामी दयानन्द के लेख को न मानें किन्तु आप को तो माननाही पड़ेगा क्योंकि यह लेख उनका है जो आर्यसमाजमत के जन्मदाता हैं या यों कहिये कि महर्षि हैं, महर्षि के लेख पर आप का क्या उज्र हो सकता है यदि यही समझलें कि आपको उज्रही है तो रहे ।किन्तु स्वामी दयानन्द तो ब्राह्मणों को वेद नहीं मानते फल यह निकला कि ब्राह्मणभाग वेदही नहीं हैं। अब उपनिषद्भाग की कथा सुनिये—प्रथम तो दशही माने फिर उनके लिये भी आर्डर दे दिया कि ये स्वतः प्रमाण नहीं जितना अंश से वेद न मिले उसको छोड़ दो उपनिषद्भाग को यों उड़ाया है इसको सत्यार्थप्रकाश के पृ० ६८ में देखिये। अब एक मंत्रभाग और रह गया, उसकी भी कथा सुन लीजिये-सत्यार्थप्रकाश स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश की संख्या २ में स्वामीजी लिखते हैं कि वेद की शाखा जोकि वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रंथ हैं उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेद विरुद्ध वचन हैं उनको अप्रमाण मानता हूँ। लीजिये इन्होंने तो शाखाओं को भी उठा दिया। यदि कहो कि शाखाओं से भिन्न भी तो [illegible] हैं जो वैदिक यन्त्रालय अजमेर में छपी हैं जिनको आर्यसमाज वेद मानती है इसका उत्तर यह है कि यह भी चार शाखायें हैं जिसको दयानन्द ने ऋग्वेद लिखा है वह ऋग्वेद की शाकल शाखा और जिसको यजुर्वेद बनाया वह यजुर्वेद की वाजसनेही या माध्यंदिनी शाखा और जिसपर स्वामीजी[1] ने सामवेद लिखा वह सामवेद की कौथुमीशाखा और जिसको स्वामी दयानन्दजी ने अथर्ववेद लिखा वह अथर्ववेद की शौनकी शाखा है।

१ स्वामीजी ने नहीं लिखा तो समाज ने लिखा ।

इनके शाखा होने में प्रमाण (१) आर्यसमाज को छोड़ कर जिस २ प्रेस में ये पुस्तकें छपीं उन पर साफ २ इनके नाम छपे हैं, (२) उव्वट महीधर सायण आदि भाष्यकारों ने शाखाओं के नाम लिखे हैं, (३) इन चारों शाखाओं के चार श्रौतसूत्र हैं उनमें साफ़ लिखा है कि यह अमुक शाखा का सूत्र है जैसे कातीय श्रौतसूत्र माध्यन्दिनीशाखा का है और उसमें सब कार्य माध्यन्दिनी के मन्त्रों से कराये हैं इत्यादि अनेक प्रमाण मौजूद हैं जो यह साबित करते हैं कि ये चारों शाखा हैं जब ये शाखा हैं तब तो स्वामी दयानन्दजी ने इनको भी उड़ा दिया। ब्राह्मणभाग, उपनिषद्भाग, शाखाभाग इन तीनों भागों को स्वामी दयानन्दजी वेद नहीं मानते और इनसे भिन्न वेद भी नहीं फिर पं० तुलसीरामजी किस अभिमान से कहते हैं कि स्वामीजी वेद विरुद्ध मतों का खण्डन करते थे यहां पर पं० तुलसीरामजी को यह लिखना चाहिये कि वेदविरुद्ध मतों का थोड़ा २ खण्डन करते २ वेद धर्म का बिल्कुलही खण्डन किया करते थे।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि स्वामी गङ्गातट पर रहते थे और सत्यार्थप्रकाश [illegible] छपा इस कारण भाषा आदि को अच्छे प्रकार जांच न सके। इस लेख से दो बातें निकलती हैं एक तो यह कि प्रूफ तो देख लिया जांच लिया किन्तु वह सरसरी दृष्टि या लापरवाही से देखा अच्छी प्रकार जांच नहीं की अस्तु जब स्वामीजी ने जांच की तब उन विषयों को क्यों नहीं निकाल दिया जो लेखकों ने भर दिये थे और द्वितीयावृत्ति में निकालने पड़े द्वितीय हिन्दी भाषा की अच्छी तरह जांच न कर पाये यदि वे काशीजी में रहते तो अच्छी तरह जांच कर लेते जांच तो तभी करते जब उनको हिन्दी भाषा आती होती आप पहिले तो लिख आये कि उनको हिन्दी भाषा आतीही नहीं थी अब कहते हैं समय न मिलने से अच्छी प्रकार जांच नहीं की जब स्वामीजी को हिन्दी भाषा ही नहीं आती थी फिर मामूली जांच कैसे की और समय मिलने पर अच्छी कैसे कर लेते मालूम होता है कि [illegible] हिन्दी भाषा आती थी और पं० तुलसीरामजीने जो लिखा था कि उन्हें हिन्दी नहीं आती थी वह केवल इसलिये था कि सत्यार्थप्रकाश के अयोग्य लेखों का कलंक स्वामीजी को न लगे। अब आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि सत्यार्थप्रकाश बहुत पहिले बनाया था। क्या मथुरा में जब पढ़ते थे या उससे पहिले ? यदि कहो कि नहीं उसके बाद तब तो

सत्यार्थप्रकाश बनने के समय हिन्दी जानते थे इसके अलावा प्रूफ के समय तो आपके लेख से भी हिन्दी जानना स्पष्ट है। पण्डितजी बातें न बनाइए या तो यह कहिये कि अब समाज उस सत्यार्थप्रकाश को ही नहीं मानती या यों कहिये कि स्वामीजी पहले उन्हीं सिद्धान्तों को मानते थे फिर उनको छोड़ कर दूसरे सत्यार्थप्रकाश के सिद्धान्तों पर आ गये।

इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि भूमिका और ऋग्वेदादि भाष्य एक तो लिखने से थोड़े ही काल पीछे छपे और वे मूल संस्कृत में लिखे गये फिर भाषा पण्डितों ने बनाई बनने से जल्दी छपे इस कारण शुद्ध रहे एक ग्रंथ लिखा हुआ दशवर्ष धरा रहे ता क्या वह धरा २ अशुद्ध हो जाता है यदि कहो कि नहीं यह नहीं इनके समय में स्वामीजी हिन्दी का लिखना बोलना सीख गये थे यह भी गलत क्योंकि स्वामी जी तो मरने के समय या मरने के बाद या द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश संशोधन के समय में स्वीकार करते हैं कि अब हमको ठीक हिन्दी आगई फिर कैसे वह शुद्ध बन गये पंडितों ने मूल संस्कृत से ऋग्वेदादि का भाषा बनाया तो क्या सत्यार्थप्रकाश मूल अर्वी से बना है।

यहां हमको कुछ विशेष भी कहना है वह यह है कि स्वामी दयानंद जी लिखते हैं कि भाषा व्याकरणानुसार हिन्दी भाषा ठीक करदी और वाक्य रचना का भेद कर दिया पाठक प्रथमावृत्ति और द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश लेकर मिलाते जाइये लेख में कहीं भी भाषा नहीं बदली जो प्रथमावृत्ति की भाषा है वही ज्यों की त्यों द्वितीयावृत्ति की है भाषा में फर्क एक अक्षर का भी नहीं केवल काटछांट की है अर्थात् प्रथमावृत्ति में से कुछ इबारत निकालनी थी निकाल डाली क्या इबारत का निकाल डालनाही तो व्याकरणानुसार शुद्ध नहीं कहलाता ? फिर यह भी कहते हैं कि अर्थ का भेद नहीं किया प्रथमावृत्ति के दशम समुल्लास में जीव ब्रह्म की एकता लिखी थी उसको द्वितीयावृत्ति में निकाल डाला क्या इतने पर भी अर्थभेद नहीं हुआ ? प्रथम सत्यार्थप्रकाश में जीव ब्रह्म एक और द्वितीयावृत्ति में भिन्न २ यह तो वह अर्थभेद हुआ कि जिससे सिद्धान्तही बदल गया।

स्वामीजी यह भी लिखते हैं कि उसमें बढ़ाया तो है किन्तु कम नहीं किया मृतक पितरों का श्राद्ध मांस के पिण्ड देना आदि सैकड़ों पंक्तियाँ निका-

लनेपर भी कमती[1] नहीं हुआ इसको तो वही मानेगा जो सत्यता का खून करने को तैयार बैठा हो। फिर स्वामीजी लिखते हैं छापे की अशुद्धियां ठीक करदीगईं प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में छापे की अशुद्धियांही नहीं थीं फिर ठीक क्या करदीं इसका भी तो पता चले। स्वामी दयानन्दजीने दोनों वक्त मांस से हवन करना, मांस खाना और मरे पितरों का श्राद्ध करना इत्यादि जो लेख लिखे थे और जिनको द्वितीयावृत्ति में निकाल डाला आज उन लेखों को स्वामीजी प्रेस की अशुद्धियों में दाखिल करना चाहते हैं क्या कोई विचारशील मनुष्य इस बात को मान लेगा कि वास्तविक में ये कम्पाजीटरों की अशुद्धियां हैं कम्पोज में एक दो अक्षर की अशुद्धता होती है या पंक्तियों की, फिर सम्भव है कि कोई पंक्ति कम्पोज करने से रह जावे किन्तु कम्पाजीटर अपनी तरफ से बनाकर लाइन की लाइन कम्पोज नहीं कर सकता कि जिसका अपराध स्वामीजी कम्पाजीटरों पर लगा रहे हैं शोक है कि स्वामीजी अपनी गलती छिपाने के लिये क्या लिख रहे हैं लोगों को धोखा दे रहे हैं। ताज्जब है कि जिसको समाज धर्मरक्षक कहे, जिनको महर्षिकी पदवी दी जावे, जोकि संन्यासी हो वह सरासर दिन दुपहरी मनुष्यों की आंखों में धूल झोके। ऐसे २ लेखों से प्रतीत होता है कि सत्य बोलना स्वामी जी ने संसार को दिखलाने के लिये ही लिखा वास्तव में उन्होंने झूंठ बोलना झूंठ लिखना धोखा देना इसी को धर्म समझा था।

मुझे महान् आश्चर्य इस बात का है कि जिस धर्म में किंचित्मात्र भी सचाई नहीं, जो धर्म सचाई से कोसों दूर भागता है उसमें लिखी पढ़ी चिड़ियां कैसे फंसजाती हैं मालूम होता है कि इस पार्टी में दोही प्रकार के मनुष्य हैं एक तो जो सचाई से दूर रहना चाहते हैं दूसरे जो वेदशास्त्र या दयानन्द के लेख इन तीनों से अनभिज्ञ हैं और यह मोटी बात समझते हैं कि वेदों में अवतार, मूर्ति पूजा, मृतक पितरों का श्राद्ध, और छूत नहीं है सब के हाथ का खाना और बिधवा विवाह करना लिखा है। मैं प्रतिनिधियों से बड़े अदब के साथ प्रार्थना करता हूँ कि वे आर्यसमाज के धर्म की सच्ची छान-बीन करें और समाज में जाने से जो सचाई का खून होता है उसको रोकें। मैं पं० तुलसीरामजी से अपील करता हूँ कि आप जान बूझकर मनुष्यों को अन्धकार के गढ़े में न पटकें।

१—द्वितीयावृत्तिको प्रथमावृत्ति से मिलाकर देखिये बहुत पाठ द्वितीयावृत्ति में निकाला गया।

आगे पं० तुलसीरामजी यह लिखते हैं कि इसलिए यह आक्षेप निर्मूल है। एक भी बात का उत्तर नहीं फिर भी आक्षेप निर्मूल, क्या घर की मजिस्ट्रेटी बनाली पं० तुलसीरामजी ने सब कुछ लिखा किन्तु पं० ज्वालाप्रसाद के असली आक्षेप पर लेखनी उठानेका साहस भी न किया मिश्रजी कहते हैं कि यह तो सही है इस द्वितीयावृत्ति को तो फिर अशुद्ध न कहोगे पं० तुलसीरामजी ने इसके ऊपर कुछ भी न लिखा लिखें तो तब जब कि वह शुद्ध हो वह भी तो अशुद्ध ही निकला आर्यसमाज ने तृतीयावृत्ति में कुछ कम कर दिया है कि यह अशुद्ध २ निकलगया फिरभी अशुद्ध ही रहा फिर चतुर्थावृत्ति में निकाला लोगों ने पूछा कि यह पाठ अबकी क्यों निकाला गया समाज ने कहा कि यह अशुद्ध था फिर पञ्चमावृत्ति छपी उसमें "गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करनेके विषय में पुरुष व स्त्री से न रहा जावे तो किसी से नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति करदें" इत्यादि स्वामीजी के अनेक सिद्धान्तों को निकाल डाला। हमारा कथन इस विषय में यह है कि समाज को क्या अधिकार है जो स्वामीजी के लेख को निकाल डालें और इस निकालने से क्या साबित होता है यही होता है कि स्वामी दयानन्दजी का लेख वेद शास्त्र कथित धर्म और प्रत्यक्ष के भी विरुद्ध है बस यही तो सनातनधर्म पहिले ही से कह रहा है कि स्वामी दयानन्द का लेख ठीक नहीं बस यही आर्यसमाज कहरहा है कि स्वामीदयानन्द का लेख वेद शास्त्रादि के विरुद्ध है क्या मजे की बात है कि स्वामी दयानन्द के लेख को दोनोंही अशुद्ध बतला रहे हैं फिर जब स्वामी दयानन्द का ही लेख अशुद्ध है तब समाज में बाकी ही क्या रह गया अस्तु अब छठी आवृत्ति में भी सत्यार्थप्रकाश के लेख निकाल कर शुद्ध किया गया।

आश्चर्य यह है कि प्रथमावृत्ति भी सत्यार्थप्रकाश और द्वितीयादि आवृत्ति भी सत्यार्थप्रकाश! समाज गलतियों को भी स्वीकार करती है और जिसमें अनेक अशुद्धियां भरी पड़ी हैं उसी को सत्यार्थप्रकाश भी कहती जाती है यदि सचही इसमें सत्य अर्थ का प्रकाश है तो फिर प्रत्येक आवृत्ति में उस सत्य अर्थ के प्रकाश को दूर क्यों किया जाता है क्या अब समाज असत्यार्थ को मानेगी अस्तु अब ईसाई मुसलमानों के [illegible] साथ २ सत्यार्थप्रकाश की शुद्धि भी समाज ने आरम्भ कर दी है और हम उन आर्यसमाजी भाइयों को धन्य

वाद भी देते हैं कि जिन्हों ने पक्षपात को छोड़ कर पबलिक पर यह प्रगट कर दिया कि स्वामी दयानन्द का लेख बिलकुल अशुद्ध है। यदि समाज के मत में स्वामी दयानन्दजी महर्षि थे तो महर्षि की अशुद्धी पकड़नेवाला क्या किसी पद का अधिकारी नहीं है या स्वामी दयानन्द से विद्वान् नहीं माना जावेगा। सं० १९०७ तक सत्यार्थप्रकाश की शुद्धि होती गई। भंगी चमार तो घण्टा भर में शुद्ध हो जाते हैं किन्तु यह सत्यार्थप्रकाश बीसियों वर्ष में भी शुद्ध न हुआ क्यों कि यह उनसे भी अधिक अशुद्ध है। जब इतने पर भी सत्यार्थप्रकाश शुद्ध न हुआ तब हार मान कर परोपकारिणी सभा ने मुसाफिर अखबार आगरा में ३१ जौलाई सन् १९०८ में एक विज्ञापन छपवाया उस विज्ञापन को भी पढ़िये यह है। सूचना दीजिये प्रायः समाजों से शिकायत आई है और आती रहती है कि सत्यार्थप्रकाश के प्रमाणों के पते आदि तथा छापे की अशुद्धियां रह गई हैं कई महाशय अन्य प्रकार की अशुद्धियां भी बतलाया करते हैं जो इन्हें विपक्षी लोगों से वादाविवाद के समय मालूम हुई हैं इस गड़बड़ को दूर करने के वास्ते सभा ने सत्यार्थप्रकाश के शुद्ध कराने का प्रबन्ध किया है इस लिये सब आर्यसमाजों, सामाजिक पुरुषों विशेष कर आर्य विद्वानों तथा उपदेशकों से प्रार्थना है कि वह अपनी २ सम्मति से शीघ्र सूचित करें कि उन्हें सत्यार्थ-प्रकाश में किस प्रकार संशोधन अभीष्ट है जिस प्रकार की अशुद्धियां उक्त ग्रन्थ में जिन महाशयों को मालूम हों शीघ्र सभा के दफ्तर में लिख भेजें अति कृपा होगी। निवेदक हरबिलास साडा सहायक मन्त्री परोपकारिणी सभा अजमेर। मेरा प्रश्न आर्यसमाजी भाइयों से यह है कि विज्ञापन में जो यह लिखा है कि अन्य प्रकार की भी अशुद्धियां बतलाया करते हैं इसके क्या माने हैं क्या इस लेख से स्वामीजी के लेख [illegible] न लीजावेगी।

सत्यार्थप्रकाश की शुद्धि की फिर प्रार्थना—

वेदप्रकाश वर्ष १५ मा० ८ अगस्त सन् १९११ पृष्ठ १९८ सत्यार्थप्रकाश में खाडिया धौलेश्वर महादेव समीपे अहमदाबाद ता० ६-७-११। श्रीयुत वेद-मूर्त्ति पण्डितवर्य्य श्रीतुलसीरामजी सादर प्रणाम कोटि है निम्न लेख सर्व साधारण के ज्ञातार्थ वेदप्रकाश में अवश्य प्रकट करें (१) सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास के आरम्भ में ४ मंत्र छपे हैं परन्तु ५ मंत्र होने चाहिये जो पंचम मंत्र

छपना था वह लिखनेवाले वा छापनेवाले के प्रमाद से छूट गया है वह मंत्र अब छपना चाहिये क्योंकि हिन्दी भाषा में जो लेख "हे मनुष्यो मैं सत्यभाषण रूप स्तुति करनेवाले मनुष्य को सनातन ज्ञानादि धन देता हूं और धारण करने-वाला हूँ वह अनुवाद निम्न मंत्र का बराबर है" "अहंदाम गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम्। अहं भुवं यजमानस्य चोदिता यज्वनःसाक्षी विश्व-स्मिन्भरे। ऋ० १०। ४९। ०१" (२) [illegible] समुल्लास में सप्तम श्लोक के अनन्तर अष्टम निम्न श्लोक "श्रुतिस्तुवेदोविज्ञेयोधर्मशास्त्रन्तुवैस्मृतिः। ते सर्वार्थेष्वमीमांसे ताभ्यांधर्मोहिनिर्बभौ। २। १०" होना चाहिये क्योंकि इस का अनुवाद हिन्दी में है जैसा कि श्रुतिवेद और स्मृति धर्मशास्त्र को कहते हैं इन से सब कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निश्चय करना चाहिये (३) षष्ठ समुल्लास में जो यह "प्रमाणानि कुर्वीत तेषां धर्मान्यथोदितानान्" पंक्ति लिखी है वह नहीं चाहिये उस के स्थान में—"स्थापयेत्तत्र तद्वश्यं कुर्य्याच्चसमयक्रियाम् ७।२०३" यह पंक्ति छपनी चाहिये क्योंकि हिन्दी में इसी का अनुवाद विद्यमान है। ऐसी २ छोटी २ भूलें सत्यार्थप्रकाश में रहगई हैं इसको शुद्ध करने में कुछ हानि नहीं है सिद्धान्त में फेर फार नहीं करना चाहियें सम्पादकजी आप ठीक समझें तो परोपकारिणी ऐसी अशुद्धि भविष्य में ठीक करें इसके विषय में कुछ थोड़ासा लेख अपनी ओर से लिखें फिर अन्य अशुद्धियां म लिख भेजूंगा। नारायणदास भक्त अहमदाबाद ता० ५। ८। ११ (टिपणी-इस प्रकार की अशुद्धियां अवश्य शुद्ध करानी चाहिये श्रीमती परोपकारिणी सभा ध्यान दे—सम्पादक)।

सत्यार्थप्रकाश फिर भी अशुद्धही रहा—

आर्यमित्र ता० १-८-१४ पृष्ठ २ में मं० जीवनदास पेन्शनर लाहौर ने सत्यार्थप्रकाश के संशोधन का एक नमूना पुस्तकाकार तैयार किया है इसमें सत्यार्थप्रकाश की कुछ मोटी २ अशुद्धियों का संशोधन दर्शाया गया है हम समझते हैं कि यदि सत्यार्थप्रकाश के सिद्धान्तों को बचाते हुए उसकी ऐसी भूलें शोध दीजांय जोकि लेखक क भ्रम अथवा प्रमाद से हुई हैं तो कोई हानि नहीं स्मरण रखना चाहिये कि स्वामीजी स्वयं कभी ग्रन्थ को अपने हाथ से नहीं लिखते थे।

फिर अशुद्धि की आवाज--

वेदप्रकाश अगस्त सन् १४ पृष्ठ २१६-कृपया इस पत्र को वेदप्रकाश में छाप दीजिये। महात्मन्! आपको विदित है कि सत्यार्थप्रकाश में अनेकों ऐसी अशुद्धियां हैं जिनके सहारे विपक्षी नित्यप्रति आक्षेप करते रहते हैं और प्रायः आर्योपदेशक निरुत्तर होजाते हैं परन्तु आश्चर्य है कि आर्यनेता इसके संशोधनका कोई उपाय नहीं करते क्या ऋषि दयानन्द का यह मन्तव्य नहीं था कि पहिले अपनी भूल निकाल कर दूसरे की भूल जतलायें यदि यह मान्य है तो जब तक सत्यार्थप्रकाश में अशुद्धियां हैं तब तक आपको कोई अधिकार दूसरों पर अक्षेप का नहीं है स्वामी दर्शनानन्दजीने पहिले विज्ञप्त कराया था कि मैं सत्यार्थ-प्रकाशकी अशुद्धियां निकाल कर दूंगा परन्तु वह कार्य न कर सके हमारी सम्मति में एक आर्यविद्वानोंकी महती सभा हो और उसमें जो अशुद्धियां ऋषिग्रन्थों में अथवा सत्यार्थप्रकाश में हों वह सर्वसम्मति से वेदशास्त्रानुकूल शोध दी जायें यदि आप आर्यविद्वानों को अपनी प्रभावशाली लेखनी द्वारा इस विषय पर आकर्षित करना चाहेंगे तो सम्भव है कि यह कार्य शीघ्र हो जाय रामनारायण सभासद आर्यसमाज (भास्करप्रकाश के लेखको देखलेते तो ऐसा न लिखते) पं० तुलसीरामजी भास्करप्रकाश की धमकी देते हैं और भास्करप्रकाश में जो लिखाहै वह लेख सत्यार्थप्रकाश की त्रिकाल में रक्षा नहीं कर सकता।

आजकल के विज्ञापन जो यह कहते हैं कि सिद्धान्तों को बचालो और सत्यार्थप्रकाश को शुद्ध कर लो यह इसलिये कहते हैं कि सिद्धान्तही गये तो फिर आर्यसमाज की ही अत्यास्ट हो जावेगी किन्तु स्वामीजी के जितने सिद्धान्त हैं सब वेदविरोधी हैं आज आर्यसमाज आग्रह में पड़ कर इनको भलेही सत्य माने किन्तु किसी दिन यह भी मानना पड़ेगा कि स्वामी दयानन्द के तो सिद्धान्तही वेदविरुद्ध हैं पहिले यही हाल सत्यार्थप्रकाश का था सनातनधर्म इसको अशुद्ध बतलाता था और आर्यसमाजी शुद्ध बाज २ आर्यसमाजी अब भी सत्यार्थप्रकाश को "सत्यार्थप्रकाश" ही मानते हैं किन्तु यह आनंद की बात है कि धर्मजिज्ञासु आर्यसमाजियों ने ही विज्ञापनों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि यह सत्यार्थप्रकाश नहीं किन्तु असत्यार्थप्रकाश है इसी प्रकार वे दिन भी नजदीक आनेवाले हैं कि जिनमें आर्यसमाजी स्वामी दयानन्दजी के सिद्धान्तों को अशुद्ध बतलावेंगे

नजदीक क्या किन्तु आचके इसका उदाहरण यह है कि पं० बद्रीप्रसादजो जोकि आर्यसमाज कानपुर में उपदेशक रहे हैं जिनका निवासस्थान काशीपुर है उन्होंने स्वामी दयानन्दजी के मान्य सिद्धान्त नियोग का बहुत उत्तम रीति से खण्डन किया है और वह खण्डन मर्यादा नामक मासिक पत्रिका इलाहाबाद में छपवा दिया है जिसकी तस्दिक चाहे मर्यादा और सनातनधर्मपताका मुरादाबाद में देख सकता है किन्तु शोक यह है कि आर्यसमाज की सभायें इसका विचारही नहीं करतीं स्वामी दयानन्द के शेष सिद्धान्त भी वेदविरोधी आर्यसमाजीही बतलावेंगे। जिस सत्यार्थप्रकाश को आर्यसमाज अपनी धार्मिक पुस्तक मानता है जिसके ऊपर आर्यसमाज की जड़ है वह सत्यार्थप्रकाश तो अदालतों में व्यभिचार फैलानेवाला साबित हो चुका है।

सन् १८९२ में एक सनातनधर्मी ने स्वामी दयानन्दजी के प्रिय सिद्धान्त नियोग के खण्डन में एक पुस्तक लिखी थी जब वह पुस्तक समाजियों ने देखी तब तो लेखक पर क्रोध आया, चाहिये था यह कि आर्यसमाजी उस पुस्तक का खण्डन करदेते भला यह शक्ति समाजमें कहांसे आई लाचारहोकर आर्यसमाजियों ने उस सनातनधर्मी पर अदालत में [illegible] कर दिया जब अभियोग चला तो उसकी कारवाई आरम्भ हुई साहिब मजिस्ट्रेट पेशावर ने बयान सुन कर यह फैसला लिखा है देखिये—

इस बात से इन्कार नहीं हो सकता कि दयानन्द की खास पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में व्यभिचार की तालीम मोजूद है मुद्दई खुद इस बात को स्वीकार करता है कि वह नियमों पर जिनमें विवाहिता स्त्री को अपने असली पति के जीतेजी किसी अन्य विवाहित पुरुष के साथ भोग करने की आज्ञा है विश्वास रखता है यह रिवाज बेशुभह व्यभिचार है इस वास्ते यह जिक्र करते हुये कि दयानन्द के शिष्य इन उपरोक्त नियमों पर विश्वास लाये हुये रस्म व्यभिचार का आरम्भ कर रहे हैं और अगर इन नियमों पर इनका विश्वास इसी तरह रहा तो यह इस व्यभिचार [illegible] उन्नति देंगे मुद्दालय ने सचाई से एक प्रकट बात को प्रकाश किया है।

भला समाजियों को कहां सन्तोष ये तो देशोन्नति पर कमर-ही बांधे बैठे हैं इन्होंने साहब जज के यहां फौरन अपील किया साहब जज ने भी इस को ख़ारिज कर दिया और खारिज करते हुये यह रिमार्क दिया है—

दयानन्द के नियम ऐसे नियम हैं कि वे हिन्दूधर्म तथा दूसरे मजहबों की निन्दा करते हैं और इस किताब (सत्यार्थप्रकाश) के चन्द हिस्से खुद भी निहायत फुहश (घृणित) हैं। ये फैसले उसी सत्यार्थप्रकाश पर लिखे गये हैं जिसके लेख को समाज पवित्र शिक्षा कहती है जिसके लेखक को महर्षि के नाम से याद करती है हमारी राय में तो जब तक यह पुस्तक संसार में रहेगी तब तक परस्पर में विरोध और स्त्रियों में व्यभिचार फैलाती रहेगी पबलिक की शान्ति के लिये स्त्रियों के धर्म के लिये किसी दिन मजहबों का खण्डन और नियोग भी इसमें से अवश्य निकाला जावेगा। सत्यार्थप्रकाश सत्यार्थ नहीं इसको प्रायः सभी आर्यसमाजी [illegible] किन्तु उसको अब भी सत्य कहते हैं इसका कारण विचारणीय है। सत्यार्थप्रकाश पर जैसे विज्ञापन ये निकल चुके हैं ऐसे आगे को भी निकलते रहेंगे इस सत्यार्थप्रकाश की शुद्धि कोई कहां तक करेगा हमारा तो यह कथन है कि जब तक इस सत्यार्थप्रकाश में एक भी वाक्य रहेगा तब तक यह अशुद्ध ही होगा क्योंकि यह वास्तविक में सत्यार्थप्रकाश ही नहीं इसकी तो वही हालत है कि "गंगाधराणां स्नानं न दानम्। विद्याधराणां पठनं न पाठनम्" नाम इसका सत्यार्थप्रकाश है परन्तु आरम्भ से अन्त तक असत्यार्थप्रकाश ही है पं० तुलसीरामजी ने समझ लिया कि द्वितीयावृत्ति शुद्ध है इस बात को तो कोई विद्वान् स्वीकार ही नहीं कर सकता फिर हम क्यों स्वीकार करें यह समझ कर मिश्रजी के इस लेख पर कि अब द्वितीयावृत्ति तो शुद्ध है लेखनी ही नहीं उठाई पण्डितजी की इस सत्यता के ग्रहण का हम उनको धन्यवाद देते हैं किन्तु पूर्ण धन्यवाद के पात्र पण्डित जी उस समय हो सकते थे जब साफ अक्षरों में लिखते कि द्वितीयावृत्ति भी अशुद्ध है पण्डितजी ने इसको छिपाया किन्तु बार २ पाठ निकालने से सत्यार्थ प्रकाश का अशुद्ध रहना समाज को माननाही पड़ा। सत्यार्थ पर यह थोड़ासा लेख एक इशारा मात्र है और यदि सत्यार्थप्रकाश पुस्तक अशुद्ध इस पर समाजियों की पूरी सम्मति लिखी जावे तो फिर यह लेख टाड राजस्थान से कम न होगा समझदारों को थोड़े से ही संतोष हो जाया करता है यह समझ इस लेख की समाप्ति यहां पर ही करता हूँ।

———:o:———

ब्रह्मादि निर्णय।

सत्यार्थप्रकाश आरम्भ से—

ओ३म् शन्नो मित्रः शंवरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णु रुरुक्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारम्। ॐ शान्ति-श्शान्तिश्शान्तिः।

अर्थ—(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्यों कि इसमें जो अ उ और म तीन वर्ण मिलकर एक (ओ३म्) समुदाय हुआ है इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आ जाते हैं जैसे अकार से विराट अग्नि और वस्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तेजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है इसका ऐसा ही वेदादि[1] सत्य शास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं। (प्रश्न) परमेश्वर से भिन्न अर्थों के वाचक विराट आदि नाम क्यों नहीं? ब्रह्माण्ड, पृथिवी आदि भूत इन्द्रादि देवता, और वैद्यकशास्त्र में शुण्ठ्यादि औषधियों के भी ये नाम हैं वा नहीं? (उत्तर) हैं परन्तु परमात्मा के भी हैं। (प्रश्न) केवल देवों का ग्रहण इन नामों से करते हो वा नहीं? (उत्तर) आप के ग्रहण करने में क्या प्रमाण है? (प्रश्न) देव सब प्रसिद्ध और [illegible] हैं इससे मैं उनका ग्रहण करता हूं। (उत्तर) क्या परमेश्वर अप्रसिद्ध और उससे कोई उत्तम भी है पुनः ये नाम परमेश्वर के भी क्यों नहीं मानते जब परमेश्वर अप्रसिद्ध[2] और उसके तुल्य भी कोई नहीं तो उससे उत्तम कोई क्यों कर हो सकेगा।

१—आर्यसमाज के स्वतः प्रमाण वेद में कहीं पर भी ओंकार का व्याख्यान नहीं यहां पर सनातनधर्म के ग्रन्थों को स्वतः प्रमाण माना जावेगा।

२—यहां दयानन्द ईश्वर को अप्रसिद्ध बतलाते हैं!

इससे आपका यह कहना सत्य नहीं क्योंकि आप के इस कहने में बहुत से दोष भी आते हैं जैसे "उपस्थित परित्यज्यानुपस्थितयाचत इति बाधितन्यायः" किसी ने किसी के लिये भोजन का पदार्थ रखके कहा कि आप भोजन कीजिये और जो वह उसको छोड़ के अप्राप्त भोजन के लिये जहां तहां भ्रमण करे उसको बुद्धिमान न जानना चाहिये क्योंकि वह उपस्थित नाम समीप प्राप्त हुए पदार्थ को छोड़ के अनुपस्थित अर्थात् अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति के लिये श्रम [illegible] इसलिये जैसा वह पुरुष बुद्धिमान नहीं वैसाही आप का कथन हुआ। क्योंकि आप उन विराट नामों के जो प्रसिद्ध प्रमाण सिद्ध परमेश्वर और ब्रह्माण्डादि उपस्थित अर्थों का परित्याग करके असम्भव और अनुपस्थित देवादि के ग्रहण में श्रम करते हैं इसमें कोई भी प्रमाण वा युक्ति नहीं जो आप ऐसा कहें कि जहां जिसका प्रकरण है वहां उसी का ग्रहण करना योग्य है जैसे किसी ने किसी से कहा कि "हे भृत्यत्वं सैन्धवमानय" अर्थात् तू सैन्धव को लेआ तब उसको समय अर्थात् प्रकरण का विचार करना अवश्य है क्योंकि सैन्धव नाम दो पदार्थों का है एक घोड़े का दूसरा लवण का जो स्वस्वामी का गमन समय हो तो घोड़ा और भोजन काल हो तो लवण को ले आना उचित है। और जो गमन समय में लवण और भोजन समय [illegible] ले आवे तो उसका स्वामी उस पर क्रुद्ध होकर कहेगा कि तू निर्बुद्धि पुरुष है गमन समय में लवण और भोजनकाल में घोड़े के लाने का क्या प्रयोजन था तू प्रकरणवित् नहीं है नहीं तो जिस समय में जिसको लाना चाहिये था उसी को लाता जो तुझ को प्रकरण का विचार करना आवश्यक था वह तूने नहीं किया इससे तू मूर्ख है मेरे पास से चला जा इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहां जिसका ग्रहण करना उचित हो वहां उसी अर्थ का ग्रहण करना चाहिये तो ऐसाही हम और आप सब लोगों को मानना और करना ही चाहिये।

अथ मन्त्रार्थ। ओ३म् खम्ब्रह्म ॥ १ ॥ यजु० अ० ४० मं० १७ ॥ देखिये वेदों में ऐसे प्रकरणों में "ओ३म्" आदि परमेश्वर के नाम आते हैं। ओ३मित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ॥ २ ॥ छान्दोग्य उपनिषद मं० १ ॥ ओ३मित्येतदक्षर मिदꣳसर्वंतस्योपव्याख्यानम् ॥ ३ ॥ माण्डूक्य० मं० १ ॥

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति [illegible] यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्तेपदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ ४ ॥ कठोपनिषद । वल्ली २ मं० १५ ॥ प्रशासितारं सर्वेषा मणीयां समणोरपि । रुक्माभं स्वप्न धी गम्यं विद्यातं पुरुषंपरम् ॥ ५ ॥ एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् । इन्द्र मेके परे प्राण मपरे ब्रह्म शास्ततम् ॥ ६ ॥ मनु० अ० १२ श्लोक १२२ व १२३ ॥

सत्यार्थप्रकाश पृ० ११ पं० ११ से—

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः स शिवस्सोक्षरस्सपरमः स्वराट् स इन्द्रस्सकालग्निस्सचन्द्रमाः (कैवल्योपनिषद) इन्द्रं मित्रं वरुण मग्नि माहु रथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद्विप्रा वहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वान माहुः ऋ० मं० १ अनु० २२ सू० १६४ मं० ४६ भूरसि भूमिरस्य दिति रसि विश्व धाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री पृथिवीं यच्छ पृथिवींदृंह पृथिवीं माहिꣳसीः । यजु० अ० १३ मं० १८ इन्द्रो महा रोदसीम प्रथच्छव इन्द्रः सूर्य मरोचयत् । इन्द्रेह विश्वा भुवनां नियेमिर इन्द्रेश्वानास इन्द्रः ॥ सामवेद ७ प्र० ३ अ० ८ सू० १६ अ० २ खं० ३ सू० २ मं० ८ ॥ प्राणाय नमोयस्य सर्वमिदंवशे । योभूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् । अथर्ववेद काण्ड ११ अ० २ सूत्र ४ मं० १ ॥

(अर्थ) यहां इन प्रमाणों के लिखने में तात्पर्य यही है कि जो ऐसे प्रमाणों में ओंकारादि नामों से परमात्मा का ग्रहण होता है यह लिख आये तथा परमेश्वर का कोई भी नाम अनर्थक नहीं जैसे लोक में दरिद्री आदि के धनपति आदि नाम होते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि कहीं गौणिक कहीं

कार्मिक और कहीं स्वाभाविक अर्थों के वाचक हैं ओ३म् आदि नाम सार्थक हैं जैसे (ओ३म् खं०) अवतीत्योम् आकाशमिव व्यापकत्वात् खम् सर्वेभ्यो बृहत्वाद ब्रह्मरक्षा करने से (ओ३म्) आकाशवत् व्यापक होने से (खम्) और सबसे बड़ा होने से (ब्रह्म) ईश्वर का नाम है ॥ १ ॥ (ओ३म्) जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता उसी की उपासना करनी योग्य है अन्य की नहीं ॥ २ ॥ (ओमित्येत०) सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम (ओ३म्) को कहा है अन्य सब गौणिक नाम हैं (३) (सर्वे वेद०) क्योंकि सब वेद सब धर्मानुष्ठानरूप तपश्चरण जिसका कथन और मान्य करते और जिसकी प्राप्ति की इच्छा करके ब्रह्मचर्य्याश्रम करते हैं उसका नाम ओ३म् है ॥ ४ ॥

(प्रशासिता) जो सबको शिक्षा देनेहारा सूक्ष्म से सूक्ष्म स्वप्रकाशस्वरूप समाधिस्थ बुद्धि से जानने योग्य है उसको परमपुरुष जानना चाहिये । और स्वप्रकाश होने से "अग्नि" विज्ञानस्वरूप होने से "मनु" सबका पालन करने और परमैश्वर्यवान होने से "इन्द्र" सब का जीवनमूल होने से "प्राण" और निरन्तर व्यापक होने से परमेश्वर का नाम "ब्रह्म" है । (स ब्रह्मा स विष्णु०) सब जगत के बनाने से "ब्रह्मा" सर्वत्र व्यापक होने से "विष्णु" दुष्टों को दण्ड देके रुलाने से "रुद्र" मङ्गलमय और सबका कल्याणकर्त्ता होने से "शिव" "यः सर्वमश्नुते न क्षरति न विनश्यति तदक्षरम् । यः स्वयं राजते स स्वराट् योऽग्निरिव कालः कलयता प्रलयकर्ता स कालाग्निरीश्वरः" (अक्षर) जो सर्वत्र व्याप्त अविनाशी (स्वराट्) स्वयं प्रकाशस्वरूप और (कालाग्नि) प्रलय में सबका काल और कालका भी काल है इसलिये परमेश्वर का नाम कालाग्नि है (इन्द्र मित्र) जो एक अद्वितीय सत्यब्रह्म वस्तु है उसी के इन्द्रादि सब नाम हैं द्युषु शुद्धेषु पदार्थेषु भवो दिव्यः शोभनानि पर्णानि पालनादि पूर्णानि कर्माणि वा यस्य सः "यो गुर्वात्मा स गरुत्मान" "यो मातरिश्वा वायुरिव बलवान् समातरिश्वा" (दिव्य) प्रकृत्यादि दिव्य पदार्थों में व्याप्त (सुपर्ण) जिसके उत्तम पालन और पूर्णकर्म हैं (गरुत्मान्) जिसका आत्मा अर्थात् स्वरूप महान् है (मात-

रिश्वा) जो वायु के समान अत्यन्त बलवान है इसलिये परमात्मा के दिव्य सुपर्ण गरुत्मान और मातरिश्वा ये नाम हैं शेष नामों का अर्थ आगे लिखेंगे।

(भूमिरसि०) "भवन्ति भूतानि यस्यांसाभूमिः" जिसमें सब भूत प्राणी होते हैं इसलिये ईश्वर का नाम भूमि है शेष नामों का अर्थ आगे लिखेंगे। (इन्द्रो मह्ना०) इस मंत्र में इन्द्र परमेश्वर का नाम है इसलिये यह प्रमाण लिखा है (प्राणाय) जैसे प्राण के बस सब शरीर और इन्द्रियां होती हैं वैसे ही परमेश्वर के बस में सब जगत रहता है इत्यादि प्रमाणों के ठीक २ अर्थों के जानने से इन नामों करके परमेश्वरही का ग्रहण होता है क्योंकि ओ३म् और अग्न्यादि नामों के अर्थ से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है जैसा कि व्याकरण निरुक्त आप्त [illegible] ऋषि मुनियों का व्याख्यानों से परमेश्वर का ग्रहण देखने में आता है वैसा ग्रहण करना सब योग्य है परन्तु (ओ३म्[1]) यह तो केवल परमात्माही का नाम है और अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियमकारक हैं इससे क्या सिद्धि हुआ कि जहां २ स्तुति प्रार्थना उपासना सर्वज्ञव्यापक शुद्ध सनातन-धर्म और सृष्टिकर्ता आदि विशेषण लिखे हैं वहीं २ इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है और जहां २ ऐसे प्रकरण हैं कि—ततो विराट् जायत विराजो अधिपुरुषः। श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखदग्निरजायत। तेन देवा अजयन्त पश्चाद्भूमि मथो पुरः॥ यजु० अ० ३१ तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम् अन्नाद्रेतः॥ रेत सः पुरुषः सवाएष पुरुषोऽन्नरसमयः। यह तैत्तिरीयोपनिषद ब्रह्मानन्दवल्ली प्रथमानुवाक का वचन है ऐसे प्रमाणों में विराट पुरुषदेव आकाश वायु अग्नि जल भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थों के होते हैं क्योंकि जहाँ २ उत्पत्ति स्थिति प्रलय अल्पज्ञ जड़ दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों वहां २ परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता वह उत्पत्ति आदि व्यवहारों से पृथक् है और उपरोक्त मंत्रों में उत्पत्ति स्थिति व्यवहार हैं इसी से यहां विराट आदि नामों से परमात्मा का

१ स्वीकारता का नाम भी है यज्ञ में जीहां के स्थान में "ओ३म्" ही बोला जाता है दयानन्द यज्ञ जानते तो यह न लिखते।

ग्रहण न होके संसारी पदार्थों का ग्रहण होता है किन्तु जहाँ २ सर्वज्ञादि विशेषण हों वहाँ २ परमात्मा और जहाँ २ इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख और अल्पज्ञादि विशेषण हों वहाँ २ जीव का ग्रहण होता है ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये क्योंकि [illegible] का जन्म मरण कभी नहीं होता इससे विराट् आदि नाम और जन्मादि विशेषणों से जगत के जड़ और जीवादि पदार्थों का ग्रहण करना उचित है परमेश्वर का नहीं अब जिस प्रकार विराट् आदि नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता वहप्रकार नीचे लिखे प्रमाण जानो अथ ओङ्कारार्थः (वि) उपसर्ग पूर्वक (राजृदीप्तौ) इस धातु से क्विप् प्रत्यय करने से विराट् शब्द सिद्ध होता है "योविविधंनाम चराचरं जगद्राजयति प्रकाशयति सा विराट्" विविध अर्थात् जो बहु प्रकार के जगत को प्रकाशित करे इससे विराट् नाम से परमेश्वर का ग्रहण होता है (अञ्चुगति पूजनयोः) अग अगि इण गत्यार्थक धातु हैं इनसे "अग्नि" शब्द सिद्ध होता है "गतेस्त्रयोऽर्थाः" "ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति पूजनं नाम सत्कारः" योऽञ्चति अ[illegible]ति सोऽयमग्निः" जो ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ जानने प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम अग्नि है (विश प्रवेशने) इस धातु से विश्व शब्द सिद्ध होता है "विशन्ति प्रविष्ठानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन् योवाऽऽकाशादि षु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः सः विश्व ईश्वरः" जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इन में व्याप्त होके प्रविष्ट हो रहा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम विश्व है इत्यादि नामों का ग्रहण अकारमात्र से होता है "ज्योतिर्वै हिरण्यं तेजो वै हिरण्यमित्यैतरेये शतपथे च ब्राह्मणे" "यो हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भ उत्पत्ति निमित्त मधिकरणं स हिरण्यगर्भः जिसमें सूर्यादि तेजः वाले लोक उत्पन्न होके जिसके आधार रहते हैं अथवा जो सूर्यादि तेजस्वरूप प[illegible] नाम उत्पत्ति और निवास स्थान है इससे उस परमेश्वर का नाम "हिरण्यगर्भ" है इसमें यजुर्वेद के मंत्र का प्रमाण है ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु० अ० १२ । मं० ४ ॥

इत्यादि स्थलों मे हिरण्यगर्भ से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है। (वा गति गन्ध नयोः) इस धातु से वायु शब्द सिद्ध होता है (गन्धनं हिंसनम्) "योवाति चराचरञ्जगद्धरति बलिनां बलिष्ठः स वायुः" जो चराचर जगतका धारण जीवन और प्रलय करता है और सब बलवानों से बलवान है इससे उस ईश्वर का नाम 'वायु' है (तिज निशाने) इस धातु से तेजः और इससे तद्धित करने से "तैजस" शब्द सिद्ध होता है जो आप स्वयं प्रकाश और सूर्यादि तेजस्वी लोगों का प्रकाश करन वाला है इससे उस ईश्वर का नाम तैजस है इत्यादि नामार्थ उकारमात्र से ग्रहण होते हैं (ईशऐश्वर्ये) इस धातु से ईश्वर शब्द सिद्ध होता है "य इष्टे सर्वैश्वर्यवान् वर्त्तते स ईश्वर" जिसका सत्य विचार शील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है इससे उस परमात्मा का नाम ईश्वर है (दो अव खण्डने) इस धातु से अदिति और इससे तद्धित करने से "आदित्य" शब्द सिद्ध होता है न विद्यते विनाशोयस्य सोऽयम दितिः अदिति रेव आदित्यः जिसका विनाश कभी न हो उसी ईश्वर की "आदित्य" संज्ञा है (ज्ञा अ व बोधने) 'प्र' पूर्वक इस धातु से प्रज्ञ और इससे तद्धित करने से 'प्राज्ञ' शब्द सिद्ध होता है "यः प्रकृष्टतया चराचरस्य जगतो व्यवहारं जानाति स प्रज्ञः प्रज्ञ एव प्राज्ञः" जो निर्भ्रान्त ज्ञान युक्त सब चराचर जगत के व्यवहार का यथावत् जानता है इससे ईश्वर का नाम प्राज्ञ है इत्यादि नामार्थ मकार से ग्रहीत होते हैं जैसे एक २ मात्रा से तीन २ अर्थ यहां व्याख्यात किये हैं वैसे ही अन्य नामार्थ भी ओंकार से जाने जाते हैं जो (शन्नो मित्रः शं व०) इस मंत्र में मित्रादि नाम हैं वे भी परमेश्वर के हैं क्योंकि स्तुति प्रार्थना उपासना श्रेष्ठ ही की की जाती है श्रेष्ठ उसको कहते हैं जो गुण कर्म स्वभाव और सत्य २ व्यवहारों में सबसे अधिक हो उन सब श्रेष्ठों में भी जो अत्यन्त श्रेष्ठ उसको परमेश्वर कहते हैं जिसके तुल्य कोई न हुआ न है और न होगा जब तुल्य नहीं तो उससे अधिक क्योंकर हो सकता है जैसे परमेश्वर के सत्य न्याय दया सर्व सामर्थ्य और सर्वज्ञत्वादि अनन्त गुण हैं वैसे अन्य किसी जड़ पदार्थ व जीव के नहीं हैं जो पदार्थ सत्य है उसके गुण कर्म्म स्वभाव भी सत्य होते हैं इसलिये मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर ही की स्तुति प्रार्थना और उपासना करें

उससे भिन्न की कभी न करें [illegible] विष्णु महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वान् दैत्य दानवादि निकृष्ट मनुष्य और अन्य साधारण मनुष्यों ने भी परमेश्वर ही में विश्वास करके उसी की स्तुति प्रार्थना और उपासना की उस से भिन्न की नहीं की। वैसे हम सब को करना योग्य है इसका विशेष विचार मुक्ति और उपासना विषय में किया जायगा।

(प्रश्न) मित्रादि नामों से सखा और इन्द्रादि देवों के प्रसिद्ध व्यवहार देखने से उन्हीं का ग्रहण करना चाहिये (उत्तर) यहां उनका ग्रहण करना योग्य नहीं क्योंकि जो मनुष्य किसी का मित्र है वही अन्य का शत्रु और किसी से उदासीन भी देखने में आता है इससे मुख्यार्थ में सखा आदि का ग्रहण नहीं हो सकता किन्तु [illegible] सब जगत का निश्चित मित्र न किसी का शत्रु और न किसी का उदासीन है इससे भिन्न कोई भी जीव इस प्रकार का कभी नहीं हो सकता इस लिये परमात्मा का ग्रहण यहाँ होता है हाँ गौण अर्थ में मित्रादि शब्द से सुहृदादि मनुष्यों का ग्रहण होता है। (ञिमिदा स्नेहने) इस धातु से औणादिक "क्त्र" प्रत्यय के होने से 'मित्र' शब्द सिद्ध होता है "मेद्यति स्निह्यति स्निह्यते वासमित्रः" जो सब से स्नेह करके और सब को प्रीति करने योग्य है इस से उस परमेश्वर का नाम मित्र है। (वृञ् वरणे वर ईप्सायाम्) इन धातुओं से उणादि "उनन्" प्रत्यय होने से 'वरुण' शब्द सिद्ध होता है "यः सर्वान् शिष्टान् मुमुक्षून्धर्मात्मनो वृणोत्यथवा यःशिष्टैर्मुमुक्षुभिर्धर्मात्माभि र्व्रियते वर्ण्यते वास वरुणः परमेश्वरः" जो आत्मयोगी विद्वान् मुक्ति [illegible] करनेवाले और धर्मात्माओं का स्वीकार करता अथवा जो शिष्ट मुमुक्षु और धर्मात्माओं से ग्रहण किया जाता है वह ईश्वर "वरुण" संज्ञक है अथवा "वरुणो नाम वरः श्रेष्ठः" जिस लिये परमेश्वर सब से श्रेष्ठ है इसी लिये उसका नाम "वरुण" है (ऋ गतिप्रापणयोः) इस धातु से "यत्" प्रत्यय करने से "अर्य्य" शब्द सिद्ध होता है। और "अर्य्य" पूर्वक (माङ् माने) इस धातु से "कनिन्" प्रत्यय होने से "अर्यमा" शब्द सिद्ध होता है "योऽर्यान् स्वामिनो न्यायाधीशान मिमीते मान्यान करोति सोऽर्यमा" जो सत्य न्याय के करनेहारे मनुष्यों का मान्य

और पाप तथा पुण्य करनेवालों को पाप और पुण्य के फलों का यथावत् सत्य २ नियमकर्ता है इसी से उसी परमेश्वर का नाम "अर्यमा" है (इदि परमैश्वर्ये) इस धातु से 'रन्' प्रत्यय करने से 'इन्द्र' शब्द सिद्ध होता है "य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमेश्वरः" ॥ जो अखिल ऐश्वर्ययुक्त है इससे उस परमात्मा का नाम [illegible] है "बृहत्" शब्द पूर्वक (पारक्षणे इस धातु से डति प्रत्यय बृहत् के तकार का लोप और सुडागम होने से "बृहस्पति" शब्द सिद्ध होता है "यो बृहतामाकाशादीनापतिः स्वामी पालयिता स बृहस्पतिः" ॥ जो बड़ों से भी बड़ा और बड़े आकाशादि ब्रह्माण्डों का स्वामी है इससे उस परमेश्वर का नाम बृहस्पति है (विलृ व्याप्तौ) इस धातु से (नु) प्रत्यय होकर 'विष्णु' शब्द सिद्ध हुआ है "वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरंजगत् स विष्णुः" चर और अचररूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम विष्णु है "उरुर्महानक्रमः पराक्रमो यस्य स उरुक्रमः" अनन्त पराक्रमयुक्त होने से परमात्मा का नाम 'उरुक्रम' है। जो परमात्मा (उरुक्रमः) महा पराक्रमयुक्त (मित्रः) सब का सुहृत अविरोधी है वह (शम्) सुखकारक वह (वरुणः) [illegible] वह (शम्) सुखस्वरूप वह (अर्यमा) न्यायाधीश वह (शम्) सुखप्रचारक वह (इन्द्रः) जो सकल ऐश्वर्य्यवान् और (शम्) सकल ऐश्वर्य्यदायक वह (बृहस्पतिः) सब का अधिष्ठाता वह (शम्) विद्याप्रद और (विष्णु) जो सब में व्यापक परमेश्वर वह (नः) हमारा कल्याणकारक (भवतु) हो।

(वायो ते ब्रह्मणे नमोऽस्तु) (बृह बृहि वृद्धौ) इन धातुओं से 'ब्रह्म' शब्द सिद्ध होता है जो सब के ऊपर विराजमान सब से बड़ा अनन्तयुक्त परमात्मा है उस ब्रह्म को हम नमस्कार करते हैं हे परमेश्वर (त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि) आपही अन्तर्यामिरूप से प्रत्यक्ष ब्रह्म हो (त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि) मैं आपही को प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा क्योंकि आप सब जगह में व्याप्त होके सबको नित्यही प्राप्त हैं (ऋतंवदिष्यामि) जो आप की वेदस्थ यथार्थ आज्ञा है उसीका मैं सब के लिये उपदेश और आचरण भी करूँगा (सत्यं वदिष्यामि) सत्य बोलूँ सत्य मानूं और सत्यही करूँगा (तन्मा

मवतु) सो आप मेरी रक्षा कीजिये (तद्वक्तारमवतु) सो आप मुझ आप्त सत्यवक्ता की रक्षा कीजिये कि जिससे आपकी आज्ञा में मेरी बुद्धि स्थिर होकर विरुद्ध कभी न हो क्योंकि जो आप की आज्ञा है वही धर्म और जो उससे विरुद्ध वही अधर्म है "अवतुमामवतुवक्तारम्" यह दूसरी बार पाठ अधिकार्थ के लिये है जैसे 'कश्चित् कञ्चित् प्रतिवदतित्वंग्रामं गच्छ २" इस में दो बार क्रिया के उच्चारण से तू शीघ्रही ग्राम को जा ऐसा सिद्ध होता है ऐसेही यहां कि आप मेरी अवश्य रक्षा करो अर्थात् धर्म से सुनिश्चित और अधर्म से घृणा सदा करूं ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये मैं आप का बड़ा उपकार मानूँगा (ओं शान्ति शान्ति शान्ति) इसमें तीन बार शान्ति पाठ का यह प्रयोजन है कि त्रिविधानि अर्थात् इस संसार में तीन प्रकार के दुःख हैं एक "आध्यात्मिक" जो आत्मा शरीर में अविद्या रागद्वेष मूर्खता और ज्वर पीड़ादि होते हैं। दूसरा "आधिभौतिक" जो शत्रु व्याघ्र और सर्पादि से प्राप्त होता है। तीसरा "आधिदैविक" अर्थात् जो अतिवृष्टि अतिशीत अतिउष्णता मन और इन्द्रियों की अशान्ति से होता है इन तीन प्रकार के क्लेशों से आप हम लोगों को दूर करके कल्याणकारक कर्मों में सदा प्रवृत्त रखिये क्योंकि आपही कल्याणस्वरूप सब संसार के कल्याणकर्त्ता और धार्मिकमुमुक्षुओं को कल्याण के दाता हैं इसलिये आप स्वयं अपनी करुणा से सब जीवों के हृदय में प्रकाशित हूजिये कि जिससे सब जीव धर्म का आचरण और अधर्म को छोड़ के परमानन्द को प्राप्त हों और दुःखों से पृथक् रहैं "सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इस यजुर्वेद के वचन से जो जगत् नाम प्राणी चेतन और जंगम अर्थात् जो चलते फिरते हैं "तस्थुषः" अप्राणी अर्थात् स्थावर जड़ पदार्थ पृथिवी आदि हैं उन सब के आत्मा होने और स्वप्रकाशरूप सबके प्रकाश करने से ईश्वर का नाम "सूर्य्य" है।

तिमिर भास्कर—

धन्य है स्वामीजी! आप तो दशही उपनिषद् मानते थे आज मतलब पड़ा तो कैवल्य भी मान बैठे और प्रमाण से ब्रह्मा विष्णु शिव को ईश्वर बताया और यहां उनको पूर्वज विद्वान् बतलाते हो इसमें कोई प्रमाण दिया होता कि यह मनुष्य थे

यदि प्रमाण नहीं मिला था तो कोई उलटी सीधी संस्कृतही गढ़ी होती आपके चेले उसे पत्थर की लकीर समझ लेते यह आपही को योग्य है ब्रह्मादिक ईश्वर के नाम बता कर फिर इन्हें एक विद्वान् बता दिया और [illegible] भी आपका अशुद्ध है इस का अर्थ यह है कि वह ब्रह्मारूप होकर जगत की रचना करता विष्णुरूप होकर पालन करता रुद्ररूप हो दुष्टों को कर्म फल भुगाकर रुलाता शिव हो मंगल करता है वही अक्षर स्वराट् इन्द्र चन्द्रमा है और कालाग्निरूप धारण कर प्रलय करता है यह सब देवता उसी के रूप हैं नहीं तो आप बताइये कि यह तीनों विद्वान् किनके पुत्र थे? जो कहो कि स्वयं उत्पन्न होगये थे तो आपका सृष्टिक्रम जाता रहेगा कि माता पिता के बिना कोई मनुष्य नहीं उत्पन्न होता यही तो आपकी भंग की तरंग है जो जीवनचरित्र में लिखा है कि मुझे भंग पीने की ऐसी आदत थी कि दूसरे दिन होश आता था।

भास्करप्रकाश—

कैवल्यउपनिषद क्या आप के सन्मुख तो अल्लोपनिषद का भी प्रमाण दिया जासकता है क्योंकि आप उसको मानते हैं जब कि "इन्द्रं मित्रं वरुण मग्नि माहुः" इत्यादि वेद मंत्रों से स्वामीजी सिद्ध कर चुके कि ये सब नाम प्रार्थनोपासना प्रकरण में ईश्वर के हैं तो फिर वेद के अनुकूल चाहे जिस उपनिषद वा अन्य किसी ग्रन्थ का प्रमाण अमान्य नहीं हो सकता और आप का तो स्वत्वही नहीं है कि जिन पुस्तकों को आप मानते हैं उन में से किसी के वाक्य को भी न मानें क्योंकि आपके मत में तो "संस्कृतं प्रमाणम्" है दूसरी बात का समाधान यह है कि ब्रह्मा विष्णु आदि पूर्वज पुरुष विशेष देहधारी थे—

यह बात तो सब हिन्दू मानते ही हैं पुराणों और इतिहासों में उनके जन्मादि चरित्र वर्णितही हैं इस विषय में स्वामीजी को प्रमाण देने की आवश्यकता न थी क्योंकि सिद्ध को सिद्ध करना पिष्टपेषण है ब्रह्माजी आदि को

देहधारी तो स्वयंही लोग मानते हैं हां ब्रह्मादि नाम परमात्मा के भी हैं इस विषय को लोग नहीं मानते थे अतः स्वामीजी ने वेदों मनुस्मृति और लोगों के माने हुये कैवल्योपनिषद से भी यह सिद्ध कर दिया कि यह नाम परमात्मा के भी हैं आप जो अर्थ करते हैं कि वह ब्रह्मारूप होकर जगत को उत्पन्न करता है इत्यादि यह आपका अर्थ अक्षरार्थ में नहीं मिलता क्योंकि "स ब्रह्मा स विष्णु" इत्यादि का सीधा अक्षरार्थ यह है कि सः वह ब्रह्मा-ब्रह्मा है सः वह विष्णुः-विष्णु है इत्यादि आप बताइये कि "सः ब्रह्मा" का यह अर्थ कैसे होगया कि वह ब्रह्मारूप होकर जगत् को उत्पन्न करता है क्योंकि मूल में रूप होकर यह अर्थ किसी पद से नहीं निकलता अतः स्वामीजी का ठीक और आपही का वे ठीक है और बिना पिता के पुत्र नहीं होता यह नियम सृष्टि की उत्पत्ति के पश्चात् का है किन्तु सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ही सृष्टि के पिता होते हैं और आरम्भ का वही नियम है स्वामी जी का लेख भंग की तरंग नहीं है किन्तु जीवन चरित्र में यदि बाल्यावस्था का भंग पीने का वृत्तान्त लिखा होगा तो वह आपही के माननीय भोलानाथ पार्वतीश की सामयिक उपासना का फल होगा जिसके लिये पार्वतीजी १२ वर्ष तक घोटती हैं तब भी फोक अवश्य रहता है यदि प्रमाण की आवश्यकता हो तो भांग चरस आदि पीनेवाले अपने पौराणिकों से पूछ लीजिये।

मीक्षा—पं० [illegible] अच्छी सफाई से लिखते हैं कि कैवल्योपनिषद क्या आपके सन्मुख तो अल्लोपनिषद भी प्रमाण है क्यों साहब भला सनातनधर्म के लिये तो अल्लोपनिषद या कैवल्योपनिषद का प्रमाण है किन्तु समाजियों के लिये क्या प्रमाण है यदि आर्यसमाज पूछ बैठे कि ब्रह्मा ईश्वर का नाम है इस का प्रमाण दो फिर तुलसीरामजी क्या उत्तर देंगे बस अब तो चाल बन्द हो जावेगी क्योंकि "स ब्रह्मा स विष्णु" जिस कैवल्योपनिषद पर पण्डित ज्वालाप्रसादजी एतराज करते हैं उसके लिये सत्यार्थप्रकाश में समाजी वेद का प्रमाणही नहीं दिया और न पंडित तुलसीराम से ही देते बना पंडित तुलसीराम ने यह उत्तर दिया है कि "इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहुः" इत्यादि वेद मंत्रों से स्वामीजी सिद्ध कर चुके कि वे सब नाम ईश्वर के हैं

यह इतना अंधेर कबतक चलेगा पं० जी महाराज कैवल्योपनिषद के कहे ब्रह्मा विष्णु रुद्र शिव आदि नामों में स्वामी दयानन्द ने एक भी प्रमाण नहीं दिया इन नामों को सब में मिलाकर [illegible] आंखों में पट्टी न लगाइये। हम को इतना शोक प्रमाण न होने का नहीं जितना कि पं० तुलसीराम के धोका देने का है आज भी यदि कोई मनुष्य यह दिखला दे कि कैवल्योपनिषद के कहे नामों में स्वामी दयानन्दजी ने यह प्रमाण दिया तो हम उसके चरणों में शिर झुकाने को तैयार हैं किन्तु प्रमाण तो दिया ही नहीं जब प्रमाण नहीं दिया तब वेद मनु का प्रमाण देदिया ऐसा लिखना क्या पं० तुलसीराम जी इसको पाप नहीं समझते समाजियों को यह अच्छे प्रकार सोच लेना चाहिये कि चालबाजी या मिथ्या लेखों से आर्यसमाज उन्नति नहीं कर सकती किन्तु दिनोंदिन रसातल को जावेगी यहां पर स्वामीजी ने "स ब्रह्मा" आदि में कैवल्योपनिषद् प्रमाण माना है। बलिहारी है स्वामी दयानन्द की जिस कैवल्योपनिषद को स्वतः प्रमाणिक नहीं मानते आज [illegible] सिद्धि के लिये उसी कैवल्योपनिषद को प्रमाण मानते हैं स्वामी दयानन्दजी ने कैवल्योपनिषद को यहां पर प्रमाण माना है अब समाज को शास्त्रार्थ में कैवल्योपनिषद् मानना पड़ेगा अब यह चालाकी न चल सकेगी कि हम दशही उपनिषद् मानते हैं नहीं तो साफ लिख देना पड़ेगा कि हम स्वामी दयानन्द के लेख को इस कारण से नहीं मानते कि इनका लेख ठीक नहीं ये महात्मा जो चाहते हैं वही लिख देते हैं अतएव इन के विचार हम वेद विरोधी समझते हैं।

अब रहा अल्लोपनिषद का मानना प्रथम तो अब आर्यसमाजी और सनातनधर्मी दोनों ही बराबर होगये क्योंकि अल्लोपनिषद को भी स्वामी दयानन्द जी मान्यकोटी में ले आये अब क्या बहस रह गई द्वितीय कहां हैं वह अल्लोपनिषद ज़रा समाज को [illegible] चाहिये क्यों नहीं दिखलाती तृतीय उसका प्रमाण मानना कहां लिखा है यदि है तो दिखलाइये नहीं है तो फिर क्या सनातनधर्म पर झूठेही कलंक लगा कर समाज अपनी विजयवैजयन्ती उड़ाना चाहती है हर्गिज न उड़ैगी यदि समाज किंचितमात्र भी सचाई रखती है तो उसको चाहिये कि दोनों बातें दिखला कर अर्थात् समस्त अल्लोपनिषद और वह प्रमाणिक है इसका लेख देखकर हम लोगों का शिर नीचा करें और साथही साथ यह भी दिखलावें कि दयानन्द ने वे कौन २ वेदमन्त्र मनुके

श्लोक लिखे कि जिनमें ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर के नाम दिखलाये गये हों, भला यह कब आशा होसकती है कि समाज लेखनी उठा सकेगी। आगे यह भी लिखते हैं कि आपके मत में तो "संस्कृतं प्रमाणम्" प्रथम तो यह कहां से लिखा है कि सनातनधर्म के मत में सब संस्कृत प्रमाण है कि आप अपने मनसे ही गढ़ते हैं यदि इसका प्रमाण मांगा जावे तो पं० तुलसीराम जी तो क्या समाज के छक्के छूट जावेंगे और प्रमाण न मिलेगा यदि मान भी लें कि "संस्कृतं प्रमाणम्" है तो फिर अपनी भाषा [illegible] देवभाषा को उच्चदृष्टि से देखना वेदकी भाषा का प्रमाण मानना कोई ऐब नहीं है किन्तु संस्कृत के सच्चे सेवक होने का प्रमाण है शोक है कि आप पं० तुलसीराम जैसे संस्कृतज्ञोंको भी संस्कृतभाषा से नफरत होगई अजी जनाब यदि इतने पर भी आप संस्कृत प्रमाण मानने को बुरा समझते हैं तो भी सनातनधर्मी समाज से अच्छे हैं समाज में तो इससे भी बुरा होगया वह क्या वह यह कि "आधुनिक साइन्स प्रमाणम्"।

पं० ज्वालाप्रसादजी ने लिखा था कि यहां पर तो स्वामीजी ब्रह्मा ईश्वर का नाम बतलाते हैं और आगे चलकर पृ०५ पं०७ फिर पृ०१५ पं०११ में लिखते हैं कि इसलिये मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर की ही स्तुति प्रार्थना उपासना करें उससे भिन्न की कभी न करें क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वान् थे यहां पर पूर्वज बतलाते हैं यदि ये पूर्वज महाशय थे तो बतलावें यह किसके पुत्रथे। इसके उत्तर में पं० तुलसीरामजी कहते हैं कि पुराण इतिहासों में उनके जन्म और चरित्र वर्णित हैं कैसा उत्तर देगये कि उत्तर भी होजावें और चाल भी न परखी जावे हां सत्यता का नाश होनाहो तो भलेही हो इसकी पं० तुलसीरामजी को कुछ परवा भी नहीं है अच्छा अब इसको यों समझो कि एक समाजी पं० तुलसीराम जी के पास आया और उसने यह कहा कि स्वामी दयानन्दजी ने जो ब्रह्मा विष्णु महादेव ये पूर्वज महाशय हुए लिखा इनका प्रमाण दो इसके उत्तर में पं० तुलसीरामजी ने यही कहा कि पुराण इतिहास में लिखा है अब उस आर्य्यसमाजी ने कहा कि हम पुराण इतिहास को प्रमाण नहीं मानते हमारे मानने लायक प्रमाण दो बस अब क्या प्रमाण है कुछ नहीं शाबास आर्य[illegible] जो पुराणों का खण्डन रात दिन करती है आज उसको भी पुराणों के आगे शिर झुकाना पड़ा हम पं० तुलसीराम जी को पुराण मानने का धन्यवाद देतेहुए यह भी पूछते हैं कि अब आगे को तो पुराणों

को झूठ न कहोगे यदि झूठ कहो तो क्या कह यहां भी झूँठही कहदो पुराणों के मानने से कुछ आनन्द हुआ किन्तु उससे शतगुणा दुःखभी हुआ है क्योंकि पंडित तुलसीरामजी ने यहां पर वेदों को तिलाञ्जलि देकर पुराणों को स्वतः प्रमाण माना है।

यदि पं० तुलसीराम वेदों को प्रमाण मानते हैं तो वेद से ब्रह्मादि ईश्वरावतार सिद्धि होते हैं, ब्रह्मावतार देखिये—

यो देवेभ्य आतपतियोदेवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥

यजुर्वेद ३१ । २०

(यः) जो (देवेभ्यः) देवताओं के लिये (आतपति) तपता है (यः) जो (देवानाम्) देवताओं के (पुरः) पहिले (हितः) स्थित या और (यः) जो (देवेभ्यः) देवताओं से (पूर्वः) पूर्व (जातः) प्रकट हुआ (तस्मै) उस (रुचाय) तेजवाले (ब्राह्मये) ब्रह्माके लिये (नमः) नमस्कार है।

कहिये वेद में ब्रह्मा का अवतार है या विद्वान् महाशय है इस मंत्र के इसी अर्थ को उव्वट और महीधरजी ने मान कर ब्रह्मा अवतार बतलाया है "तद्दण्डममवद्धेमम्" इस श्लोक में मनुने ब्रह्मा का अवतार माना "ब्रह्मादेवानां प्रथमः संबभूव। विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता" यह मुण्डकोपनिषद ब्रह्मा को ईश्वर का अवतार मानता है इत्यादि बीसियों प्रमाण ब्रह्मा अवतार में मौजूद हैं जिसको देखना हो हमारे बनाये "अवतार" नामक पुस्तक में देखे किन्तु आज पं० तुलसीराम इन सब ग्रन्थों को प्रमाण कोटी से निकालते हैं क्योंकि यदि इनको प्रमाण मानलें तो पूर्व महाशयवाला लेख रसातल को चला जावे। मुझे हँसी आती है इस दयानन्दी धर्म पर, यह धर्म है या बच्चों का खेल, चाहे जैसा मान बैठे, पुराणों को मानकर वेद कोही तिलाञ्जलि देदी। पुराण आज क्यों माने इस कारण से कि उनसे ब्रह्मादि पूर्वज महाशय सिद्ध होजावेंगे किन्तु पुराणों के मानने पर भी तो ब्रह्मादि पूर्वज महाशय न ठहरेंगे ये वेद और पुराण सभी में ईश्वरावतार रहेंगे।

हमको इस बात की आवश्यकता न थी कि पुराण का प्रमाण दें किन्तु आज समाज पुराणों को प्रमाण मानती है और पं० तुलसीराम पुराणों से ब्रह्मा को पूर्वज महाशय बतलाते हैं अतएव हम उन्हीं के स्वतः प्रमाण पुराण का प्रमाण देते हैं पढ़िये—

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्राविनत्वतः ।
नाभिहृदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजांपतिः ॥

(श्रीमद्भागवत)

योगनिद्रा का आश्रय लेकर जल में शयन करने वाले ब्रह्म के नाभि से कमल हुआ और उससे समस्त विश्व का और विश्व रचने वालों का पति ब्रह्मा प्रकट हुआ और भी—

योब्रह्मासतुवैविष्णुर्योविष्णुःसमहेश्वरः ।
एकामूर्तित्रयोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥

(हरवंश)

हमने तो ब्रह्मा [illegible] ईश्वरावतार होने का प्रमाण दे दिया यदि आर्यसमाज इतने प्रमाणों में संतुष्ट न हो तो और भी सौ दो सौ प्रमाण दिये जा सकते हैं और काम पड़ने पर हम देंगे किन्तु पं० तुलसीराम ने जो कहा कि ये पूर्वज महाशय थे सत्य पर पानी फेरकर दयानन्द के मिथ्या लेख की साक्षी दे दी क्या पं० तुलसीरामजी इस का भी प्रमाण देंगे पंडितजी तो क्या समस्त समाजी भी खोज करें तब भी इनके पूर्वज महाशय विद्वान् होने का पता न चलेगा। अजी भाई साहब कुछ सोच विचारकर लिखा करो इतना अंधेर मत करो कि दयानन्द की गप्पों में प्रमाण मिले हर्गिज एक भी प्रमाण न मिलेगा और सर्वदा के लिये आर्यसमाज के महर्षि की असत्यता की पताका फहराती ही रहेगी।

यदि इतने पर भी [illegible] प्रमाण देने का साहस करे तो फिर बतलावे कि ब्रह्मा किसके पुत्र थे इनके कै भाई थे ये किस गुरुकुल में पढ़े थे और किस ज़माने में हुए और किसके यहां ब्याहे थे ? वास्तविक में यह लेख तो स्वामीजी ने भंग की तरंग में ही लिखा था।

अब पं० तुलसीरामजी कहते हैं ब्रह्मारूप हो कर, यह तो अक्षरों का अर्थ नहीं कहां से लाये लाये कहां से वेद से क्या पं० तुलसीरामजी "विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता" आदि श्रुतियों को भूल गये ब्रह्मा विष्णु रुद्र होकर वही निराकार ब्रह्म संसार की रचना पालना संहार करते हैं यह तो वेदशास्त्र सिद्ध है एक जगह नहीं हजारों स्थान में मिलेगा जब वेदशास्त्र में मौजूद है फिर शंका कैसी, क्या आज समाज वेदशास्त्र का एक अक्षर भी न मानेगी ?

फिर पं० तुलसीरामजी कहते हैं कि कभी बाल्यावस्था में भंग पी ली होगी और वह पौराणिकों की कृपा है। पं० जी महाराज बाल्यावस्था तक नहीं हुक्का भंग का तो स्वामीजी मृत्यु [redacted] शौक करते रहे यहां पर पौराणिकों से घृणा की गई है हम यह पूछते हैं कि यह भी कुछ लायकी या दिक्षता है कि अपने बुजुर्गों को नफरत की दृष्टि से देखना फिर कौन से पुराण में भंग पीना लिखा है फिर यह भी किस पुराण में किस स्थान में लिखा है कि पार्वतीजी ने १२ वर्ष घोटी फिर भी फोक बाकी रहा। आर्यसमाज को सनातनधर्म में कहीं त्रुटियां तो मिलतीं नहीं फिर क्या करे हारकर झूठेही कलङ्क लगाने लगती है क्या आर्यसमाज बारह वर्ष भंग पीसना पुराणों में दिखलाकर पं० तुलसीराम के लेख को सत्य करेगी ? भला समाज में यह शक्ति कहां इसमें तो झूठे कलंक लगाने की ही शक्ति है और कुछ नहीं इसको पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि ब्रह्मा विष्णु पूर्व गुजरे महाशयों का नाम था इसको तो सभी जानते थे किन्तु यह नहीं जानते थे कि ये नाम ईश्वर के भी हैं यहां पं० तुलसीरामजी ने गजब कर दिया इन्होंने सनातनधर्मियों को भी वैसाही समझा कि जैसे आर्यसमाजी। आर्यसमाजियों का यह अटल नियम है कि वे सनातनधर्म के ग्रन्थ तो क्या आर्यसमाज के ग्रन्थों को भी नहीं देखते जो चित्त में आता उसको वैसाही मान लेते हैं ये लोग अपने मन की कल्पना को ही वेद मानते हैं यदि यह स्वामी दयानन्द के ही ग्रन्थों को देखलें तो फिर ये आर्यसमाजी नहीं रहसकते क्योंकि स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों में मृतक पितरों का श्राद्ध तर्पण और ओखली मूसल आदि मूर्तियों का पूजन और ईश्वर को साकार बनाकर घोड़ों की लीद भी उसी से बिनवाई है ईश्वर को शरीरी भी माना है यदि ये बातें विस्तार पूर्वक देखनी हों तो हमारी बनाई "मूर्तिपूजा" तथा "श्राद्ध" और "अवतार" की

पुस्तकें मँगाकर देखें समाजी अपनी पुस्तकों से इतने अनभिज्ञ हैं कि कोई सौ में एक अपनी पुस्तकों के सिद्धान्तों को नहीं जानता और इसी कारण से ये आर्यसमाजी बने रहते हैं यह बात हमहीं नहीं लाला लाजपतराय ने भी लिखी है कि जो मनुष्य समाज [illegible] अभिज्ञ है वही आर्यसमाज का द्वेषी है पं० तुलसीराम ने सनातनधर्मियों को भी अनभिज्ञ समझा है किन्तु यह बात नहीं है सनातनधर्मी वेदों से अभिज्ञ हैं वे जानते हैं कि ब्रह्मा विष्णु रुद्र कोई पूर्वज महाशय नहीं हैं किन्तु ईश्वर का अवतार हैं जो वेद नहीं जानता वह पुराण सुनता है कि ब्रह्मा विष्णु रुद्र ये तो साकार ईश्वर हैं, जिसकी पहुँच पुराणों तक नहीं है वह भाषा के पुस्तक विश्रामसागर रामायण आदि पढ़ते हैं कि ब्रह्मादि निराकार ब्रह्म के स्वरूप हैं, जो बिलकुल नहीं पढ़े वे रामलीला देखकर ही जान जाते हैं फिर नहीं मालूम पं० तुलसीराम ने न जानना क्यों लिखा अनुमान से दोही बातें मालूम होती हैं कि या तो सनातनधर्मियों को समाज के घाट उतारा और नहीं तो पक्षपात ने भुला दिया।

पं० तुलसीराम यह भी कहते हैं कि मा बाप से मनुष्यों का उत्पन्न होना यह सृष्टि के बाद का नियम है सृष्टि के आरम्भ का वही नियम है जो स्वामीने माना अब यदि हम यह पूछ बैठें कि इसमें प्रमाण दो बस अब क्या था अब वेद स्मृति को उठाकर रखदेंगे और दो दो बातें मनगढ़न्त करेंगे यहां पर वेद के प्रमाण को न छुवेंगे स्वामी दयानन्द ने जैसा सत्यार्थप्रकाश में लिखा वैसाही पं० तुलसीराम ने भास्करप्रकाश में लिख दिया परन्तु एक बात का फर्क रह गया वह यह है कि स्वामी दयानन्द ने यजुर्वेद के नाम से एक मंत्र "ततो मनुष्या अजायन्त" लिख दिया किन्तु पं० तुलसीराम ने नहीं लिखा सम्भव है कि वह भी इसी मंत्र से काम चलावेंगे भला जो वेद के नाम से झूठ मंत्र लिखदे उस से कोई कैसे जीत सकेगा किन्तु इस दयानन्द के उस मंत्र को छोड़कर जिसके लिये लिखा कि [illegible] ऐसा है स्वतः प्रमाण वेद में अन्य प्रमाण तीन काल में न मिलैगा जब वेद में इसका प्रमाणही नहीं फिर पं० तुलसीराम के इस लेख को समाजी कैसे मानेंगे क्योंकि इनका तो यह दावा है कि हम सब काम वेद से ही मानते हैं। पाठकवर्ग इस लेख में कैवल्योपनिषद का स्वतः प्रमाण मानना तथा ब्रह्मा विष्णु रुद्र का ईश्वरातार होना

पुस्तकें मँगाकर देखें समाजी अपनी पुस्तकों से इतने अनभिज्ञ हैं कि कोई सौ में एक अपनी पुस्तकों के सिद्धान्तों को नहीं जानता और इसी कारण से ये आर्यसमाजी बने रहते हैं यह बात हमहीं नहीं लाला लाजपतराय ने भी लिखी है कि जो मनुष्य समाज [illegible] अभिज्ञ है वही आर्यसमाज का द्वेषी है पं० तुलसीराम ने सनातनधर्मियों को भी अनभिज्ञ समझा है किन्तु यह बात नहीं है सनातनधर्मी वेदों से अभिज्ञ हैं वे जानते हैं कि ब्रह्मा विष्णु रुद्र कोई पूर्वज महाशय नहीं हैं किन्तु ईश्वर का अवतार हैं जो वेद नहीं जानता वह पुराण सुनता है कि ब्रह्मा विष्णु रुद्र ये तो साकार ईश्वर हैं, जिसकी पहुँच पुराणों तक नहीं है वह भाषा के पुस्तक विश्रामसागर रामायण आदि पढ़ते हैं कि ब्रह्मादि निराकार ब्रह्म के स्वरूप हैं, जो बिलकुल नहीं पढ़े वे रामलीला देखकर ही जान जाते हैं फिर नहीं मालूम पं० तुलसीराम ने न जानना क्यों लिखा अनुमान से दोही बातें मालूम होती हैं कि या तो सनातनधर्मियों को समाज के घाट उतारा और नहीं तो पक्षपात ने भुला दिया।

पं० तुलसीराम यह भी कहते हैं कि मा बाप से मनुष्यों का उत्पन्न होना यह सृष्टि के बाद का नियम है सृष्टि के आरम्भ का वही नियम है जो स्वामीने माना अब यदि हम यह पूछ बैठें कि इसमें प्रमाण दो बस अब क्या था अब वेद स्मृति को उठाकर रखदेंगे और दो दो बातें मनगढ़न्त करेंगे यहां पर वेद के प्रमाण को न छुवेंगे स्वामी दयानन्द ने जैसा सत्यार्थप्रकाश में लिखा वैसाही पं० तुलसीराम ने भास्करप्रकाश में लिख दिया परन्तु एक बात का फर्क रह गया वह यह है कि स्वामी दयानन्द ने यजुर्वेद के नाम से एक मंत्र "ततो मनुष्या अजायन्त" लिख दिया किन्तु पं० तुलसीराम ने नहीं लिखा सम्भव है कि वह भी इसी मंत्र से काम चलावेंगे भला जो वेद के नाम से झूठ मंत्र लिखदे उस से कोई कैसे जीत सकेगा किन्तु इस दयानन्द के उस मंत्र को छोड़कर जिसके लिये लिखा कि [illegible] है स्वतः प्रमाण वेद में अन्य प्रमाण तीन काल में न मिलेगा जब वेद में इसका प्रमाणही नहीं फिर पं० तुलसीराम के इस लेख को समाजी कैसे मानेंगे क्योंकि इनका तो यह दावा है कि हम सब काम वेद से ही मानते हैं। पाठकवर्ग इस लेख में कैवल्योपनिषद का स्वतः प्रमाण मानना तथा ब्रह्मा विष्णु रुद्र का ईश्वरातार होना

सिद्ध होगया साथही साथ यह भी सिद्ध होगया कि ब्रह्मादि पूर्व महाशय नहीं थे और व्याज में समाज का पुराणों को मानना और भंग पीसना आदि सनातनधर्म को झूठे कलंक लगाना भी सिद्ध है अब देखिये इसके ऊपर किसी समाजी की लेखनी उठती है या मौनव्रत का धारण होता है।

मित्रादि देव निर्णय।

SHRI KRISHNA TEMPLE WAT SINGAPORE

दयानन्द तिमिरभास्कर पृष्ठ २ टिप्पणी—

ये मित्रादि शब्द पृथक देवताओं के वाचक हैं इसमें प्रमाण "महित्रीणामवोस्तुद्युक्षम्मित्रस्यार्य्यम्णः ॥ दुराधर्षं वरुणस्य यजु० अ० ३ मं० ३१" (मित्रस्य) प्राणवृत्ति और दिवस के अधिष्ठात्री देवता मित्र (अर्यम्णः) चक्षु वा सूर्य्य के अधिष्ठात्री अर्यमा देवता (वरुणस्य) अपान और जलों के अधिष्ठात्री देवता वरुण (त्रीणाम) इन तीनों देवताओं से सम्बन्ध रखनेवाली (महि) बड़ी (द्युक्षम्) कान्तिमान् सुवर्णादि द्रव्यों से युक्त (दुराधर्षम्) तिरस्कार पाने को आशक्य (अवः) पालना वा रक्षा (अस्तु) हम को प्राप्त हो इससे अगले मंत्र में लिखा है "तेहि पुत्रासो अदितेःप्रजीवसेमर्य्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ यजु० अ० ३ मं० ३३" यह तीनों देवता अदिति के पुत्र हैं यजमान को अखण्ड तेज और दीर्घायु देते हैं दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में मित्र का प्राणवायु अर्यमा का सूर्यलोक वरुण का जल अर्थ किया है प्राचीन अर्थों में इनके अधिष्ठात्री देवता लिखे हैं इससे मित्रादिक ईश्वर से भिन्नही देवता हैं और यच्छन्ति देते हैं यह बहुवचन है इससे सत्यार्थप्रकाश का अर्थ जो स्वामीजी ने किया है वह अशुद्ध ही है।

भास्करप्रकाश पृ० ९ टिप्पणी—

द० ति० मा० पृष्ठ २ में यजु० ।३।३१ व ३३ के प्रमाण से मित्रादि ३ देवता लिये हैं सो तो प्रकरण में स्वामीजी भी

प्रकरणादि का नाम मानते हैं किन्तु स्वामीजी कृत ईश्वरार्थ में शंकरभाष्य सहित वेदान्तसूत्र १।१।२२।२३।२८ तथा १।२।६।२४।२८ [illegible] ।३।८।१० और इनका शारीरिक भाष्य भामतीरत्नप्रभा और न्यायनिर्णय सब एक स्वर से "न देवता भूतंच" का व्याख्यान करके देवतार्थ का निषेध करते हैं विस्तार से हमारा बनाया वेदान्त भाष्य देखिये।

मीक्षा—वेद में यह नाम देवताओं के हैं चाहे किसी भी प्राचीन भाष्य को देख लें (यजुर्वेद अ० ३ मं० ३३ के मूल में जीव से ज्योतिः "यच्छन्ति" लिखा है जिसका भाषा यह है कि यह देवता मनुष्य को जीने के लिये तेज देते हैं यदि इस मंत्र में इन नामों से ईश्वर का ग्रहण करोगे तो यच्छन्ति क्रिया बहुवचनान्त होने से कर्त्ताओं की संख्या भी बहुत होगी फल यह निकलेगा कि बजाय एक ईश्वर के समाज को बहुत से ईश्वर मानने पड़ेंगे इस भय से घबराकर स्वामी दयानन्दजी इस मंत्र के अर्थ में इन्हीं नामों से ईश्वर का ग्रहण नहीं करते जब इन नामों से स्वामी दयानन्दजी ही ईश्वर का ग्रहण नहीं करते किन्तु ईश्वर से भिन्न देवताओं का करते हैं फिर यह कहना कि स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त का स्वामी दयानन्द ने ही चकनाचूर कर दिया क्या कुछ दूषित है स्वामी दयानन्दजी यहां पर अधिष्ठातृ देवताओं का ग्रहण इस भय से नहीं करते कि देवयोनि सिद्ध हो जावेगी किन्तु प्राण सूर्य्यलोक पवन तथा जल अर्थ करके इन्हीं को देवता मानते हैं अब दोष इस अर्थ में यह आवेगा कि यज्ञ में उन देवताओं के स्थान में सूर्य आदि का पूजन समाज को करना पड़ेगा बस मूर्तिपूजा वेद में नहीं है स्वामीजी के इस सिद्धान्त का खंडन यहां पर ही हो गया है।

स्वामी दयानन्दजी ने तो जो कुछ लिखा था वह लिखा ही था किन्तु पं० तुलसीरामजी यहां पर मज़ा कर गये आपने यहां पर वेद को तिलाञ्जलि देदी पंडित ज्वालाप्रसादजी के दिये वेदमंत्र को छोड़ कर उसका कुछ भी उत्तर न लिख कर एक दौड़ वेदान्तदर्शन के भाष्यों पर लगाई है। आप लिखते हैं कि वेदान्त दर्शन के शारीरिकभाष्य भामतीरत्नप्रभा न्यायनिर्णय में इन नामों से ईश्वर का ही ग्रहण किया है आर्यसमाज वेद को कैसा मानती है इसकी बानगी तो यहां

परही टपक गई पं० तुलसीरामजी ने देखा कि वेद के मानने से स्वामी दयानन्द का सिद्धान्त ऐसा जाता है कि जैसे वानरों के शिर से सींग, इसलिये वेद को छोड़ कर वेदान्तदर्शन के टीकाओं की शरण ली इस स्थान में पंडित तुलसीराम वेद को प्रमाणकोटी से निकालते हैं और वेदान्त दर्शन के टीकाओं को प्रमाण कोटी में रखते हैं ऐसी २ हालतों को ही देख कर संसार कहता है कि वास्तविक में समाज वेद का एक अक्षर भी नहीं मानती है, किन्तु वेद के नाम का वाय-बेला मचाकर अँगरेजी शिक्षा के [illegible] की तरफ ले जा रही है।

प्रथम तो आर्य्यसमाज वेदान्तदर्शन को ही स्वतः प्रमाण नहीं मानती फिर उसके भी टीकाओं पर धावा लगाना कितनी सत्यता लिये है इसका निर्णय समाज पर ही छोड़ता हूँ। क्यों साहब क्या शारीरिकभाष्य को समाज प्रमाण मानती है यदि कहो कि हां मानती है तो हम पूंछते हैं कि उस शारीरिक भाष्य में लिखी जीव ब्रह्म की एकता समाज को मंजूर है इसका क्या जवाब है? इसको सुनते ही समाजी कह उठाते हैं कि शारीरिकभाष्य किसी ऋषि महर्षि का लिखा नहीं कि जिसको समाज प्रमाण मान ले वह तो शंकर लिखित है वह प्रमाणिक नहीं हो सकता अच्छा अब यह मानलो कि समाज शारीरिक भाष्य को प्रमाण नहीं मानती जब कि समाज शारीरिकभाष्य को प्रमाणिक कहीं नहीं मानती तो फिर पं० तुलसीराम ने किस प्रमाण से शारीरिकभाष्य को वेद से बड़ा माना कोई इसका उत्तर है इसको दूसरी भांति से यों समझ सकते हैं कि फर्ज करो कि कोई समाजी पं० तुलसीराम के पास आया और उसने यह प्रश्न किया कि स्वामी दयानन्द ने जो "शन्नो मित्रः" इस मंत्र में मित्रादि नामों से ईश्वर का ग्रहण किया इसमें क्या प्रमाण है पं० तुलसीराम ने उत्तर दिया कि वेदान्तदर्शन के शारीरिकभाष्य और भामतीरत्नप्रभा न्याय-निर्णय इन टीकाओं में लिखा है कि इन नामों से ईश्वर का ग्रहण होता है इसको सुनकर समाजी हँसा और हँस कर कहा कि ये तो चारों ही टीका अप्रमाणिक हैं इनको समाज प्रमाण नहीं मानती स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश में तृतीय समुल्लास पठनपाठन विधि में साफ लिखा है कि वेदान्त दर्शन पर वात्सायन और बौधायन मुनि कृत भाष्य पढ़ पढ़ाव वेदान्तदर्शन के इन दो टीकाओं को छोड़कर शेष सब टीकाओं को स्वामीजी ने जालग्रन्थ माना है स्वामीजी जिन

ग्रंथों का पठनपाठन भी रोकते हैं उनको आप प्रमाणकोटी में देते हैं मालूम होता है कि आप इस विषय में वैदिक प्रमाण नहीं दे सकते केवल टालना चाहते हैं और अब हम प्रमाण देते हैं कि देवताओं का ग्रहण इन नामों से होता है इसके लिये आप यजुर्वेद अ० ३ मं० ३३ पर दयानन्द कृत भाष्य देखें इस भाष्य में इन नामों से ईश्वर से भिन्न देवताओं का ग्रहण किया है बस अब पं० तुलसीरामजी की चाल बन्द अब कुछ भी उत्तर नहीं देसकते पं० तुलसीराम ही पर क्या निर्भर है यदि इसके उत्तर की खोज में समस्त आर्यसमाज लगे और बराबर दशपांच हजार वर्ष लगी रहे तब भी तो इसका उत्तर नहीं मिल सकता ।

पं० तुलसीरामजी इसको अच्छी प्रकार जानते हैं कि समाज के कपोल कल्पित सिद्धान्तों में से किसी में भी वेद प्रमाण नहीं है इतना समझ कर भी उसी महाअन्धकार में पड़े हैं यही शोक है और इन शारीरिकभाष्य आदि में भी इन नामों से ईश्वर का ग्रहण करना कहीं नहीं लिखा बिना लिखे भी पं० तुलसीरामजी का लिख देना इसको निरी गप्प को छोड़ कर और क्या कह सकते हैं मित्रादि देवताओं के नाम हैं ईश्वर के नहीं इसके लिये मैं समाज को ऐसा प्रमाण देता हूं कि फिर समाज को कुछ उज्रही न रहे और वास्तविक में समाज को वही प्रमाण देना ठीक है कि जिस को समाज मानले और फिर लेखनी उठाने का परिश्रम भी न करना पड़े स्वामी दयानन्दकृत संस्कारविधि के नामकरण प्रकरण में हवन करते हुये "ओ३म् प्रतिपदे स्वाहा" "ओ३म् अश्विन्यै स्वाहा" इन आहुतियों पर स्वामी दयानन्दजी अपनी लेखनी से टिप्पणी में लिखते हैं कि तिथि देवताः १ ब्रह्मन् २ त्वष्टृ ३ विष्णुः ४ यम ५ सोम ६ कुमार ७ मुनि ८ वसु ९ शिव १० धम ११ रुद्र १२ वायु १३ काम १४ अनन्त १५ विश्वे देव ३० पितर ये इतने देवता तिथियों के स्वामी लिखकर इसके आगे दयानन्द जी नक्षत्रों के देवता लिखते हैं पढ़िये नक्षत्र देवता अश्विनी-अश्वी । भरणी-यम । कृतिका-अग्नि । रोहिणी-प्रजापति । मृगशिर-सोम । आर्द्रा-रुद्र । पुनर्वसु-अदिति । पुष्य-बृहस्पति । अश्लेषा-सर्प । मघा-पितृ । पूर्वाफाल्गुणि-भग । उत्तराफाल्गुणि-अर्यमन् । हस्त-सवितृ । चित्रा-त्वष्टृ । स्वाति-वायु । विशाखा-इन्द्राग्नी । अनुराधा-मित्र । ज्येष्ठा-इन्द्र । मूल-निर्ऋति । पूर्वाषाढ़-अप् । उत्तराषाढ़-विश्वेदेवा । श्रवण-विष्णु । धनिष्ठा-वसु । शतभिषज-

वरुण । पूर्वाभाद्रपद-अजपाद । उत्तराभाद्रपद-अहिर्बुध्न्य । रेवती-पूषन । स्वामी दयानन्दजी ने जो ये तिथि और नक्षत्रों के देवता लिखे इनमें "शन्नो मित्रः" मंत्र के कहे समस्त देवता आगये यहां पर समाज इनके नाम पर आहुति देती है और उस मंत्र में इनसे कल्याण की प्रार्थना की है हम वेद और स्वामी दयानन्द जी दोनों का सिद्धान्त लिख चुके कि इन नामों से देवताओं का ग्रहण होता है निर्णय-(इन्साफ) के लिहाज स अब समाज को यह मान लेना चाहिये कि वास्तविक में इन नामों से देवताओं का ग्रहण होता है और "शन्नो मित्रः" इस मंत्र के अर्थ में स्वामी दयानन्द ने जान बूझकर भूल की है यह कैसी आर्यसमाज है जो वेद और स्वामी दयानन्द के लेख दोनों को ही झूठ मानती है।

यदि वेद को समाज न मानै तो न सही किन्तु स्वामी दयानन्द के लेख को तो मानै, मानै तो तब जब कि समाज वेद या स्वामी दयानन्दजी के लेख को कुछ महत्त्व की दृष्टि से देखती हो वह तो अंग्रेजी सिद्धान्तों में बँधगई कि मनुष्य से भिन्न देवता होते ही नहीं अब स्वामीजी कहैं वेद कहैं सब चिल्लावें किन्तु समाज एक न सुनेगी यदि ऐसा ही है तो फिर स्वामी दयानन्दजी को महर्षि पदवी नहीं देनी थी [illegible] समाज के कैसे महर्षि हैं कि जिनकी एक भी बात आर्यसमाज नहीं मानती और बात २ में स्वामी दयानन्द के लेख को सत्यता पर कुठार चलाती है समाज मानै या न मानै किन्तु समझनेवाले ताड़ गये कि कुछ दाल में काला जरूर है इन नामों से जो देवताओं का ग्रहण है उसके खण्डन करने की शक्ति आर्यसमाज में न थी न है और न आगे को हो सकती है रहे तुलसीराम पं० तुलसीरामजी देवयोनि को ऐसी गपड़चौथ में मिलाते हैं कि जिसका पताही नहीं चलता आप कहते हैं कि देवता तो स्वामीजी ने भी माने हैं कौन माने हैं जल पवन सूर्य हम पं० तुलसीराम से यह पूछते हैं कि तुम क्यों डरते हो तुम तो चैतन्य देवता मान चुके हो पते के लिये नीचे देखिये वेदप्रकाश वर्ष १ मास ५ पृ० ७३ जब कोई पुरुष संन्यास धारण करके मोक्ष के लिये प्रयत्न करता है तो पूर्व आश्रम में जिन देवों का वह यजन करता रहा है वे मुंह लगाये देवता उस के चक्षु रसना आदि इन्द्रियों में उस २ की शक्तिरूप से बैठे हुये बड़े २ विघ्न करते हैं और कितनों को तो फिर अपनी ओर खींच लेते हैं यह लेख पं० तुलसीराम की लेखनी का है इसमें पं० तुलसीरामजी ने देवताओं

को चैतन्य माना या जड़ इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ता हूँ अब हम इतना और लिखना चाहते हैं कि पं० तुलसीरामजी इधर उधर क्यों भागते हैं "शन्नो मित्रः" इस मंत्र के ही अर्थ को क्यों नहीं देख लेते कि इसके अर्थ में ईश्वरका ग्रहण है या अधिष्ठातृ देवों का इस मंत्र के किसी भी भाष्य को देखलें सभी भाष्यों में अधिष्ठातृ देवों का ग्रहण है यदि आप सब भाष्यों को नहीं देख सकते थे तो शंकरभाष्य को ही देख लेते जब सभी भाष्यों में अधिष्ठातृ देवों का ग्रहण है तब फिर वहां पर ये नाम ईश्वर के कैसे मान लिये जावें।

ईश्वर के सौ नाम।

सत्यार्थप्रकाश—

(अत सातत्यगमने) इस धातु से "आत्मा" शब्द सिद्ध होता है "योऽतति व्याप्नोति स आत्मा" जो सब जीवादि जगत् में निरन्तर व्यापक होरहा है "परश्चासावात्मा च य आत्मभ्यो जीवेभ्यः सूक्ष्मेभ्यः परोऽतिसूक्ष्मः स परमात्मा" जो सब जीव आदि से उत्कृष्ट और जीव प्रकृति तथा आकाश से भी अतिसूक्ष्म और सब जीवों का अन्तर्यामी आत्मा है इससे ईश्वर का नाम "परमात्मा" है। सामर्थ्यवाले का नाम ईश्वर है "य ईश्वरेषु समर्थेषु परमः श्रेष्ठः स परमेश्वरः" जो ईश्वरों अर्थात् समर्थों में समर्थ, जिसके तुल्य कोई भी न हो उस का नाम "परमेश्वर" है। षुञ् अभिषवे, षूङ् (प्राणिगर्भविमोचने) इन धातुओं से "सविता" शब्द सिद्ध होता है "अभिषवः प्राणिगर्भविमोचनं चोत्पादनम्। यश्चराचरं जगत् सुनोति सूते वोत्पादयति स सविता परमेश्वरः" जो सब जगत् की उत्पत्ति करता है इसलिये परमेश्वर का नाम "सविता" है। (दिवु क्रीड़ाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु) इस धातु से "देव" शब्द सिद्ध होता है (क्रीड़ा) जो शुद्ध जगत् को क्रीड़ा कराने (विजिगीषा) धार्मिकों को जिताने की इच्छायुक्त (व्यवहार) सब को चेष्टा के साधनोपसाधनों का दाता (द्युति) स्वयंप्रकाश स्वरूप सब का प्रकाशक (स्तुति) प्रशंसा के योग्य (मोद) आप आनन्द स्वरूप और दूसरों को आनन्द देनेहारा (मद) मदोन्मत्तों का ताड़नेहारा

अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते ॥ १ ॥ अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् ॥ अहमन्नादोहमन्नादोहमन्नादः ॥ २ ॥ तैत्ति० उपनि० । अनुवाक २ । १० ॥ अत्ताचराचरग्रहणात् ॥ वेदान्त दर्शने । अ० १ । पा० २ । सू० ९ ॥

जो सबको भीतर रखने सबको ग्रहण करने योग्य चराचर जगत् का ग्रहण करने वाला है इससे ईश्वर के "अन्न" "अन्नाद" और "अत्ता" नाम हैं। और जो इसमें तीन बार पाठ है सो आदर के लिये है जैसे गूलर के फल में कृमि उत्पन्न होके उसी में रहते और नष्ट होजाते हैं वैसे परमेश्वर के बीच में सब जगत् की अवस्था है। (वस निवासे) इस धातु से "वसु" शब्द सिद्ध हुआ है। "वसन्ति भूतानि यस्मिन्नथवा यः सर्वेषु वसति स वसुरीश्वरः" जिसमें सब आकाशादि भूत बसते हैं और जो सब में वास कर रहा है इस लिये उस परमेश्वर का नाम "वसु" है (रुदिर अश्रुविमोचने) इस धातु से "णिच्" प्रत्यय होने से "रुद्र" शब्द सिद्ध होता है। "यो रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः" जो दुष्टकर्म करनेहारों को रुलाता है इस से उस परमेश्वर का नाम "रुद्र" है।

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते ॥

यह यजुर्वेद के ब्राह्मण का वचन है। जीव जिसका मनसे ध्यान करता उसको वाणी से बोलता जिसको वाणी से बोलता उसको कर्म से करता जिसको कर्म से करता उसीको प्राप्त होताहै। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जो जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। जब दुष्टकर्म करनेवाले जीव ईश्वर की न्यायरूपी व्यवस्था से दुःखरूप फल पाते तब रोते हैं और इसी प्रकार ईश्वर उनको रुलाता है इसलिये परमेश्वर का नाम "रुद्र" है।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥

मनु० अ० १ । श्लोक १० ॥

जल और जीओं का नाम नारा है वे अयन अर्थात् निवासस्थान हैं जिसके इसलिये सब जीओं में व्यापक परमात्मा का नाम "नारायण" है। (चदि आह्लादे) इस धातु से "चन्द्र" शब्द सिद्ध होता है। "यश्चंदति चन्दयति वा स चन्द्रः" जो आनन्द स्वरूप और सब को आनन्द देनेवाला है इसलिये ईश्वर का नाम "चन्द्र" है। (मगि गत्यर्थक) इस धातु से "मंगेरलच्" इस सूत्र से "मङ्गल" शब्द सिद्ध होता है "यो मङ्गति मङ्गयति वा स मङ्गलः" जो आप मङ्गलस्वरूप और सब जीवों के मङ्गल का कारण है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "मङ्गल" है। (बुध अवगमने) इस धातु से "बुध" शब्द सिद्ध होता है "यो बुध्यते बोधयति वा स बुधः" जो स्वयं बोधस्वरूप और सब जीवों के बोध का कारण है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "बुध" है। "बृहस्पति" शब्द का अर्थ कह दिया। (ईशुचिर् पूतीभावे) इस धातु से "शुक्र" शब्द सिद्ध हुआ है "यः शुच्यति शोचयति वा स शुक्रः"। जो अत्यन्त पवित्र और जिसके सङ्गसे जीव भी पवित्र होजाताहै इसलिए ईश्वर का नाम 'शुक्र' है। (चर गतिभक्षणयोः) इस धातु से "शनैस्" अव्यय उपपद होने से "शनैश्चर" शब्द सिद्ध हुआ है "यः शनैश्चरति स शनैश्चरः" जो सब में सहज से प्राप्त धैर्य्यवान् है इससे उस परमेश्वर का नाम "शनैश्चर" है। (रह त्यागे) इस धातु से "राहु" शब्द सिद्ध होता है "यो रहति परित्यजति दुष्टान राहयति त्याजयति वा स राहुरीश्वरः" जो एकान्त स्वरूप जिसके स्वरूप में दूसरा पदार्थ संयुक्त नहीं जो दुष्टों को छोड़ने और अन्य को छुड़ानेहारा है इससे परमेश्वर का नाम "राहु" है। (कित निवासे रोगापनयने च) इस धातु से केतु शब्द सिद्ध होता है "यः केतयति चिकित्सति वा स केतुरीश्वरः" जो सब जगत् का निवासस्थान सब रोगों से रहित और मुमुक्षुओं को मुक्ति समय में सब रोगों से छुड़ाता है इसलिय उस परमात्मा का नाम 'केतु' है। (यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु) इस धातु से "यज्ञ" शब्द सिद्ध होता है 'यज्ञो वै विष्णुः' यह ब्राह्मणग्रन्थ का वचन है। "यो यजति विद्वद्भिरिज्यते वा स यज्ञः" जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा इससे उस परमात्मा का नाम "यज्ञ" है क्योंकि वह सर्वत्रव्यापक है। (इ

दानादनयोः, आदाने चेत्येके) इस धातु से 'होता' शब्द सिद्ध हुआ है "यो जुहोति स होता" जो जीवों को देने योग्य पदार्थों का दाता और ग्रहण करने योग्यों का ग्राहक है इससे उस ईश्वर का नाम "होता" है । (बन्ध बन्धने) इससे "बन्धु" शब्द सिद्ध होता है "यः स्वस्मिन् चराचरं जगद्बध्नाति बन्धुवद्धर्मात्मनां सुखाय सहायो वा वर्त्तते स बन्धुः" जिसने अपने में सब लोक लोकान्तरों को नियमों से बद्ध कर रक्खे और सहोदर के समान सहायक है [illegible] अपना २ परिधि वा नियम का उल्लंघन नहीं कर सकते। जैसे भ्राता भाइयों का सहायकारी होता है वैसे परमेश्वर भी पृथिव्यादि लोकों के धारण रक्षण और सुख देने से "बन्धु" संज्ञक है । (पा रक्षणे) इस धातु से "पिता" शब्द सिद्ध हुआ है "यः पाति सर्वान् स पिता" जो सब का रक्षक जैसे पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उनकी उन्नति चाहता है वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है इससे उसका नाम "पिता" है। "यः पितॄणां पिता स पितामहः" है। जो पिताओं का भी पिता है इससे उस परमेश्वर का नाम "पितामह" है। "यः पितामहानां पिता स प्रपितामहः" जो पिताओं के पितरों का पिता है इससे परमेश्वर का नाम "प्रपितामह" है। "यो मिमीते मानयति सर्वाञ्जीवान् स माता" जैसे पूर्ण कृपायुक्त जननी अपने सन्तानों का सुख और उन्नति चाहती है वैसे परमेश्वर भी सब जीवों की बढ़ती चाहता है इससे परमेश्वर का नाम "माता" है। (चर गतिभक्षणयोः) आङ्पूर्वक इस धातु से "आचार्य्य" शब्द सिद्ध होता है "य आचारं ग्राहयति सर्वा विद्या वा बोधयति स आचार्य ईश्वरः" जो सत्य आचार का ग्रहण करानेहारा और सब विद्याओं की प्राप्ति का हेतु होके सब विद्या प्राप्त कराता है इससे परमेश्वर का नाम "आचार्य" है । (गृशब्दे) इस धातु से 'गुरु' शब्द बना है "यो धर्म्यान् शब्दान् गृणात्युपदिशति स गुरुः" ॥

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ योगसू० समाधिपादे सू० २६ ॥

जो सत्यधर्मप्रतिपादक सकल विद्यायुक्त वेदों का उपदेश करता, सृष्टि की आदि में अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा और ब्रह्मादि गुरुओं का भी गुरु और जिसका नाश कभी नहीं होता इस लिये उस परमेश्वर का नाम "गुरु" है। (अज गतिक्षेपणयोः, जमी प्रादुर्भावे) इन धातुओं से "अज" शब्द बनता है "योऽजति सृष्टिं प्रति सर्वान् प्रकृत्यादीन् पदार्थान् प्रक्षिपति जानाति वा कदाचित् न जायते सोऽजः" जो सब प्रकृति के अवयव आकाशादि भूत परमाणुओं को यथा योग्य मिलाता शरीर के साथ जीवों का सम्बन्ध करके जन्म देता और स्वयं कभी जन्म नहीं लेता इससे उस ईश्वर का नाम "अज" है (बृहि वृद्धौ) इस धातु से "ब्रह्मा" शब्द सिद्ध होता है "योऽखिलं जगन्निर्माणेन बृंहति वर्द्धयति स ब्रह्मा" जो सम्पूर्ण जगत् को रचके बढ़ाता है इसलिये परमेश्वर का नाम "ब्रह्मा" है "सत्यं ज्ञानमनन्तंब्रह्म" यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचनहै "सन्तोऽस्मिन् सन्तस्तेषु सत्सु साधुतत्सत्यम् यज्जानाति चराऽचरं जगत्तज्ज्ञानम्। न विद्यतेऽन्तोऽवधिर्मर्यादा यस्य तदनन्तम्। सर्वेभ्यो बृहत्त्वाद् ब्रह्म" जो पदार्थ हों उनको सत् कहते हैं उनमें साधु होने से परमेश्वर का नाम सत्य है। जो चराऽचर जगत् का जाननेवाला है इससे परमेश्वर का नाम "ज्ञान" है। जिसका अन्त अवधि मर्यादा अर्थात् इतना लम्बा चौड़ा, छोटा, बड़ा है ऐसा परिमाण नहीं है इसलिये परमेश्वर का नाम "अनन्त" है। (डुदाञ् दाने) आङ्पूर्वक इस धातु से "आदि" शब्द और नञ्पूर्वक "अनादि" शब्द सिद्ध होता है "यस्मात् पूर्वं नास्ति परं चास्ति स आदिरित्युच्यते, न विद्यते आदिः कारणं यस्य सोऽनादिरीश्वरः" जिसके पूर्व कुछ नहीं और परे हो उसको आदि कहते हैं, जिसका आदि कारण कोई भी नहीं है इसलिये परमेश्वर का नाम अनादि है (टुनदि समृद्धौ) आङ्पूर्वक इस धातु से "आनन्द" शब्द बनता है "आनन्दन्ति सर्वे मुक्ता यस्मिन् यद्वा यः सर्वाञ्जीवानानन्दयति स आनन्दः" जो आनन्दस्वरूप जिस में सब मुक्त जीव आनन्दको प्राप्त होते और जो सब धर्मात्मा जीवोंको आनन्दयुक्त करता है इससे ईश्वर का नाम "आनन्द" है। (अस भुवि) इस धातुसे "सत्" शब्द सिद्ध होता है "यदस्ति त्रिषु कालेषु न बाध्यते तत्सद् ब्रह्म" जो सदा वर्त्तमान अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान कालों में जिसका बाध न

हो उस परमेश्वर को "सत्" कहते हैं। (चिती संज्ञाने) इस धातुसे "चित्" शब्द सिद्ध होता है "यश्चेतति चेतयति संज्ञापयति सर्वान् सज्जनान् योगिनस्तच्चित्परं ब्रह्म" जो चेतनस्वरूप सब जीवों को चिताने और सत्याऽसत्य का जनानेहाराहै इसलिये उस परमात्मा का नाम चित्है इन तीनों शब्दोंके विशेषण होनेसे परमेश्वर को "सच्चिदानन्दस्वरूप" कहते हैं। "या नित्यध्रुवोऽचलोऽविनाशी स[illegible] नित्यचल अविनाशी है सो नित्य शब्द वाच्य ईश्वर है। (शुंध शुद्धौ) इससे "शुद्ध" शब्द सिद्धहोता है "यः शुन्धति सर्वान् शोधयति वा स शुद्ध ईश्वरः" जो स्वयं पवित्र सब अशुद्धियों से पृथक् और सबको शुद्ध करनेवाला है इससे उस ईश्वर का नाम शुद्ध है। (बुध-अवगमने) इस धातु से क्त प्रत्यय होनेसे "बुद्ध" शब्द सिद्धहोता है "यो बुद्धवान् सदैव ज्ञाताऽस्ति स बुद्धो जगदीश्वरः" जो सदा सबको जाननेहारा है इससे ईश्वर का नाम बुद्ध है। (मुच्लृ मोचने) इस धातु से मुक्त शब्द सिद्ध होता है "यो मुञ्चति मोचयति वा मुमुक्षून स मुक्तो जगदीश्वरः" जो सर्वदा अशुद्धियों से अलग और सब मुमुक्षुओं को क्लेश से छुड़ा देता है इसलिये परमात्मा का नाम "मुक्त" है 'अतएव नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभावो-जगदीश्वरः' इसी [illegible] परमेश्वर का स्वभाव नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त है निर और आङ्पूर्वक (डुकृञ् करणे) इस धातु से "निराकार शब्द सिद्ध होता है। "निर्गत आकारात्स निराकारः" जिसका आकार कोई भी नहीं और न कभी शरीर धारण करता है इसलिये परमेश्वर का नाम "निराकार" है। (अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु) इस धातु से "अञ्जन" शब्द और निर् उपसर्ग के योग से "निरञ्जन" शब्द सिद्ध होता है "अञ्जनं व्यक्तिर्म्रक्षणं कुकाम इन्द्रियैः प्राप्तिश्चेत्यस्माद्यो निर्गतः पृथग्भूतः स निरञ्जनः" जो व्यक्ति अर्थात् आकृति, म्लेच्छाचार, दुष्ट कामना और चक्षुरादि इन्द्रियों के विषयों के पथ से पृथक् है इससे ईश्वरका नाम "निरञ्जन" है। (गण संख्याने) इस धातुसे "गण" शब्द सिद्ध होता है और इसके आगे "ईश" वा "पति" शब्द रखने से "गणेश" और "गणपति" शब्द सिद्ध होते हैं "ये प्रकृत्यादयो जड़ाजीवाश्चगण्यन्ते संख्यायन्ते तेषामीशः स्वामी पतिः पालको वा" जो प्रकृत्यादि जड़ और सब जीव प्रख्यात पदार्थों का स्वामी वा पालन करने-

हारा है इससे उस ईश्वर का नाम "गणेश" वा "गणपति" है। "यो विश्वमीष्टे स विश्वेश्वरः" जो संसार का अधिष्ठाता है इससे उस परमेश्वर का नाम "विश्वेश्वर" है। "यः कूटेऽनेकविधव्यवहार स्वस्वरूपेणैव तिष्ठति स कूटस्थः परमेश्वरः" जो सब व्यवहारों में व्याप्त और सब व्यवहारों का आधार होके भी किसी व्यवहार में अपने स्वरूप को नहीं बदलता इससे परमेश्वर का नाम "कूटस्थ" है। जितने देव शब्द के अर्थ लिखे हैं उतने ही "देवी" शब्द के भी हैं। परमेश्वर के तीनों लिङ्गों में नाम हैं जैसे "ब्रह्म चितिरीश्वरश्चेति" जब ईश्वर का विशेषण होगा तब "देव" जब चिति का होगा तब "देवी" इस से ईश्वर का नाम "देवी" है। (शक्लृ शक्तौ) इस धातु से "शक्ति" शब्द बनता है "यः सर्वं जगत् कर्त्तुं शक्नोति स शक्तिः" जो सब जगत् के बनाने में समर्थ है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "शक्ति" है। (श्रिञ् सेवायाम्) इस धातु से "श्री" शब्द सिद्ध होता है "यः श्रीयते सेव्यते सर्वेण जगता "विद्वद्भिर्योगिभिश्च स श्रीरीश्वरः" जिस का सेवन सब जगत्, विद्वान् और योगीजन करते हैं इससे उस परमात्मा का नाम "श्री" है (लक्ष दर्शनाङ्कनयोः) इस धातु से "लक्ष्मी" शब्द सिद्ध होता है "यो लक्षयति पश्यत्यङ्कते चिन्हयति चराचरं जगदथवा वेदैराप्तैर्योगिभिश्च यो लक्ष्यते स लक्ष्मीः सर्वप्रियेश्वरः" जो सब चराचर जगत् को देखता चिन्हित अर्थात् दृश्य बनाता जैसे शरीर के नेत्र, नासिका और वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, मूल, पृथिवी, जल के कृष्ण, रक्त, श्वेत मृत्तिका, पाषाण, चन्द्र सूर्यादि चिन्ह बनाता तथा सबको देखता सब शोभाओं की शोभा और जो वेदादि शास्त्र वा धार्मिक विद्वान् योगियों का लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम "लक्ष्मी" है। (सृ गतौ) इस धातु से "सरस्" उससे मतुष् और ङीप् प्रत्यय होने से "सरस्वती" शब्द सिद्ध होता है "सरो विविधं ज्ञानं विद्यते यस्यां चितौ सा सरस्वती" जिसको विविध विज्ञान अर्थात् शब्द अर्थ सम्बंध प्रयोग का ज्ञान यथावत् होवे इससे उस परमेश्वर का नाम "सरस्वती" है। "सर्वाः शक्तयो विद्यन्ते यस्मिन् स सर्वशक्तिमानीश्वरः" जो अपने कार्य करने में किसी अन्य की सहायता की इच्छा नहीं करता अपने ही सामर्थ्य से अपने सब काम पूरे करता है इसलिये उस परमात्मा का नाम "सर्वशक्ति

मान्" है । (णीञ् प्रापणे) इस धातु से "न्याय" शब्द सिद्ध होता है "प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः" यह वचन न्यायसूत्रों पर वात्स्यायनमुनिकृतभाष्य का है "पक्षपातराहित्याचरणं न्यायः" जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों की परीक्षा से सत्य २ सिद्ध हो तथा [illegible] धर्मरूप आचरण है वह न्याय कहाता है "न्यायं कर्त्तुं शीलमस्य स न्यायकारीश्वरः" जिसका न्याय अर्थात् पक्षपातरहित धर्म करने ही का स्वभाव है इससे उस ईश्वर का नाम "न्याय कारी" है । (दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु) इस धातु से "दया" शब्द सिद्ध होता है "दयते ददाति जानाति गच्छति रक्षति हिनस्ति यया सा दया वही दया विद्यते यस्य स दयालुः परमेश्वरः" जो अभय का दाता सत्याऽसत्य सर्व विद्याओं का जानने सब सज्जनों की रक्षा करने और दुष्टों को यथायोग्य दण्ड देनेवाला है इससे परमात्मा का नाम "दयालु" है । "द्वयोर्भावो द्वितं द्वाभ्यामितं द्वीतं वा सैव तदेव वा द्वैतम्, न विद्यते द्वैतं द्वितीयश्वरभावोयस्मिन्स्तदद्वैतम्" अर्थात् "सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यं ब्रह्म" दो का होना वा दोनों से युक्त होना [illegible] द्वीत अथवा द्वैत इस से जो रहित है, सजातीय जैसे मनुष्य का सजातीय दूसरा मनुष्य होता है, विजातीय जैसे मनुष्य से भिन्न जातिवाला वृक्ष, पाषाणादि, स्वगत अर्थात् शरीर में जैसे आंख, नाक, कान आदि अवयवों का भेद है वैसे दूसरे स्वजातीय ईश्वर विजातीय ईश्वर वा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक परमेश्वर है इस से परमात्मा का नाम "अद्वैत" है । "गण्यन्ते येते गुणा वा यैर्गणयन्ति ते गुणाः, यो गुणेभ्यो निर्गतः स निर्गुण ईश्वरः" जितने सत्त्व, रजस्, तपः, रूप, रस, स्पर्श, गंधादि जड़के गुण, अविद्या, अल्पज्ञता, राग, द्वेष और अविद्यादि क्लेश जीव के गुण हैं उनसे जो पृथक् है, इसमें "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" इत्यादि उपनिषदोंका प्रमाण है । जो शब्द, स्पर्श, रूपादिगुणरहितहै इससे परमात्माका नाम "निर्गुण" है । "[illegible] गुण, [illegible] यते स सगुणः" जो सबका ज्ञान सर्वसुख पवित्रता अनन्त बलादि गुणो से युक्त है इसलिये परमेश्वर का नाम "सगुण" है जैसे पृथिवी गन्धादि गुणों से सगुण और इच्छादि गुणों से रहित होने से "निर्गुण" है वैसे जगत् और जीव के गुणों से पृथक् होने से परमेश्वर निर्गुण और सर्वज्ञादि गुणों सहित होने से "सगुण" है । अर्थात् ऐसे कोई भी पदार्थ

नहीं जो सगुणता और निर्गुणता से पृथक् हो जैसे चेतन के गुणों से पृथक् होने से जड़ पदार्थ निर्गुण और अपने गुणों से सहित होने से सगुण वैसे ही जड़ के गुणों से पृथक् होने से जीव निर्गुण और इच्छादि अपने गुणों से सहित होने से सगुण। ऐसे ही परमेश्वर में भी समझना चाहिये। "अन्तर्यन्तुं नियन्तुं शीलंयस्य सोऽयमन्तर्यामी" जो सब प्राणि और अप्राणिरूप जगत् के भीतर व्यापक होके सब का नियम करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "अन्तर्यामी" है। "यो धर्मेराजते स धर्मराजः" जो धर्मही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित धर्मही का [illegible] है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "धर्म्मराज" है। (यमु उपरमे) इस धातु से "यम" शब्द सिद्ध होता है "यः सर्वान् प्राणिनो नियच्छति स यमः" जो सब प्राणियों को कर्मफल देने की व्यवस्था करता और सब अन्यायों से पृथक् रहता है इसलिये परमात्मा का नाम "यम" है। (भज सेवायाम्) इस धातु से "भग" इस से मतुप होने से "भगवान्" शब्द सिद्ध होता है "भगः सकलैश्वर्य सेवनं वा विद्यते यस्य स भगवान्" जो समग्र ऐश्वर्य से युक्त वा भजने के योग्य है इस लिये उस ईश्वर का नाम "भगवान्" है। (मन ज्ञाने) इस धातु से 'मनु' शब्द बनता है "यो मन्यते स मनुः" जो मनु अर्थात् विज्ञानशील और मानने योग्य है इसलिये उस ईश्वर का नाम "मनु" है। (पपालनपूरणयोः) इस धातु से "पुरुष" शब्द सिद्ध हुआ है "[illegible] चराऽचरं जगत् पृणाति पूरयति वा स पुरुषः" जो सब जगत् में पूर्ण होरहा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "पुरुष" है। (डुभृञ् धारणपोषणयोः) "विश्व" पूर्वक इस धातु से "विश्वम्भर" शब्द सिद्ध होता है "यो विश्वं बिभर्त्ति धरति पुष्णाति वा स विश्वम्भरो जगदीश्वरः" जो जगत् का धारण और पोषण करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "विश्वम्भर" है। (कल संख्याने) इस धातु से काल शब्द बना है "कलयति संख्याति सर्वान् पदार्थान् स कालः" जो जगत् के सब पदार्थ और जीवों की संख्या करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "काल" है। (शिष्लृ विशेषणे) इस धातु से "शेष" शब्द सिद्ध होता है "यः शिष्यते स शेषः" जो उत्पत्ति और प्रलय से शेष अर्थात् बच रहा है इसलिये उस परमात्मा का नाम "शेष" है। (आप्लृव्याप्तौ) इस धातु से

"आप्त" शब्द सिद्ध होता है "यः सर्वान् धर्मात्मन् आप्नोति वा सर्वैर्धर्मात्मभि राप्यते छलादिरहितः स आप्तः" जो सत्योपदेशक सकल विद्यायुक्त सब धर्मात्माओंको प्राप्त होता और धर्मात्माओंसे प्राप्त होनेयोग्य, छल कपटादिसे रहितहै इसलिये उस परमात्माका नाम "आप्त" है। (डुकृञ् करणे) "शम्" पूर्वक इस धातुसे "शङ्कर" शब्द सिद्ध हुआहै "यःशङ्कल्याणं सुखं करोति स "शङ्करः" जो कल्याण अर्थात् सुखका करनेहारा है इससे उस ईश्वरका नाम "शङ्कर" है। "महत्" शब्द पूर्वक "देव" शब्द से "महादेव" सिद्ध होताहै "योमहतां देवः स महादेवः" जो महान् देवोंका देव अर्थात् विद्वानोंका भी विद्वान् सूर्यादि पदार्थों का प्रकाशक है इसलिये उस परमात्माका नाम "महादेव" है (प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च) इस धातुसे "प्रिय" शब्द सिद्ध होता है "यः पृणाति प्रीयते वा स प्रियः" जो सब धर्मात्माओं मुमुक्षुओं और शिष्टों को प्रसन्न करता और सबकी कामना के योग्य है इसलिये उस ईश्वर का नाम "प्रिय" है। (भू सत्तायाम्) "स्वयं" पूर्वक इस धातुसे "स्वयम्भू" शब्द सिद्ध होता है "यः स्वयं भवति स स्वयम्भूरीश्वरः" जो आपसे आपही है किसीसे कभी उत्पन्न नहीं हुआ है इससे उस परमात्माका नाम "स्वयम्भू" है। (कुशब्दे) इस धातु से "कवि" शब्द सिद्ध होता है। "यः कौति शब्द यति सर्वा विद्या स कविरीश्वरः" जो वेदद्वारा सब विद्याओं का उपदेष्टा और वेत्ता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "कवि" है। (शिवु कल्याणे) इस धातु से "शिव" शब्द सिद्ध होता है "बहुलमेतन्निदर्शनम्" इस से शिवु धातु माना जाता है, जो कल्याणस्वरूप और कल्याण का करने हारा है इस लिये उस परमेश्वर का नाम "शिव" है।

ये सौ नाम परमेश्वर के लिखे हैं परन्तु इनसे भिन्न परमात्मा के असंख्य नाम हैं क्योंकि जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण कर्म स्वभाव हैं वैसे उसके अनन्त नाम भी हैं उनमें से प्रत्येक गुण कर्म्म और स्वभाव का एक २ नाम है इससे यह मेरे लिखे नाम समुद्र के सामने विन्दुवत् हैं क्योंकि वेदादि शास्त्रों में परमात्मा असंख्य गुण कर्म स्वभाव व्याख्यात किये हैं, उनके पढ़ने पढ़ाने से बोध होसकता है और अन्य पदार्थों का ज्ञान भी उन्हीं को पूरा २ होसकता है जो वेदादि शास्त्रों को पढ़ते हैं।

तिमिरभास्कर पृ० ३ पं० १८ से—

स्वामीजी के सत्यार्थप्रकाश से नारायणादि परमेश्वर के १०० नामों में की व्याख्या उद्धृत की है जिस पर पं० ज्वालाप्रसादजी ने कुछ उत्तर स्वयं ही नहीं दिया मानों उसको स्वीकार ही कर लिया है इस लिये प्रत्युत्तर की आवश्यकता ही नहीं।

मीक्षा—पं० ज्वालाप्रसादजी ने जो यह दिखलाया है कि "मदोन्मत्त को ताड़न करै" यह अर्थ तो व्याकरण विरुद्ध है इस पर आपने क्या समाधान दिया जो यह कहते हैं कि कुछ नहीं लिखा जब आप उत्तर ही नहीं देसकते तब फिर खंडनही करवाकर क्या करेंगे। पं० तुलसीराम जो यहाँ पर पबलिक को यह धोका देना चाहते हैं कि पं० ज्वालाप्रजादजी कुछ न लिख सके और स्वामी दयानन्दजी का लेख सत्य रहा हमारा तो यह कथन है कि चाहे कोई खंडन करे या न करे किन्तु स्वामी दयानन्द का लेख तो असत्यही रहेगा क्योंकि ये एक २ अक्षर वेदविरुद्ध लिखते हैं आपके कहने पर अब थोड़ासा खंडन हम दिखलाकर दावा करते हैं कि जब तक समाजी मत पृथिवी पर रहेगा तब तक इस मत का कोई भी मनुष्य उत्तर नहीं देसकेगा।

स्वामी दयानन्दजी ने मंत्रों के जो अर्थ किये हैं या ईश्वर के नामों की जो व्युत्पत्तियाँ की हैं सब मनमानी की हैं प्रायः सभी अर्थ अशुद्ध हैं उदाहरण के लिये आप "त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि" के अर्थ को देखिये इसका अर्थ यह होता था कि तुम प्रत्यक्ष ब्रह्म हो अब यदि प्रत्यक्ष ब्रह्म मानते हैं तो ईश्वरावतार सिद्ध होता है इस कारण से स्वामीजी लिखते हैं कि अन्तर्यामी रूप से प्रत्यक्ष ब्रह्म हो अन्तर्यामी मिलाने पर भी कार्य सिद्ध न हुआ फिरभी रूप लिया ही गया रूप के निषेध के लिये अर्थ बदला किन्तु ईश्वर के रूप का अभाव न होसका अच्छा अब हम समाजियों से पूछते हैं कि ईश्वर का अन्तर्यामी रूप कैसा है काला या लाल या पीला या नीला और वह कितना लम्बा चौड़ा मोटा या दुबला है यदि अन्तर्यामी रूप है तब तो ईश्वर साकार होगया यदि नहीं है तो स्वामीजी के इस झूठे लेख को समाज खंडन क्यों नहीं कर

सकती फिर वह प्रत्य... ...ा उसको कहते हैं जो इन्द्रियों से ग्रहण होता हो अब समाजी लोग बतलावें अन्तर्यामी ईश्वर को उनकी आंख देखती है कि कान सुनता है या नाक सुगन्धी लेती है यदि ऐसा नहीं तो फिर प्रत्यक्ष कैसा।

इसी प्रकार जो व्युत्पत्तियाँ स्वामी दयानन्दजी ने की हैं यदि वे किसी वैयाकरण के आगे रखदी जावें और यह पूंछा जावे कि इन व्युत्पत्तियों के लिखनेवाला कितना विद्वान् है इसके उत्तर में वैयाकरण से यही कहते बनेगा कि इन व्युत्पत्तियों का लिखनेवाला व्याकरण नहीं पढ़ा वह कौन व्युत्पत्ति है आप देखना चाहते हैं तो देखिये "पुषुशुद्धेषु पदार्थेषु भवोदिव्यः शोभनानि पर्णानि पलानानि पूर्णानि कर्माणि वा यस्य सयोगरुः आत्मा सगुरुत्मान" "यो मातरिश्वा वायुरिव बलवान् समातरिश्वा" इत्यादि समास और ये व्युत्पत्तियाँ तो वही ठीक मानेगा जो पुरुष व्याकरण से सोलह आने चौसठ पैसे अनभिज्ञ होगा मुझे शोक है इस बात का कि विद्वान् लोग पक्षपात के फेर में पड़कर शुद्ध अशुद्ध का भी संशोधन नहीं करसकते मैं प्रतिनिधि से आशा रखता हूं कि वह "गुरुत्मान्" और "मातरिश्वा" का समास और व्युत्पत्ति स्वामी दयानन्द की लिखी अशुद्ध हैं या शुद्ध इसपर विचार करेंगी किन्तु यह कब होसकता है कि मेरी आशा को प्रतिनिधि पूर्ण करै करती तो सही किन्तु प्रतिनिधि को यह भय लगा है कि ऐसा करने से समाजरूपी महल की बालू की भीत धम से नीचे गिरजावेगी।

(३) स्वामी दयानन्दजी ने जैसी व्युत्पत्तियाँ की हैं वैसी व्युत्पत्तियाँ दो चार मैं करता हूं लीजिये नमूने "गृह्णाति धान्यादिकं गृहम्" ईश्वर सब धान्यादि को अपने बस में किये है इससे उस ईश्वर का नाम "घर" है। "काया सुतिष्ठतीति कायस्थः" ईश्वर जड़ चैतन्य सभी के शरीर में व्याप्त है इससे ईश्वर का नाम "कायस्थ" है। "दयया आनन्द यतीति दयानन्दः" ईश्वर अपनी दया से सबको आनन्द देता है इससे उस परमात्मा का नाम "दयानन्द" है। "सत्यस्य अर्थस्य प्रकाशो भवति यस्मात्सः सत्यार्थप्रकाशः" ईश्वर वेद के द्वारा सत्य अर्थको प्रकाशित करता है इससे उसका नाम "सत्यार्थप्रकाश" है। "आर्याणां समाजः समूहो यत्र स आर्यसमाजः" सर्वत्र व्यापक होने से श्रेष्ठ पुरुषों का समुदाय ईश्वर में ही रहता है इससे उसका नाम "आर्यसमाज" है। ऐसी व्युत्प-

स्त्रियों को लेकर समाज स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों की कब तक रक्षा करेगी आखिरकार एक दिन तो कन्धे से जुवा डालना ही पड़ेगा यदि स्वामी दयानन्द प्रमाण देते तो येही नाम सबको मान्य होते प्रमाण न देने का एक तो कारण यह है कि "शनिश्चर" राहु, केतु, आदि जो स्वामी दयानन्द ने ईश्वर के नाम बतलाये इनमें प्रमाण त्रिकाल में भी नहीं मिल सकता दूसरे इन नामोंमें जो कोष आदि के प्रमाण मिलते हैं उनको समाज प्रमाण नहीं मानती इस कारण स्वामी दयानन्दजी ने एक नये प्रकार की ही घड़न्त को स्वीकार किया है इसप्रकारकी व्युत्पत्तियों में कोई दोष तो नहीं होता।

मुझे याद आगया एक बाबाजी किसी मन्दिर का पुजारी था और वह कुछ व्याकरण भी पढ़ा था इस कारण वह उसी मन्दिरमें कुछ विद्यार्थियोंको भी पढ़ाया करता था एकदिन वह बाबाजी एक विद्यार्थी से बोला कि हमारी गौ गोसमूह में चरने को जाती है और यदि समय पर उसको लेने न जाओ तो वह मनुष्यों के खेतों में खेती चरने चली जाती है आज मुझे काम है तुम जाकर गौ को ले आओ इसको सुनकर वह लड़का बोला कि "गौ" किसको कहते हैं बाबाजी बोले अबे बेवकूफ [illegible] पढ़न्त पढ़ गया किन्तु तुझको यह न याद रहा कि "गच्छतीति गौः" जो चले उसका नाम गौ है इसको सुन कर वह लड़का गौ लेनेको चलदिया और घर से बाहर आकर क्या देखा कि एक चमार का लड़का भागा चला जाता है इस विद्यार्थी ने उस चमार के लड़के से तेज दौड़ कर उसको पकड़ लिया और उसको बाबाजी के पास लेगया मन्दिर में जाके बाबाजी को आवाज दी कि बाबाजी लीजिये बांधिये यह आप की गौ आगई यह सुन कर बाबाजी रस्सी लेकर फौरन आगये आकर बोले कहां है विद्यार्थी ने एक घूंसा उस लड़के की कमर में मारकर बतलाया कि यह रही। बाबाजी बोले अबे बेवकूफ यह लड़का है कि "गौ" इसको सुनकर विद्यार्थी बोला कि बाबाजी आप का बतलाया लक्षण (डिफनेशन) इसमें घटता है आपने कहा था कि जो गमन करे उसका नाम गौ है यह भगा जाता था इसको सुनकर बाबाजी बोले कि गौ के चार पैर होते हैं विद्यार्थी बोला कि बाबाजी यह तो आप अब कहते हैं पहले नहीं कहा अच्छा अब लाता हूँ यह कह कर विद्यार्थी चलागया और थोड़ीसी देर में एक गधे को लेकर आगया मन्दिर में गधे को खड़ा कर बाबाजी को आवाज दी कि आइये यह आपकी

गौ खड़ी है बांध लीजिये बाबाजी बोले कि पूजा में लगे हैं तुमहीं बांध दो इस को सुन कर विद्यार्थी बोला कि बाबाजी यह तो दुलत्ती मारती है जब बाबाजी के कान में दुलत्ती का शब्द गया तब तो चौकन्ने हुये और फौरन बाहर आये देखकर बोले कि यह गौ है यह तो गधा है विद्यार्थी बोला कि महाराज यह मैं कुछ नहीं जानता आप ध्यान देकर गिन लें पैर इसके चारही हैं तब बाबाजी को होश आया कि तुम्हारे लक्षण में अतिव्याप्ति दोष है उस समय बाबाजी ने कहा कि यह मेरी भूल होगई गौ का ठीक लक्षण तो "शासनात्वं गोत्वं" ही है अर्थात् जिसके गले में खाल लटकती हो उसको गौ कहते हैं जिस प्रकार इस बाबाजी के लक्षण में अतिव्याप्ति दोष था उसी प्रकार समाजियों के लक्षणों में अतिव्याप्ति या अव्याप्ति आदि दोष सर्वदा रहते हैं और यदि ये दोष निकालते हैं तो फिर इनका धर्म रफूचक्कर होता है।

उदाहरण के लिये मैं आपको बतलाता हूँ—एक स्थान में आर्यसमाज और सनातनधर्म इन दोनों में शास्त्रार्थ होने लगा नियम बन गये शास्त्रार्थ पर बैठ गये आरम्भ में सनातनधर्मी पण्डितों ने कहा कि "लक्षण प्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धिः" लक्षण और प्रमाण से वस्तु की सिद्धि होती है अतएव तुम पहिले वेद का लक्षण कहो वेद किसको कहते हैं इसको सुन कर आर्यसमाजी पण्डितों में कानाफूसी होने लगी कुछ कानाफूसी करने के बाद एक पण्डित ने कहा कि "अपौरुषेयं वाक्यं वेदः" जिसका अर्थ यह है कि जो वाक्य मनुष्य (नर) का बनाया न हो उसको वेद कहते हैं इसको सुन कर सनातनधर्मी पण्डितों ने यशोदादेवी का बनाई चार पुस्तकें आर्यसमाजी पण्डितों के आगे रखदीं और कहा कि यह लो अपने चारों वेद आप लोगों का बतलाया लक्षण इनमें ठीक घट गया ये पुस्तकें किसी भी पुरुष की बनाई हुई नहीं हैं इसको देखकर समाजी पण्डित देखते ही रहगये फिर यहां तक भी कहा गया कि जब आप लोग वेदों का लक्षणही नहीं जानते तो फिर वेद मन्त्रों का अर्थ क्या करोगे सब सुना किन्तु फिर वेद का शुद्ध लक्षण न किया जब तो क्या करते आज तक भी किसी पण्डित ने नहीं किया और न अब कर सकते हैं आपत्ति यह है कि यदि वेद का शुद्ध लक्षण करते हैं तो दयानन्दजी ने वेदों को जैसा लिखा वह उड़ता है इसी प्रकार ये लोग जितने लक्षण करते हैं वे सब दोषग्रसित रहते हैं इसी प्रकार दयानन्द ने व्युत्पत्तियां की हैं इसी प्रकार

स्वामी दयानन्द की व्युत्पत्तियां हूबहू वैसी ही हैं जैसी कि "गच्छतीति गौः" इन व्युत्पत्तियों को वही लोग मानेंगे जो आर्यसमाज के रजिस्टर में नाम लिखवाकर वेदपाठी बने हैं और [illegible] कुछ पढ़ा है वह समझते हैं कि ये सब लेख भंग के नशे में लिखा है अब देखेंगे पं० तुलसीराम या आर्यसमाज इस व्युत्पत्ति समुदाय को सत्यार्थप्रकाश से निकालती है या कुछ हमको तोष-दायक उत्तर देती है जान पड़ता है कि दोनों ही मौनव्रत का ग्रहण करेंगे।

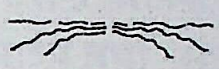

मंगलाचरण।

सत्यार्थप्रकाश पृ० २६ पं० ८ से—

(प्रश्न) जैसे अन्य ग्रन्थकार लोग आदि मध्य और अन्त में मंगला-चरण करते हैं वैसे आपने कुछ भी लिखा न किया (उत्तर) ऐसा हमको करना योग्य नहीं क्योंकि जो आदि मध्य और अन्त में मंगल करेगा तो उस के ग्रन्थ में आदि मध्य तथा अन्त के बीच में जो कुछ लेख होगा वह अमंगल ही रहेगा इसलिये मंगलाचरण "शिष्टाचारात् फल दर्शनाच्छ्रुतिश्चेति" यह सांख्यशास्त्र के अ० ५ का पहिला सूत्र है इसका यह अभिप्राय है कि जो न्याय पक्षपात रहित सत्य वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा है उसी का यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मंगलाचरण कहाता है ग्रन्थ के आरम्भ से लेके समाप्ति पर्यन्त सत्याचार का करनाही मंगलाचरण है न कि कहीं मंगल और कहीं अमंगल लिखना देखिये महाशय महर्षियों के लेख को "न्याय वद्यानि कर्माणि तानिसेवितव्यानिनो इतराणि" यह तैत्तिरीयोपनिषद् प्रपाठक ७ अनु० ११ का वचन है हे संतानों जो "अनवद्य" अनिन्दनीय अर्थात् धर्मयुक्तकर्म हैं वेही तुम को करने योग्य हैं अधर्मयुक्त नहीं।

तिमिरभास्कर पृ० ५।

धन्य है स्वामीजी आपके अर्थ और अभिप्राय को आप तो मंगलाचरण करते जांय और पूछने पर नहीं कहें यदि आप मंगलाचरण नहीं करते तो बतलाइये कि सत्यार्थप्रकाश भूमिका

के पहिले "ओ३म् सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः" और "अथ सत्यार्थप्रकाशः" और "शन्नो मित्रादि" सत्यार्थप्रकाश के प्रारम्भ में और अन्त में ५९२ पृष्ठ में फिर "शन्नो मित्रः" इत्यादि और ये नाम परमेश्वर के किस आशय से लिखे हैं तथा आपने वेद भाष्य के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में "विश्वानि देवे" इत्यादि क्यों लिखा है इससे आपके लेखानुसार यह विदित होता है कि आपके वेदभाष्य तथा सत्यार्थप्रकाश में बीच २ में अमंगलाचरणही हैं और सत्य भी है ऊपर के सांख्यसूत्र के टीके में सत्य वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा कहनी मंगलाचरण है और आपने पोपादि बहुत से अपशब्द और दुर्वचन आगे इस पुस्तक में लिखे हैं जिनके उच्चारण की आज्ञा वेद में कहीं नहीं पाई जाती न उन शब्दों का उच्चारण करना न्याय और निष्पक्षता सम्पादन करता है इस लिखने से जाना जाता है कि स्वामीजी प्रगट में मंगलाचरण से हिचकते हैं और स्वयं वोही परिपाटी ग्रहण करते हैं यदि ऐसा न करते तो यह इनका मत भिन्न कैसे प्रतीत होता और सांख्य वचन का अर्थ यह है कि मंगलाचरण से मङ्गल होता है यह शिष्टाचार है और इसका फल भी दीखता है श्रुति प्रमाण है।

भास्करप्रकाश पृ० १२ पं० २२—

स्वामी जी तान्त्रिकादि लोगों की परिपाटी "भैरवायनमः, दुर्गायै नमः हनुमतेनमः इत्यादिका खंडन करते हैं ऋषि लोगों की परिपाटी "अथ" आदि से मंगलाचरण करना अच्छा मानते हैं अतः ऋषि परिपाटी से उन्होंने मंगलाचरण किया स्वामीजी ने आदि मध्य अन्तमें ऋषि परिपाटी से मंगलाचरण किया और बीच २ में भी सर्वत्र असत्य खंडन और सत्यमंडन रूप मंगलाचरण ही किया उन्हों ने पोपादि शब्दों का प्रयोग भी सर्वसाधारण को धोके से बचाने के लिये किया है अतः वह भी मंगलाचरण ही है।

मीक्षा—स्वामी दयानन्दजी तो मंगलाचरण का बिलकुल ही निषेध करते हैं यह तो लिखते हैं कि हमको ऐसा करना ही योग्य नहीं जब योग्य ही नहीं तो फिर परिपाटी का क्या जिकर है जब इस जगह स्वामी मंगलाचरण को कतई उड़ाते हैं और पं० तुलसीराम इसको छोड़ कर परिपाटी पर दौड़ लगाते हैं तब इस लेख का क्या होगा इसको सत्य मानें या झूठ यदि यह लेख सत्य है तब तो किसी प्रकार का भी मंगलाचरण न होना चाहिये और यदि परिपाटी से मंगलाचरण करते हैं तो फिर इस लेख का क्या होगा और मंगलाचरण का सर्वथा निषेध करता है और "शिष्टाचारात्फल दर्शनाच्छ्रुतिश्चेति" इस सांख्य का अर्थ स्वामी दयानन्दजी ने "जो न्याय पक्षपातरहित सत्यवेदोक्त ईश्वर की आज्ञा है उसको यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण कर[illegible] कहाता है" यह किया क्या सचही इस सांख्य का यह अर्थ होसक्ता है यदि होता है तो किस व्याकरण कोष निघंटु से क्या कोई समाजी दस बीस लाख जन्म लेकर भी इसको सिद्ध कर सकता है यदि यह शक्ति किसी में हो तो बतलावे नहीं तो मानना पड़ेगा कि समाज में संस्कृत जाननेवालों का अत्यन्ताभाव होगया ऐसे २ ऊटपटाँग अर्थों के मानने से साफ प्रगट होता है कि समाजी लोग "बाबा वचनं प्रमाणम्" में बँधगये यहाँ तो यही घटता है कि काफ लाम जबर कल लाम वाव ऐश लू क्या हुआ कि मौलाबख्श हिज्जे कल्लू के और होगया मौलाबख्श ऐसे अयुक्त लेख को समाज का मानना अबोध या आग्रह में यह एकही प्रमाण सिद्ध करता है कि अब समाज युक्तायुक्त को बात को न सुन कर स्वामी दयानन्द के मिथ्या लेख को ही मानती रहेगी इसका अर्थ तो यही था कि मंगलाचरण करना शिष्टाचार है और इसका फल देखा जाता है अर्थ की अशुद्धता और मंगलाचरण के सर्वथा निषेध का उत्तर क्या समाज कभी देसकेगी कदापि नहीं अब शेष भास्करप्रकाश का उत्तर आगे देखिये।

सत्यार्थप्रकाश पृ० २६ पं० २०—

इसलिये जो आधुनिक ग्रन्थों में "श्रीगणेशायनमः" सीतारामाभ्यांनमः" "राधाकृष्णाभ्यांनमः" "श्रीगुरुचरणारविन्दाभ्यांनमः" "हनुमतेनमः" "दुर्गायैनमः" "वटुकायनमः" "भैरवायनमः"

"शिवायनमः" "सरस्वत्यैनमः" "नारायणायनमः" इत्यादि लेख देखने में आते हैं इनको बुद्धिमान लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्याही समझते हैं क्योंकि वेद और ऋषियों के ग्रन्थों में कहीं ऐसा मंगलाचरण देखने में नहीं आता और आर्ष ग्रन्थों में "ओ३म्" तथा "अथ" शब्द तो देखने में आता है देखो 'अथ शब्दानुशासनम्' अथेत्ययंशब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते यह व्याकरण महाभाष्य "अथातो धर्म जिज्ञासा" अथेत्यानन्तर्ये वेदाध्ययनानन्तरम् यह पूर्व मीमांसा "अथातोधर्मंव्याख्यास्यामः" अथेति धर्म कथनानन्तरं धर्म लक्षणं विशेषेण व्याख्यास्यामः यह वैशेषिक दर्शन "अथ योगानुशासनम्" अथेत्यय मधिकारार्थः यह योग शास्त्र "अथत्रिविध दुखात्यन्त निवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थ" सांसारिक विषय भोगानन्तरं त्रिविध दुखात्यन्त निवृत्यर्थः प्रत्यन्तः कर्त्तव्यः यह सांख्यशास्त्र "अथातोब्रह्मजिज्ञासा" यह वेदान्त सूत्र है "ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत" यह छान्दोग्य उपनिषद का वचन है "ओमित्य तदक्षरामदंसर्वं तस्योपव्याख्यानम्" यह मांडूक्य उपनिषदके आरम्भ का वचन है ऐसेही अन्य ऋषि मुनियोंके ग्रन्थों में "ओम्" और "अथ" शब्द लिखे हैं वैसेही (अग्निइट अग्नियें त्रिसप्ता परियन्ति) ये शब्द चारो वेदों के आदि में लिखे हैं "श्रीगणेशायनमः" इत्यादि शब्द कहीं नहीं और जो वैदिक लोग वेद के आरम्भ में "हरिःओम्" लिखते और पढ़ते हैं यह पौराणिक और तांत्रिक लोगों की मिथ्या कल्पना से सीखे हैं वेदादि शास्त्रों में "हरि" शब्द आदि में कहीं नहीं इस लिये "ओ३म्" वा "अथ" शब्दही ग्रन्थकी आदि में लिखना चाहिये यह किंचित्मात्र ईश्वर के विषय में लिखा इसके आगे शिक्षा के विषय में लिखा जायगा।

इति श्रीमदयानन्द सरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषा विभूषित ईश्वर नाम विषये प्रथमःऽसमुल्लासः सम्पूर्णः।

तिमिरभास्कर पृ० ७—

विदित होता है कि स्वामीजी को परमेश्वर के नाम कुछ तो प्रिय हैं और कुछ अप्रिय हैं इसमें जो प्राचीन लोगों की परिपाटी है इसका तो मेटना मानो इन्होंने नियम ही कर लिया है देखिये प्रथम तो गणेश गुरु शिव सरस्वती नारायण शिव आदि नाम परमात्मा के लिखे जिनका उल्लेख हम कर चुके हैं और अब यह कहते हैं कि इनको विद्वान् मिथ्या ही समझते हैं तो आप उनको दोष मत दीजिये वोही कह दीजिये मैं मिथ्या समझता हूं डरिये नहीं आप तो सिद्ध को डराचुके हैं (जीवन०) क्या यह आप परमेश्वर के नाम नहीं मानते जो मानते हो तो मिथ्या कैसे जो नहीं मानते तो परमेश्वर के १०० नामों में यह शब्द क्यों लिखे इन्हें भी वेद में से निकाल डाला करिये यदि आपकी चलती तो प्राचीन महात्माओं ने जो सत्य बोलना परम धर्म लिखा है आप उनका भी निषेध करते परन्तु इसमें चल नहीं सकती और जैसे आपने धातुओं से परमेश्वर के नाम सिद्ध किये हैं क्या "रमुक्रीडायां" इस धातु से राम और हरति दुखानीति हरिः" जो सबमें रमरहा है वह राम है भक्तों के दुख हरने से परमेश्वरका नाम हरि है हृञ हरणे सर्वधातुभ्य इन्उणा० पा० ४ और "कृषिर्भूवाचकः शब्दो[illegible]निर्वृतिवाचकः। तयोरैक्यंपरंब्रह्म कृष्णइत्यभिधीयते" इस प्रकार कृष्ण के अर्थ भी तो ईश्वर ही के हैं या परमेश्वर को कोई अपना नाम प्यारा है कोई नहीं जो आप निषेध करते हो आप तो विद्वत्ता का दम भरते हो ईश्वर को पक्षपाती मत बनाओ कहिये परमेश्वर के यह नाम लेनेसे कौन सी देशोन्नति में हानि होती है यदि विचारा जाय तो जैसे प्राचीन ग्रन्थों में विष्णुसहस्रनाम शिवसहस्रनाम हैं वही आशय उभारकर यह आपनेभी शतनाम लिखेहैं भला जो ग्रन्थ की आदि में १०० नाम ईश्वरके लिखना यह कौनसा वेदानुकूल है प्रत्यक्ष लिखदेते कि विष्णुसहस्रनाम के स्थान में हमारे शिष्य शतनाम

का पाठ किया करैं फिर यह कैसी बात है कि अपने नामों को आपही मिथ्या करते हो शोक है आपकी बुद्धि पर आप लिखते हैं कि वेद और ऋषियों के ग्रन्थों में ऐसा मङ्गलाचरण देखने में नहीं आता इससे [illegible] होता है कि ऐसा नहीं तो और प्रकार का तो देखने में आता है सो आपने लिखा ही है कि अथ ओम् देखने में आते हैं सो उसी प्रकार आपने भी अथ और ओ३म् लिखा है तो आपने भी मङ्गलाचरण किया (अब आपके ग्रन्थ के मध्य और अन्त में क्या है) मुकरते क्यों हो मङ्गलाचरण करना कोई चोरी नहीं है और वेदकी आदि में तो अग्निमीले इषेत्वा० अग्न आयाहि० पद पड़े हुए हैं आप वेदानुकूल ही चलते हैं फिर अथ और ओ३म् मन्त्रसंहिताओं में से किसके अनुकूल लिखा है और हरि शब्द से तो कोई आपका बड़ाभारी द्वेष है कदाचित् कहीं इसके दूसरे अर्थवाले से भेंट तो नहीं होगई (जीवनचरित्र में [illegible] था) भय के मारे आपको परिआण पाना कठिन होगया होगा तब से उस नाम से ऐसा जी खट्टा हुआ कि वह शब्द जिस २ में आरूढ़ हो उस २ से भी भयभीत हो द्वेष करने लगे जैसा मारीच को भय हुआ था (रा अस नाम सुनत दशकंधर। रहत प्राण नहिं मम उर अन्तर) और इसी कारण आप तांत्रिक पौराणिक लोगों के ऊपर डालकर उसे मिथ्या बताते हो।

भास्करप्रकाश पृ० १३ पं० १०—

निस्संदेह ये नाम परमेश्वर के भी हैं परन्तु स्वामीजी के समय में लोक में इन नामों से [illegible] पुरुष विशेषों का और वेदविरुद्ध अवतारों का ग्रहण करने का बहुत प्रचार था और है अतः स्वामीजी ने यह समझ कर इन नामों से मङ्गलाचरण को रोका कि लोक में अवतारादि की कथा प्रचरित होकर वेदविरुद्ध मतमतांतर फैलते गये और फैलते जाते हैं जहां तक हो सके मंगलाचरणादि से वैसे अशुद्ध संस्कारों की पुष्टि न हो इसलिये ऐसा किया उनको परमात्मा का कोई अप्रिय नाम न था रामकृष्ण हरि

आदि शब्द चाहे व्याकरण से किसी प्रकार खैंचातानी करके ईश्वरार्थवाचक सिद्ध भी होजावें परन्तु इन शब्दों से वेदादि प्राचीन ग्रंथों में ईश्वर का ग्रहण नहीं करते आये हैं इसलिये स्वामीजी ने ऐसा किया और "कृष्ण" शब्द की व्युत्पत्ति तौ आपने किसी व्याकरण से की भी नहीं क्या आप किसी व्याकरण वा निरुक्त में "कृषिर्भूवाचकः" आदि अपनी लिखी कारिका को दिखा सकते हैं विष्णुसहस्रनाम के साथ गोपालसहस्रनाम भी तौ है उसे क्यों छोड़ते हो क्या इस लिये कि उसमें तौ "चोरजारशिखामणिः" यह भी परमेश्वर का नाम है पक्ष दीजिये विष्णुसहस्रनाम गोपाल सहस्रनाम गीतगोविन्द आदि का भेद न खुलवाइये और निदेशियों से हँसी न कराइये स्वामीजी तौ आपके घर का भेद खूब जानते थे और आपकी शुभचिंतकता से केवल दिग्दर्शनमात्रही से पोल खोली है यदि स्वामीजी वा हम लोग आपकी तरह करते वा करें तौ वही दशा हो जो "स्वर्ग में सब्जेक्ट कमेटी" से भले प्रकार झलकती है बस इन्हीं बखेड़ों को स्वामीजी उघाड़ना नहीं चाहते थे अतएव उन्होंने गोपालसहस्रनामादि पर उपेक्षाही की यह आप का काम है कि आप इन शब्दों को वेदविरुद्ध सिद्ध करें। ओं खं ब्रह्म। यजुः अध्याय ४० आदि शतसः प्रकरणों में ओमादि नाम जो आर्ष ग्रंथों में आये हैं उपस्थित हैं नहीं तौ आप बतलाइये कि रामकृष्ण हरि आदि नाम वेद में कहां ईश्वरवाचक आये हैं।

समीक्षा—पृष्ठ २६ पंक्ति २० से सत्यार्थप्रकाश में जो यह लेख है इस का उत्तर पं० तुलसीराम को अलाहिदा देना उचित था क्योंकि तिमिरभास्करने अलाहिदाही खंडन किया है किन्तु पं० तुलसीराम ने ऐसा नहीं किया बल्कि सत्यार्थप्रकाश पृ० २५ पं० ८ के उत्तर में मिला दिया ऐसा करने से यह लाभ हुआ कि पृ० २६ पं० ८ में जो स्वामी दयानन्दने मंगलाचरण का कर्तई निषेध किया था वह दब गया पं० तुलसीराम दोनों को मिलाकर यह सिद्ध कर रहे हैं कि स्वामीजी मंगलाचरण का निषेध नहीं करते किन्तु तान्त्रिक लोगों की परिपाटी का निषेध करते हैं पं० तुलसीराम के इस लेख पर किसी भी समाजी की दृष्टि न पहुँची यदि एक की भी दृष्टि यहां पर पहुँची होती तो क्या समाजी पुरुष इस पर कोलाहल न मचाते

कि स्वामीजी ने तो मंगलाचरण का कर्तई निषेध किया है और पं० तुलसीराम उसको नहीं मानते स्वा[illegible] र का कर्तई निषेध का न मानना प्रमाण देरहा है कि पण्डित तुलसीराम स्वामी दयानन्द के कुछ लेख को वेदविरुद्ध समझकर और उसको न मानकर इस गलती को छिपाते हैं और इसका उत्तर नहीं देते क्या समाजी लोग इसको कभी देखेंगे या ऐसेही अंधेरखाता चलता रहेगा इसके आगे स्वामी दयानन्द ने परिपाटी से मंगलाचरण करके कर्तई निषेध को अपने आपही खंडन कर दिया अस्तु स्वामी दयानन्द जो परिपाटी बतलाते हैं यह कहां तक सच है वास्तविक में परिपाटी भेद है ही नहीं इसको हम आगे कहेंगे यहां पर इतनाही कहना काफी समझते हैं कि स्वामी दयानन्द ने लेखनी उठाते ही परिपाटी (पार्टी) करना आरम्भ कर दिया जिसका प्रभाव पड़ते ही समाज में घास मांस अर्धी कुवारामी कन्नौजिया पंडित बाबू आदि आदि पार्टियां बनगईं और आगे भी बनती जाती हैं जिन पार्टियों के फल से समाज में प्रत्येक मनुष्य डेढ़ चावल की खिचड़ी अलाहिदा ही पकाता है और एक पार्टी का मनुष्य दूसरी पार्टी के नेता की इज्जत लेना चाहता है दूसरी पार्टी को गिराने के लिये सैकड़ों समाजियों का अमूल्य समय खर्च होता है एकही वर्ष के अन्दर मनों स्याही और कागज की गांठें की गांठें इसी काम में खर्च होती हैं इसका कारण यही है कि स्वामी दयानन्दजी ने मंगलाचरण में ही परिपाटी डालदी यदि समाजी लोग समाज के भेद (पार्टियां) मिटाना चाहते हैं तो कृपा कर मंगलाचरण में से पार्टी निकालदें कि जिसके फल से आज समाज में महाभारत हो रहा है।

"श्रीगणेशायनमः" "भैरवायनमः" "दुर्गायैनमः" इत्यादि मंगलाचरण को स्वामी दयानन्द तांत्रिक परिपाटी कहते हैं और पं० तुलसीरामजी भी विचार का गला घोटकर हां में हां मिलातेही हैं मैं पंडित तुलसीराम तथा आधुनिक आर्यसमाजियों से यह पूछता हूं कि क्या सचही "गणानांत्वा" इस मंत्र में गणेश नाम ईश्वर का नहीं क्या स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश पृ० ४२ पं० २६ में गणेश नाम ईश्वर का नहीं लिखा जब दोनों ही स्थान में गणेश नाम ईश्वर का है तब फिर "श्रीगणेशायनमः" लिखने से घबराना क्या भूल नहीं है यदि तान्त्रिक लोग "श्रीगणेशायनमः" लिखते हैं तब तो उन

का मत वैदिक है क्योंकि वे लोग वेदप्रतिपाद्य गणेश को ही प्रणाम करते हैं वेदप्रतिपाद्य गणेश को नमस्कार करने से तो तान्त्रिक लोगों का अवैदिक होना त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं हो सकता वैदिक मंगलाचरण करने पर तान्त्रिक लोगों का वैदिक न मानना पूरी हठ है अब रहगया "भैरवायनमः" या "दुर्गायैनमः" जिस प्रकार स्वामी दयानन्द ने व्याकरण से व्युत्पत्ति करके पृथिवी कुबेर आदि परमेश्वर के वैदिक नाम सिद्ध किये हैं इसी प्रकार भैरव दुर्गा भी परमेश्वर के वैदिक नाम सिद्ध हो सकते हैं यदि न हो जावें तो हम जिम्मेदार क्या किसी समाजी में इतनी शक्ति है कि जो संस्कृत की व्युत्पत्ति से भैरव दुर्गा ईश्वर के नाम होने का खंडन कर सके यदि कोई भी समाजी इस पर लेखनी उठावेगा तो हम उसको धन्यवाद देंगे किन्तु लेखनी उठाते ही सत्यार्थप्रकाश में लिखे पृथिवी आदि ईश्वर के नाम पाताल को जाते रहेंगे और भैरव दुर्गा आदि फिर भी ईश्वर के नाम बने ही रहेंगे क्योंकि इनमें बीसियों कोष प्रमाण मिलेंगे। इसके आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं कि "अथ" आदि ऋषि परिपाटी का खंडन स्वामीजी नहीं करते हम यह पूछते हैं कि ऋषियों की कौन २ बातें स्वामीजी मानते हैं बतलाइये वह कौन ऋषि है कि जिसने ११३१ शाखाओं को वेद न माना हो वह कौनसा ऋषि है कि जो मुसलमानों की शुद्धि लिखगया हो वह कौन ऋषि है जो चमारों को शर्मा पदवी का अधिकारी बतला गया हो जब कि आप एक भी सिद्धान्त ऋषियों का नहीं मानते फिर ऋषि परिपाटी से मंगलाचरण क्यों माना क्या मजबूरन तो मानना नहीं पड़ा कहीं भूल कर मंगलाचरण कर गये हों और उसकी पुष्टि के लिये ऋषि परिपाटी की शरण लेना पड़ी हो। यहां पर एक बात और भी पूंछना है कि मंगलाचरण में वेद परिपाटी और ऋषि परिपाटी में भी भेद है ऋषि लोग "अथ" आदि से मंगलाचरण करते हैं किन्तु वेद ने "अग्निमीले" इत्यादि शब्दों से मंगलाचरण किया है अब वेद परिपाटी को छोड़ कर आपने ऋषि परिपाटी को क्यों लिया क्या वेद परिपाटी में कोई दोष था और जब आप ऋषि परिपाटी को लेते हैं तब फिर आप वैदिक कैसे कहलावेंगे जब आपही वेद परिपाटी को छोड़ते हैं तो इस पारपाटी को कौन लेगा अजब लीला दिखलाई है कि जिस वेद परिपाटी की स्वामी दयानन्द रात दिन प्रशंसा करते रहे हैं आज उसी वेद परिपाटी को वही स्वामी दयानन्दजी घृणा की दृष्टि से

देखते हैं । फिर स्वामी दयानन्दजी ने भूमिका पर "सच्चिदानन्देश्वराय नमः" से मंगलाचरण किया है यह कौन परिपाटी है यह परिपाटी तो एक अद्भुत परिपाटी है जो वेद ऋषि तान्त्रिक तीनों परिपाटियों से भिन्न है ऐसा मंगलाचरण न तो वेद ने किया और न किसी ऋषि ने किया और न तान्त्रिक लोगों ने किया यह सब से भिन्न है अब इस परिपाटी का नाम क्या दयानन्दी परिपाटी रक्खें या कि समाजी परिपाटी कृपाकर कोई समाजी इस परिपाटी का नामकरणसंस्कार अवश्य करदें नहीं तो साधारण मनुष्य इस परिपाटी को 'नामालूमी" परिपाटी कहने लगेंगे जिस परिपाटी के लिये यह लेख लिखा जा रहा है यह दयानन्दी परिपाटी नं० १ है इसके ऊपर इतनाही लेख तोषदायक समझ कर दयानन्दी परिपाटी नम्बर २ का भी कुछ हाल लिखताहूँ सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ में "शन्नोमित्रः शंवरुणः" मंत्र से मंगलाचरण किया यह परिपाटी नम्बर २ है दूसरे पुरुष के बनाये वाक्य से मंगलाचरण करना यह भेद ऋषि तान्त्रिक दयानन्दी नम्बर १ चारों परिपाटियों से भिन्न है न तो ऐसा मंगलाचरण वेद ने किया और न किसी ऋषिही ने किया और सत्यार्थप्रकाश की भूमिका पर स्वतः स्वामी दयानन्दजी ने भी ऐसा नहीं किया अतएव यह चारों से विलक्षण है इससे इसका नाम दयानन्दी परिपाटी नम्बर २ समझो बस दयानन्दी परिपाटी नम्बर २ का लेख समाप्त होता है अब दयानन्दी परिपाटी नम्बर ३ पर भी कुछ अक्षर लिखताहूँ स्वामी दयानन्दजी ने अपने बनाये यजुर्वेद के भाष्य में प्रत्येक अध्याय के आदि में "विश्वानि देव" इस मंत्र से मंगलाचरण किया यह मंगलाचरण वेद ऋषि दयानन्द नम्बर १ तथा दयानन्द नम्बर २ इन चारों परिपाटियों से भिन्न है न तो अध्याय २ पर कहीं वेदने ही मंगलाचरण किया और न किसी ऋषि ने और स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के किसी समुल्लास में ऐसा नहीं किया अतएव यह परिपाटी सबसे पृथक् (भिन्न) है और इस मंगलाचरण का नाम दयानन्दी मंगलाचरण नम्बर ३ है अथवा दयानन्दी परिपाटी तृतीय है और इन परिपाटियों की गणना ही कौन करे यदि केवल स्वामी दयानन्द की परिपाटियों की गणना ठीक २ रीति से की जावे तो पांच सात परिपाटी तो स्वामी दयानन्द के ही लेख में निकलेंगी जिनमें से तीन परिपाटी मैं दिखला चुका और आप निकाल लें ।

पाठकवर्ग ! अब आप अच्छीरीति से समझगये होंगे कि स्वामी दयानन्दजी का मङ्गलाचरण न तो वेद परिपाटी में है और न ऋषिपरिपाटी में खुद भी कई परिपाटी कर गये इतने पर भी ऋषि परिपाटी की डींग मारना संसार को निर्णय से कोसों ले जाना नहीं तो और क्या है वास्तविक में स्वामी दयानन्द मङ्गलाचरण का खण्डन कर गये और आपही मङ्गलाचरण कर गये इन दोनों लेखों में एक दूसरे का खण्डन करता है परस्पर में विरोध रखता है इस विरोध के मिटाने के लिये स्वामी दयानन्द ने परिपाटी बनाई किन्तु वे ऐसी परिपाटी बनों कि जिनकी संख्या दिनोंदिन उन्नति करती गई और स्वामी दयानन्द सब परिपाटियों से बाहर भाग गये स्वामी दयानन्द का किसी परिपाटी पर स्थिर न रहना साबित करता है कि दयानन्द का यह लेख केवल लेखद्वय के विरोध मिटाने के लिये है वास्तविक में परिपाटीभेद है ही नहीं मङ्गलाचरण तीन प्रकार का होता है प्रथम आशीर्वादात्मक द्वितीय नमस्कारात्मक तृतीय शब्द निर्देशात्मक इन तीन मङ्गलाचरणों में से किसी से मङ्गलाचरण करें कोई भी दोष नहीं और ऋषि परिपाटी तथा तान्त्रिक परिपाटी में जरामी भेद नहीं इस को आप इस प्रकार समझ सकते हैं कि वेदव्यासजी ने ब्रह्मसूत्र (वेदान्तदर्शन) के आरम्भ में "अथातोब्रह्मजिज्ञासा" इस सूत्र से वस्तु निर्देशात्मक मङ्गलाचरण किया जिस व्यासजी ने ब्रह्मसूत्र के आरम्भ में वस्तु निर्देशात्मक मङ्गलाचरण किया उन्हीं व्यासजी ने योगशास्त्र के भाष्य करते समय तथा महाभारत के आरम्भ में नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण किया बस जिस नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण को स्वामी दयानन्द तांत्रिक बतलाते थे उसको तो ऋषि भी लेते हैं जब कि इस विषय में ऋषि और तान्त्रिक एक हैं तब भेद बतलाना संसार को धोके में डालना नहीं तो और क्या है।

अब इसके आगे की कथा सुनिये दयानन्दजी सत्यार्थप्रकाश में लिख आये हैं कि जो आदि मध्य अन्त [illegible] करता है उस के ग्रन्थ में आदि मध्य अन्त को छोड़कर शेष अमंगलही अमंगल रहता है इस पर पण्डित ज्वालाप्रसादजी ने यह लिखा कि आपके बनाये सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों में भी आपके किये आदि मध्य अन्त्यके मंगलाचरणको छोड़कर शेष अमंगलही अमंगल होगा और वास्तविक में यह कानून स्वामी दयानन्द ने मनुष्य मात्र के लिये ही

बनाया है इसमें कहीं यह तो लिखा नहीं कि समाजियों के लेख को छोड़कर या दयानन्द के लेख से भिन्न लेख में अमंगल रहता है अब इस कानून में आपभी घिरगये तब तो सत्यार्थप्रकाशादि के आदि मध्य अन्त्य को छोड़ कर शेष अमंगलही रहा कृपाकर इस अमंगल को निकाल डालें इससे हानि होगी पं० तुलसीराम इसका निकालना स्वीकार नहीं करते किन्तु यह प्रमाण देते हैं बीच बीच में भी सर्वत्र असत्य खण्डन सत्य मंडनरूप मंगलाचरण ही है यह तुलसीरामी परिपाटी और निकली असत्य खण्डन और सत्यमडन को मंगलाचरण मानना वेदस्मृति पुराण आदि ग्रन्थों के कर्त्ता तथा स्वामी दयानन्द से विद्वान् होना है असत्य खण्डन सत्यमडन को मंगलाचरण न तो वेद ने माना और न स्मृतियों ने और न पुराणों ने और न स्वामी दयानन्द ने ही माना है यह कौन परिपाटी है हार कर कहना पड़ेगा कि यह तुलसीरामी परिपाटी है अब यदि कोई मनुष्य वेद ऋषि तांत्रिक और स्वामी दयानन्द की परिपाटी से आरम्भ में मङ्गलाचरण न करे और इन परिपाटियों को छोड़ कर तुलसीरामी परिपाटी से मङ्गलाचरण करदे तो कोई दोष तो नहीं क्या दोष है कुछ नहीं केवल इतनाही दोष है कि आर्यसमाज में और नास्तिकों में कुछ भेद नहीं रहेगा दोनों एक हो सिद्धान्त माननेवाले हो जावेंगे तुलसीरामजी ने एक अद्भुत परिपाटी निकाली कि जिससे सब प्रकार के मंगलाचरणों का स्वाहा होगया मुझे बार २ यही विचार उठता है कि समाजी लोग यह क्या करते हैं जो लेख लिखते समय कुछ भी विचार नहीं करते और जो [illegible] लिख देते हैं क्यों न हो जो गुरु करे वही तो चेला करेगा स्वामी दयानन्द ने जिस प्रकार के लेख लिखे पं० तुलसीराम भी तो उसी सड़क पर चलेंगे अब मैं सूर्योदय से सूर्यास्त तक के समाजियों से प्रार्थना करता हूँ कि पं० तुलसीराम के कहे मंगलाचरण में प्रमाण दें कि असत्य खण्डन और सत्य मण्डन को मंगलाचरण अमुक पुस्तक में लिखा है क्या इसका उत्तर समाज दें सकती है अजी साहब उत्तर देना तो और बात है समाज तो हाथ में लेखनी भी नहीं उठा सकती क्या किसी ग्रन्थ में लिखा है जो समाज उत्तर दे दे यदि इसको कोई भी ग्रन्थ का लेख सिद्ध नहीं कर सकता तो फिर मनगढ़ंत लेख लिखना क्या सभ्यता का उच्च पद देता है जब कि इसको कोई भी ग्रन्थ नहीं मानता तो फिर समाज ने क्यों माना जो जी में आया उसी को मान लिया क्या इसी का नाम [illegible] है । पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने यह

लिखा है कि सत्यार्थप्रकाश में अपने पूर्वजों को गालीगलोज दी है बेशक स्वामी दयानन्द के लेखानुसार यह बीच २ में अमंगलही है पं० तुलसीरामजी इसको भी मंगलाचरणही बतलाते हैं पं० [illegible] कहते हैं कि पोपादि शब्द कहके साधारण मनुष्यों को धोके से बचाया यह भी मंगलाचरणही है अजी जनाब पोपादि शब्द ही नहीं कहे किन्तु स्वामी दयानन्दजी ने तो यह लिखा है कि गुरु महात्म्य और गुरुगीता इन्हीं कुकर्मी लोगों ने बनाई है इसके अलावा एकादशीव्रत चलानेवाले को कसाई लिखा है इत्यादि अनेक कटु शब्द लिखे हैं जिनको आप छिपाते हैं क्या गालियां देना ही धोके से बचाना होता है यदि आप शुभ को मंगलाचरण मानते हैं तो हम जोर देकर कह सकते हैं कि बेशक यह अशुद्ध लेख पं० तुलसीरामजी के मंतव्यानुसार अमंगलाचरण है और यह मंगल एक परिपाटी पं० तुलसीराम ने समाजियों को और बतादी कि जहा दूसरों को दो चार गाली सुनाई कि समाजियोंका मंगलाचरण होगया जिसके मतमें गालियां भी मंगलाचरण हैं उस मत का कौन ठिकाना।

पं० ज्वालाप्रसादजी ने लिखा था कि क्या परमेश्वर को कुछ नाम प्रिय हैं और कुछ अप्रिय जो ओ३म् नामसे मंगलाचरण करें तो प्रसन्न और "नारायणायनमः" इत्यादि करे तो रुष्ट हों इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि बेशक ये नाम तो ईश्वर के हैं किन्तु इन नामों से पूर्वज विशेष और वेद विरुद्ध अवतारों का ग्रहण होने लगा इस कारण से मंगलाचरण इन नामों से रोका है ये नारायणादि पूर्वज विशेष थे इन में कुछ प्रमाण नहीं केवल यही प्रमाण है कि पं० तुलसीरामजी ने लिखदिया तुलसीराम का प्रमाण कौन मानेगा अजी कोई नहीं मानेगा तो समाज तो मानेगी जहां २ वेद और मनु आदि में नारायणादि का वर्णन है वहां २ पर इनको ईश्वर का शरीर बतलाया है और जहां कहीं पुराणों में वर्णन आया वहांपरभी इनको [illegible] ही बतलाया फिर समाज सबको छोड़कर केवल तुलसीरामके ही प्रमाण को स्वतः प्रमाण कैसे मानेगी क्या पं० तुलसीराम जी वेदकर्त्ता ईश्वर से भी बढ़गये यदि ऐसा है तो फिर इनको ईश्वर के ईश्वर की उपाधि मिलनी चाहिये पं० तुलसीराम चाहे जो लिखें किन्तु इनके अवतार होने का खण्डन करना उतना कठिन है कि जितना सूर्यका उदय पश्चिम में करदेना पं० तुलसीराम की प्रसन्नता के लिये यदि हम ऐसा भी मानलें कि वे पूर्वजही थे ईश्वर के नाम यदि दूसरी जगह चले जावें

तो क्या वे इतने अशुद्ध होजाते हैं कि उनका ग्रहण करनाही छोड़दिया जावे यदि ऐसाही है तब तो स्वामी दयानन्द ने भूल करी जो इन नामों को सत्यार्थ-प्रकाश में लिखा यदि कहो कि धोका न हो इस कारण से निषेध किया है इसके ऊपर हमारा यह प्रश्न हैं कि यदि कोई नीच कौम का मनुष्य अपने लड़के का नाम तुलसीराम रखले तो क्या धोका मिटाने के लिये आप अपना नाम छोड़देंगे यदि ऐसाही है तो आपने आर्य शब्द क्यों नहीं छोड़ा क्योंकि इसमें भी तो घोड़े की पिछाड़ी का धोका होता है जिसके स्थान में धोका होता है उन सबही को छोड़दोगे या केवल ईश्वर के नामों कोही छोड़ोगे इसका कुछ भी उत्तर है ।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि राम कृष्णादि नाम भले ही व्याकरण की खैंचा-तानी से सिद्ध होजावें किन्तु वेद में इन नामों से काम नहीं है समाजियों में एक यह अद्भुत बात पाईजाती है कि अपनी बुद्धिके सन्मुख दूसरे की बुद्धि की कुछ गणनाही नहीं बस यही हाल पं० तुलसीराम ने यहांपर किया है जो अपनी बुद्धि के सन्मुख स्वामी दयानन्द के लेख पर पानी फेरदिया हम तुलसीरामजी से पूंछते हैं कि स्वामी दयानन्द ने जो प्रथम समुल्लास में "रामः" शब्द व्याकरण से सिद्ध करके दिखलाया है क्या सचही स्वामीदयानन्दने इसमें खैंचा-तानीकी है यदि ऐसा है तो इसको सत्यार्थप्रकाश से निकाल क्यों नहीं देते और जब स्वामी [illegible] इसको सत्यार्थप्रकाश में लिखा तो क्या स्वामीजी ने कुरानशरीफ में ग्रहण होने के लिये लिखा इस स्थान में हम इतनाही कहेंगे कि यातो गुरूही भूलगया या चेला ही भूलता है जो दोनों के लेख में विरोध आया पण्डित तुलसीरामजी भी अजब सभ्य हैं कि जिनको ईश्वर का नाम "राम" अशुद्ध जान पड़ता है और पृथिवी राहु केतु शनिश्चर आदि ईश्वर के नाम सिद्ध प्रतीत होते हैं ।

पं० तुलसीराम ने कृष्ण नाम पर लिखा है कि मिश्र जी तो उसको व्याकरण सिद्ध करके नहीं बतलाते और क्यों साहब "कृषिर्भूवाचकः" आदि जो मिश्रजी ने कारका दी उसका आपने क्या उत्तर दिया जरा कोई बतलावे तो क्या उत्तर है ।

जिसका वादि उत्तर नहीं देता वह मान्य समझा जाता है जब आपने कारका मानली तब व्याकरण लिखें या न लिखें और यदि कहो कि नहीं मानी

तो फिर उसका खंडन क्यों नहीं लिखा और यदि आप व्याकरण से मानलें तो व्याकरण हम देते हैं "कर्षतिभक्तानिति कृष्णः" ईश्वर भक्तों को पापों से खैंच कर मोक्ष को पहुँचाता है इससे ईश्वर का नाम कृष्ण है।

मिश्रजी ने यह लिखा था कि स्वामी दयानन्द विष्णुसहस्रनाम आदि से ईश्वर के नाम ले लेने यह सौ नाम लिखकर नई चाल दिखलाई है इसके ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि बस रहने दीजिये उनमें तो ईश्वर का नाम "चोर जार शिखामणिः" भी है पं० तुलसीरामजी के लेख पर हँसी आती है बधा तुलसीराम को यह मालूम नहीं कि आर्याभिविनय में "मानोवधीरिन्द्रमा' मंत्र ४९ के अर्थ में स्वामी दयानन्दजी ने लिखा है कि हे ईश्वर हमारे भोगों को न तो तू चोर और न और से चुरवा स्वामीजी के इस लेख से मालूम होता है कि ईश्व— — — — — चोरी नहीं करता बल्कि एक शिरोह और भी साथ में ऐसा रखता है कि जब ईश्वर को समय न मिले तो उससे कार्य करवा लेता है जब कि आर्यसमाज के मत में ईश्वर रोटी दाल कपड़े तक नहीं छोड़ता जब कि इस ईश्वर के मारे आर्यसमाज के नाक में दम आगया है जब कि ईश्वर को आर्यसमाज के जन्मदाता दयानन्द ही चोर बतलाते हैं जब कि आर्यसमाजही ईश्वर को चोर मानती है फिर यदि कोई दूसरा मनुष्य ईश्वर को चोर मानले तो उस पर कटाक्ष कैसा यदि आप कहें कि नहीं वह तो केवल प्रार्थना है हमारे भोगों को मत चुरा यह प्रार्थना उसी दशा में हो सकती है जब कि वह चोरी करता है और जो चोरी नहीं करता उस से यह प्रार्थना कभी हो नहीं सकती कि तू हमारी चोरी न करना यदि तुलसीराम यह कहें कि हम भी तो ईश्वर को चोर मानते हो फिर स्वामी दयानन्द के इस लेख पर कटाक्ष क्यों करते हो इसके ऊपर हमारा यह उत्तर है निःसन्देह हम ईश्वर को चोर मानते हैं किन्तु हम उसको ऐसा चोर नहीं मानते कि वह हमारे भोग के पदार्थही चुरा लेजाता है किन्तु हम उसको जैसा चोर मानते हैं उसको भी देखिये—

अकिंचनीकृत्यपदाश्रितंयः
करोतिभिक्षुंपथिगेहहीनम्।

केनाऽप्यहोभीषणचौरईदृग्
दृष्टःश्रुतो वा नयमाकदापि ॥ १ ॥

अर्थ जो मनुष्य संसारसुख पर लात मार संसारी भोगों को शत्रु समझ परमात्मा के चरणारविन्द में जाकर गिरता है परमात्मा उसको घरहीन मार्ग का भिखारी बनादेत है यह एक भयंकर चोर है ऐसा चोर न तो हमने कभी आज तक देखा और न सुना ।

कहिये हमारे यहां तो संसारी विषय को छुड़ाने का चोरही ईश्वर को माना है न कि रोटी ओर दाल की हँडिया का चोर और इस बात को संसार के समस्तधर्म स्वीकार करते हैं कि जब तक ईश्वर मनुष्य के कर्मों को न चुरालें तब तक मोक्षही नहीं होती इसी को हमारे ग्रन्थों में कहा है कि "अनेकजन्मार्जितपापचौरं चौराग्रगण्यंपुरुषंनमामि" यह चोरी इल्जाम नहीं चोरी नहीं किन्तु भक्त के पाप के नाश को चोरी की उपमा दी है यदि यह भाव पं० तुलसीराम के हृदय में होता तब तो इस पर लेखनीही न उठाते अस्तु हम यह सिद्ध करचुके कि ईश्वर संसारी पदार्थों का चुरानेवाला सनातनधर्म नहीं मानता किन्तु आर्यसमाज मानती है। अब आगे पं० तुलसीराम लिखते हैं स्वामी तुम्हारे घरका सब भेद जानते हैं इसको खुलवा कर दूसरों से हँसी न कराइये इसके ऊपर हमारा उत्तर यह है कि स्वामी दयानन्द हमारे घरका ही हाल तो नहीं जानते इसी का तो हमको शोक है यदि स्वामी दयानन्द वेदों को जानते तो क्या 'अवतार" 'मूर्तिपूजा" मृतकपितरों के श्राद्ध आदि वैदिक विषयों का खंडन कर सकते थे जो विषय वेदों में ठसाठस भरे पड़े हैं क्या स्वामी दयानन्द स्मृति जानते थे यदि स्मृतियों को जानते होते तो क्या "साचे-त्क्षतयोनिः" आदि श्लोकों के अंडबंड अर्थ करके बिधवाविवाहका रेजूलेशन पास करसकते जिसका निषेध मनुके बीसियों श्लोक कहरहे हैं मनुका पंचमअध्याय देखिये क्या स्वामी दयानन्द दर्शन भी जानते थे कोई भी दर्शन वाला जीव का मोक्ष से लौटना मानता है क्या स्वामीजी अंग भी जानते थे क्या उन्हों ने व्याकरण के जोर से ही वेदभाष्य में नर (बकरे) के घी, दूध की आज्ञा दी है क्या स्वामीजी इतिहास जानते थे कोईभी इतिहास जानने वाला वाल्मीकीय

रामायण और महाभारत को ईश्वर प्रणीत कह सकता है जिसको दयानन्द ने शोलापूर के विज्ञापन में छपवाया है क्या स्वामीजी पुराण जानते थे क्या पुराण जान करही "रथेनवायुवेगेन जगामगोकुलंप्रति" लिखा है जिसको समाज ने अशुद्ध समझ टुकड़े किये किन्तु अबभी अशुद्धही रहा यदि इसीको विस्तार से लिखाजावे तो एक पुस्तक टाड राजस्थान के बराबर बनकर तैयार हो किन्तु माननेवाले को इतनाही बहुत है और दूसरे हँसे क्या आपने सनातनधर्म की पुस्तकों को स्वामी दयानन्द का लेख समझा है यह बात तो स्वामी दयानन्द के ही लेख में है जरा पेशावर का फैसला पढ़िये पढ़तेंही मालूम होजावेगा कि सत्यार्थप्रकाश धार्मिक पुस्तक नहीं किन्तु व्यभिचार फैलानेवाली पुस्तक है दूसरे स्वामी दयानन्द [illegible] का वेद नहीं मानते थे इस पर राजा शिव-प्रसाद सितारेहिन्द से लेखक शास्त्रार्थ चला जिसमें बराबर राजासाहब की ओर से सभ्यता परिपूर्ण पंडिताई से भरे दिव्य लेख जातेथे और स्वामीजी की ओर से बिल्कुल बैठकबाजी के गालीभरे युक्ति और पण्डिताई की चर्चा से रहित लेख जाते थे इस विषय को क्रमशः जिसे पढ़ना हो वह राजासाहब का छपवाया निवेदन नामक ग्रन्थ मँगवाले निःसन्देह राजा शिवप्रसाद साहब के आगे दया-नन्दजी को अवाक् होना पड़ा था और ब्राह्मणभाग के वेद न मानने से हमारे देशीही क्या फ्रांस अमेरिका इङ्गलैण्ड आदि के निवासी विमतावलम्बी विद्वान् भी इनको डफोलशंख समझते थे राजासाहब ने दूसरे निवेदन के पृ० ४ पं० ६ में लिखा है "फिरंगिस्तान के विद्वज्जनमण्डलीभूषण काशिराज स्थापित पाठशाला-ध्यक्ष डाक्टर टीवो साहब [illegible] बहुत अवरज में आये और कहनेलगे कि हम तो स्वामीजी महाराज को बड़ा पण्डित जानतेथे पर अब उनके मनुष्य होनेमें भी सन्देह होता है" राजासाहब ने अपने ग्रन्थ पर टीवो साहबकी एक चिट्ठी भी छापी है ।

*वह चिट्ठी यह है :—" The question at issue between Raja Sivaprasad and Dayanand is the authoritativeness of the several parts of what is cammonly comprised under the name "Veda." Dayanand Sarasvati rejects the Brahmans and Upnishads (with one exception) and acknowledges the authority of the Sanhitas only. As this procedure is not

in agreement with the religious belief of the Hindus of the present day as well as of past ages of which we have records, Dayanand Sarasvati is bound to produce convicting proofs for the validity of the distinction he makes. He mentions that the Sanhitas are "ईश्वरोक्त," while the Brahmans and Upnishads are nearly "जीवोक्त" but how does he prove this assertion? (For as it stands it cannot be called anything but a mere assertion.) The assertion of Sanhitas being स्वतः प्रमाण while the Brahmans and Upnishads are merley परतः प्रमाण can likewise not be admitted before it is supported by arguments stronger than those which Dayanand Sarasvati has brought forward up to the present. Raja Sivaprasad is right to ask "why should not both the स्वतः प्रमाण if one is so ?" or again "why should not both be परतः प्रमाण if one is so?" And this reasoning could certainly not be employed by any one for proving that other non-vedic books are to be considered equal to the Veda; for the Veda alone (including Brahmans and Upnishads) enjoys the privilege of having since immemorial times been acknowledged by Hindus as sacred and revealed books.

With regard to the passage quoted by Dayanand Sarasvati from the Satapatha Brahmana (Brihadaranyak Upnishad) it must be admitted that the objection of Raja Sivaprasad is well founded; if one part of the passage is authoritative, the other part is so likewise. The assertation whether the whole passage is a वाक्य or a वाक्य समूह is wholly irrelevant to the point at issue.

Dayanand Sarasvati has certainly no right to declare the passage from Katyayana according to which the Veda consists of Mantra and Brahmana an interpolation. Acting in this way any body might declare any passage contrary to this preconceived opinions an interpolation.

Dayanand Sarasvati rejects the authority of the Brahmans. How then does he prepare to deal with Brahmana portions of the Taittiriya Sanhita, which in character nowise differ from other Brahmans like the Satapatha, Panchavinsa, &c., and on the other hand does he reject all the mantras contained in the Taittiriya Brahmana?

G. THIBAUT.

घृणित लेख तो स्वामी दयानन्दने ही लिखने आरम्भ किये हैं हिन्दुओं के ग्रन्थ तो वे ग्रन्थ हैं कि जिन [illegible] नहीं करते किन्तु मुक्तकण्ठ होकर उनकी प्रशंसा करते हैं आर्यसमाज के ही उर्दू अखबार लाहौर में ऐसे कितने ही लेख निकल चुके जिनमें यह दिखलाया गया है कि अमुक पादरी लिखता है कि मनुष्य को सच्चरित्र बनने के लिये यदि संसार में कोई पुस्तक है तो वाल्मीकीय रामायण या महाभारत है जिन ग्रन्थों की दूसरे मनुष्य प्रशंसा करते हैं उनपर हँसी करना यह लेख कितना सार रखता है और इस लेख के माननेवाले आर्य-समाजियों में कितनी विचारबुद्धि है इसका निर्णय पबलिक पर छोड़ता हूँ।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि हम और स्वामी यदि आपकी भांति करें तो वही हालत हो जैसे "स्वर्ग में सब्जेक्ट कुमेटी" स्वर्ग में सब्जेक्ट कुमेटी बनाकर क्या बहादुरी की वेद में लिखे अवतारों को नीचा दिखलाते हुये वेदों से घृणा कराई वेदों से घृणा कराना यह बहादुरी है या भूल इसको आप विचारलें यदि कहो कि वेद में तो अवतार ही नहीं वेद में अवतार नहीं इस बात को तो वही मानेगा जिसने कभी वेद न देखा हो "स्वर्गमें सब्जेक्ट कुमेटी" में वाराह अवतार पर दिल्लगी की है वाराह अवतार मिश्र जी ने वेद के मन्त्रों में दिखलाकर तिमिरभास्कर में लिखा है जिसका उत्तर आपने भास्करप्रकाश में आजतक नहीं दिया और न किसी दूसरेही समाजी ने दिया है वाराह अवतार वेद से सिद्ध है वाराह अवतारवाले मन्त्रका अर्थ आजतक नहीं बदलसका जब वाराह अवतार वेद में है तब वेद में अवतार नहीं इतना कह देने से काम नहीं चलता फिर "सब्जेक्ट कुमेटी" में वाराह दिव्य अवतार के भोजन की कल्पना वेद पुराण दोनों के विरुद्ध की गई है फिर क्या सचही स्वर्ग में अवतारों की सभा लगी थी [illegible] अवतारों की सभा लगना भी किसी

ग्रन्थ में लिखा है किसी में भी नहीं जैसे आर्यसमाज की तरफ से "स्वर्ग में सब्जेक्ट कमेटी" मनगढन्त लिखीगई है इसका उत्तर वैसाही किसी सनातन धर्मी की तरफ से "अन्तरिक्ष में निराकार का दर्बार" भी लिखागया है अब इन धमकियों से काम नहीं चलेगा ठीक २ लिखकर उत्तर दीजिये जिसको पढ़ कर तोष हो ऐसा उत्तर शास्त्र से अनभिज्ञ पुरुष भी दे सकता है।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी पं० ज्वालाप्रसादजी से कहते हैं कि "अथ" वा "ओ३म्" शब्द वेद के विरुद्ध सिद्ध करें पं० ज्वालाप्रसादजी पीछे दिखला चुके हैं कि चारों वेदों में "ओ३म्" "अथ" आदि से मंगलाचरण नहीं किया अतएव "ओ३म्" "अथ" आदि से मंगलाचरण करना वेद विरुद्ध है अब इसमें सिद्ध क्या किया जावे इसका भी तो पता लगे हां यहां पर पं० तुलसीराम को यह सिद्ध करना था कि अमुक वेदसंहिता में "ओ३म्" या "अथ" आदि से मंगलाचरण [illegible] सिद्ध करना काम पं० तुलसीराम का था सो यह तो पं० तुलसीराम या और कोई आर्यसमाजी त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं करसकता कि किसी वेद में "ओ३म्" या "अथ" से मंगलाचरण किया हो जब ऐसा कहीं मिलता ही नहीं तब फिर पं० तुलसीराम उत्तर ही क्या देंगे हार कर यही लिख दिया कि पं० ज्वालाप्रसाद सिद्ध करें कि "ओ३म्" "अथ" आदि से मंगलाचरण करना वेदविरुद्ध है फिर पं० तुलसीरामजी "ओ३म् खम्ब्रह्म" यजु० अ० ४० का यह मन्त्र भी लिखते हैं यहां पर पूछना यह है कि जब पं० ज्वालाप्रसादजी ने सिद्धही नहीं किया तो फिर आपने "ओ३म् खम्ब्रह्म" उत्तर क्यों लिखा आपका उत्तर लिखनाही सिद्ध करता है कि पं० ज्वालाप्रसाद सिद्ध कर चुके जब पं० ज्वालाप्रसाद सिद्ध कर चुके और पं० तुलसीराम उसका उत्तर देचुके फिरभी यह कहना कि तुम सिद्ध करो यह क्या बात है इस गूढ़ अभिप्राय को साफ़ क्यों न करदिया जावे ताकि पाठक समझलें। यदि आप यह कहें कि जब पं० ज्वालाप्रसादजी सिद्ध कर चुके और पं० तुलसीरामजी उत्तर भी देचुके तब तो झगड़ा समाप्त ही होगया फिर आप इसको क्यों बढ़ा रहे हैं इसका उत्तर यह है कि पं० तुलसीराम ने उत्तर देने का साहस भी किया और "ओंखम्ब्रह्म" भी लिखा तथापि उत्तर नहीं हुआ पं० ज्वालाप्रसादजी का कथन तो यह है "ओ३म्" वा "अथ" शब्द से वेद ने

कहीं भी मंगलाचरण नहीं किया इसका उत्तर तो यह था पं० तुलसीराम दिखलाते कि यह प्रमाण है यहां पर वेद के आरम्भ में "ओ३म्" या "अथ" से मंगलाचरण किया यह तो कुछ दिखलाया नहीं केवल "ओखम्ब्रह्म" लिख दिया क्यों साहब यह "ओखम्ब्रह्म" कौन वेद के आरम्भ में है किसी के नहीं जब यह किसी के भी आरम्भ में मंगलाचरण के स्थान में नहीं फिर इसके लिखने से क्या प्रयोजन निकला समस्त वेदों को छोड़कर केवल यजुर्वेद ही दिखलाया फिर उसका भी न [illegible] और न द्वितीय कौन दिखलाया चालीसवां क्या चालीसवें अध्याय तक वेद में मंगलाचरण ही नहीं यदि ऐसा है तब तो मानना पड़ेगा कि वेद में मंगलाचरण ही नहीं है पं० तुलसीरामजी भी गुप्त २ मंगलाचरण का खण्डन कर रहे हैं यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि आरम्भ में न सही तो अन्त्य में सही प्रथम तो यह विचार करना होगा कि स्वामी दयानन्द ने "अथ" वा "ओ३म्" शब्द से मंगलाचरण कहां पर किया है कि जिस पर पं० ज्वालाप्रसाद जी आक्षेप करते हैं आरम्भ में या अन्त्य में "ॐसच्चिदानन्देश्वरायनमोनमः" यह तो भूमिका के आरम्भ में लिखा और "अथ सत्यार्थप्रकाशः" यह सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ में लिखा स्वामीदयानन्द ने अन्त्य में "अथ" वा "ओ३म्" से कहीं पर भी मंगलाचरण नहीं किया जब कि स्वामीदयानन्द समाप्ति में इन शब्दों से मंगलाचरण ही नहीं करते फिर पं० तुलसीराम का अन्त्य की तरफ खेंच लेजाना क्या कभी तोषदायक हो सकता है इसको छोड़कर यदि हम यह भी मानलें कि पं० तुलसीरामजी किसी भी वेद के आरम्भ में "अथ" या "ओ३म्" से मंगलाचरण नहीं दिखला सकते किन्तु अन्त्य में तो "ओ३म् खम्ब्रह्म" दिखलाते हैं पं० तुलसीराम ऐसा भी नहीं कर सकते "ओ३म्खम्ब्रह्म" इसके अन्त्य में न तो "ओ३म्" ही है और न अथही है किन्तु यहां पर तो अन्त्य में "ह्म" है जो कि "अथ" "ओ३म्" दोनों सेही भिन्न है यदि कहो कि पं० तुलसीरामजी ने वेदमंत्र में "ओ३म" तो दिखला दिया इसका उत्तर यह है कि पं० ज्वालाप्रसादजी का यह प्रश्नही नहीं कि वेद में सब अक्षर नहीं या वेद में थोड़े अक्षरों से काम चल जाता है या वेद में ओ३म् ही नहीं किन्तु उनका कथन तो यह है कि वेद में "ओ३म्" वा "अथ" शब्द से मंगलाचरण [illegible] समाज "ओ३म्" "अथ" से मंगलाचरण दिखलावें यदि नहीं है तो फिर स्वामी दयानन्द के "ओ३म्" "अथ" शब्द से

किये मंगलाचरण को वेदविरुद्ध समझ कर इसका खण्डन करें विरोध में या तो समाज वेदकी ही [illegible] वेदविरुद्ध "अथ" "ओ३म्" से मंगलाचरणकी ही परिपाटी को मानलें किन्तु परस्पर विरोधी दोनों परिपाटियों का मानना निर्णय नहीं कहा जासकता देखिये अब समाज किस परिपाटी को छोड़ती है और किसको मण्डन करती है।

—:o:—

ओंकार प्रकरणम्।

सत्यार्थप्रकाश पृ० १ पं० १०

(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इस में जो अ उ और म तीन अक्षर मिलकर एक (ओ३म्) समुदाय हुआ है इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आजाते हैं जैसे अकार से विराट् अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ वायु और तेजसादि। मकारसे ईश्वर आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है उसका ऐसाही वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है।

तिमिरभास्कर पृ० ७ पं० २६

स्वामीजी की वेदज्ञता तो इस ओंकार के अर्थ निरूपणसे ही सज्जन पुरुष जानलेंगे कि प्रथम ग्रास में ही मक्षिकापात हुआ अब देखना चाहिये कि प्रणव की व्याख्या अनन्तप्रकार से वेदादि शास्त्रों में प्रसिद्ध है परन्तु स्वामी ने अपने अर्थ की पुष्टि में एक भी प्रमाण नहीं लिखा भला वह कौनसा मन्त्र है जिसमें स्वामीजी के लिखे उक्त अर्थ लिखे हैं ओंकारके ऐसे अर्थ का प्रतिपादक मंत्र न ब्राह्मण न शास्त्र न पुराण में एक भी नहीं मिलने का ऋग्वेद में इस प्रकार कथन है "ऋचोअक्षरेपरमेव्योमन्यस्मिन्देवाअधिविश्वे निषेदुः। यस्तन्नवेदकिमृचाकरिष्यति यइत्तद्विदुस्तइमे समासते॥ ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० ३६" इति विदुषउपदिशति कतमत्तदेतदक्षरमोमित्येषावागिति शाकपूणिर्ऋचोह्यक्षरे परमेव्यवनेधी-

किये मंगलाचरण को वेदविरुद्ध समझ कर इसका खण्डन करें विरोध में या तो समाज वेदकी ही [illegible] वेदविरुद्ध "अथ" "ओ३म्" से मंगलाचरणकी ही परिपाटी को मानलें किन्तु परस्पर विरोधी दोनों परिपाटियों का मानना निर्णय नहीं कहा जासकता देखिये अब समाज किस परिपाटी को छोड़ती है और किसको मण्डन करती है।

—:o:—

ओंकार प्रकरणम्।

सत्यार्थप्रकाश पृ० १ पं० १०

(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इस में जो अ उ और म तीन अक्षर मिलकर एक (ओ३म्) समुदाय हुआ है इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आजाते हैं जैसे अकार से विराट् अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ वायु और तेजसादि। मकारसे ईश्वर आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है उसका ऐसाही वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है।

तिमिरभास्कर पृ० ७ पं० २६

स्वामीजी की वेदज्ञता तो इस ओंकार के अर्थ निरूपणसे ही सज्जन पुरुष जानलेंगे कि प्रथम ग्रास में ही मक्षिकापात हुआ अब देखना चाहिये कि प्रणव की व्याख्या अनन्तप्रकार से वेदादि शास्त्रों में प्रसिद्ध है परन्तु स्वामी न अपने अर्थ की पुष्टि में एक भी प्रमाण नहीं लिखा भला वह कौनसा मन्त्र है जिसमें स्वामीजी के लिखे उक्त अर्थ लिखे हैं ओंकारके ऐसे अर्थ का प्रतिपादक मंत्र न ब्राह्मण न शास्त्र न पुराण में एक भी नहीं मिलने का ऋग्वेद में इस प्रकार कथन है "ऋचोअक्षरेपरमेव्यो मन्यस्मिन्देवाअधिविश्वे निषेदुः। यस्तन्नवेदकिमृचाकरिष्यति यइत्तद्विदुस्तइमे समासते॥ ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० ३६" इति विदुषउपदिशति कतमत्तदे-तदक्षरमोमित्येषावागिति शाकपूणिर्ऋचोह्यक्षरे परमेव्यवनेधी-

यन्ते नानादैवतेषुच मन्त्रेष्वेतद्वावएतदक्षरं यत्सर्वात्रयीविद्यां प्रतिप्रतीति च ब्राह्मणम् निरुक्त अ० १३ पा० १ खं० १० परिशिष्टे प्र० भाष्यम् कतमततदक्षरम् इति ओ३म् इत्येषा वाक इति शाकपूर्णेः अभिप्रायः ओंकारमृतेनह्यर्चयन्ति तस्याअक्षरे परमे व्योमन् व्योम विविधमस्मिञ्छब्दजातमोतमिति व्योमतस्मिन् तिस्टषु मात्रासु अकाराकारमकारलक्षणासूपशान्तासु यदव शिष्यते तदक्षरं परमं व्योम शब्द सामान्यमभिव्यक्तमित्यभिप्रायः ॥ यस्मिन्देवा अधिनिषण्णाः सर्वे ऋगादिषु ये देवाः ते मंत्रद्वारेणाक्षरे निषण्णाः तस्यशब्दकारणत्वात् अथवाप्रथमायां मात्रायां पृथिवीः अग्निः ऋग्वेदः पृथिवी लोक निवासिन इत्येवं द्वितीयायां मात्रायां अन्तरिक्षम् वायुः यजूँसि तल्लोकनिवासिनोजना इति तृतीयायां मात्रायां द्यौः आदित्यः सामानि तल्लोक निवासिनोजनाइति विज्ञायतेहि ओंकार एवेदं सर्वम् इति यस्तन्नवेद अनयाविभूत्याक्षरम् किमसौ ऋचा ऋगादिभिर्मंत्रैः करिष्यति यस्तन्नाक्षरात्मनापश्यति। यइत्तद्विदुस्तइमे समासते इति विदुषजपदिशन्ति तांह तत्परिज्ञानात्ताद्भाव्यमुपगताःप्रणव विग्रहमात्मान मनुप्रविश्य क्षयीकृत्यनिर्वान्ति शान्तार्चिष इवानला इति "पद-ऋचः अक्षरे परमेव्योमन् यस्मिन् देवाः अधिविश्वे निषेदुः यः तत् न वेद किम् ऋचाकरिष्यति ये इततत् विदुः ते इमे समासते ॥ ऋ० ॥ (भावार्थ) इस मन्त्रका व्याख्यान ओंकारपरत्व तथा आदित्यपरत्व तथा आत्मतत्व परता में है तिसमें से प्रथम शाकपूणिनामक निरुक्तकारके मत से ओंकार परता निर्णय करते हैं (प्रश्न) जिस परमव्योमसंज्ञक अक्षर में देवादि स्थित हैं सो अक्षर कौन है (उत्तर) ॐ यह वाक् नाम शब्द परम उत्कृष्ट (व्योमन्) नाम सर्वकी रक्षा करनेवाला जो ॐकारहै तिसमेंही सम्पूर्ण ऋग्वेदादि मन्त्र अध्ययन किये जाते हैं और नाना जो देवता हैं वे सर्वमंत्रों में स्थित हैं और मंत्रों में कारण होने से यह अक्षर व्याप्त है क्योंकि सर्ववेदत्रयी विद्या के

प्रति यह अक्षर व्याप्त है ऐसे ब्राह्मण भी प्रतिपादन करता है भाव यह है ओंकार विना ऋगादि मंत्रों का उच्चारण नहीं होता इससे व्योमसंज्ञक जो अक्षर हैं तिसमें नानाविधि शब्द समूह स्थित हैं (प्रश्न) मंत्र तथा ओंकार शब्दरूप है इससे यह दोनों आकाश में स्थित हैं यावत् शब्दसमूह ओंकार में स्थित कैसे कहते हो (उत्तर) ओंकार नाम यहां अकारादि मात्रा के शान्त होते जो परिशेष रहता है शब्द सामान्य व्योमनामक अक्षर उसका है इससे तिस अक्षर शब्द सामान्य नादरूप ओंकार में यावत्मंत्र स्थित हैं और जिसमें सर्वदेवता स्थित हैं क्योंकि मंत्रों में [illegible] स्थित हैं और मंत्र पूर्वोक्त नादनामक अक्षर में स्थित हैं इससे मंत्र द्वारा सब देवता भी अक्षर में स्थित हैं अथवा प्रथम मात्रा में पृथ्वी लोक अग्नि ऋग्वेद और पृथ्वी लोक निवासीजन स्थित हैं और द्वितीय मात्रा में अन्तरिक्ष वायु यजुर्मंत्र औ अंतरिक्ष लोक निवासीजन स्थित हैं और तृतीयमात्रा में द्युलोक आदित्य सामंत्र और स्वर्ग लोक निवासीजन स्थित हैं इसी कारण मांडूक्य उपनिषद में (ओंकार एवेदं सर्वम्) यह कहा है जो इस विभूति सहित अक्षर को नहीं जानता सो ऋगादि मंत्रों से क्या करैगा अर्थात् विना ओंकार के जाने और उसके अर्थ जाने उसे वेद के मंत्र फल नहीं देंगे और जो पुरुष उक्तरूप नाद विभूति सहित अक्षर को जानते हैं वे पुरुष (समाप्नते) प्राणवज्ञान से अक्षरभाव को प्राप्त हुये अपने आत्मा को प्रणवरूप निश्चय करके प्रणव में प्रविष्ट होकर समता को प्राप्त हो शान्त ज्वाल अग्निवत् (निर्वान्ति नाम निर्वाणपदं मोक्षं प्राप्नुवन्ति) निर्वाण को प्राप्त होते हैं अर्थात् मुक्त होते हैं आदित्य पक्षमें यह अर्थ है कि जिस व्योमरूप परम अक्षररूप आदित्य में सब देवता स्थित हैं मंत्र द्वारा तिस आदित्य को जो नहीं जानते वे ऋगादि मंत्रों को क्या करेंगे वे इत् नाम एव तिस आदित्य को जानते हैं वे पुरुषही

विद्वज्जन भूमि में सुखपूर्वक रोगादि रहित भोग सम्पन्न चिरकाल जीवते हैं मांडूक्य उपनिषद में इस प्रकार लिखा है। "ॐमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव [illegible] त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव॥ मां० मं० १" (अर्थ) ओं इस प्रकार का यह अक्षर यह सर्व है ऐसे कहते हैं जो यह विषय रूप अर्थ का समूह है तिसको नाम से अभिन्न होने से और नाम को ओंकार से अभिन्न होने से ओंकारही यह सर्व है और जो परब्रह्म नाम के कथनरूप उपाय पूर्वकही जानने योग्य है सो ओंकारही है तिस इस पर और अपर ब्रह्मरूप ओं इस प्रकार के अक्षर का ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय होने से ब्रह्मके समीप होने से विस्पष्ट कथनरूप प्रसङ्ग विषे प्राप्त जो उपव्याख्यान है सो जानने के योग्य हैं उक्तन्याय से भूत भविष्यत और वर्त्तमान इन तीनों कालों से परिच्छेद करने को योग्य जो वस्तु है सो भी यह ओंकार [illegible] और अन्य जो तीन काल से भिन्न कार्यरूप लिङ्ग से जानने योग्य और काल से परिच्छेद करने को अयोग्य अव्याकृत आदिक है सो भी ओंकार ही है यहां नाम (वाचक) और नामी वाच्य की एकता के हुए भी नामकी प्रधानता से यह निर्देश किया है "सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोंकारोधिमात्रम् पादामात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति" जो वाच्य की प्रधानतावाला ॐकार चारों पादवाला आत्मा है ऐसा पूर्व व्याख्यान किया है यथा (सर्वं ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोयमात्मा चतुष्पात्) सर्व (कारण और कार्य) ही यह ब्रह्म है सर्व जो ॐकारमात्र है ऐसे श्रुति ने कहा है सो यह ब्रह्म है यह आत्मा ब्रह्म है सो यह ॐ [illegible] (वाच्य) और पर (अधिष्ठान) और अपर (प्रत्यगात्मा) रूप होने से स्थित हुआ आत्मा चार पादवाला है सो यह आत्मा अध्यक्ष है वाचक की प्रधानता से अक्षर को आश्रय करके वर्णन किया है इससे अध्यक्षर कहा है फिर वह अक्षर क्या है इस पर कहते हैं सो अक्षर ॐकार है सो यह

ॐकार (पाद) चरणों से विभाग को पाया हुआ अधिमात्र है जिस कारण मात्रा को आश्रय करके वर्त्तता है इससे अधिमात्र कहते हैं (प्रश्न) आत्माही पादों से विभाग को प्राप्त होता है और मात्रा को आश्रय करके ॐकार स्थित होता है इस कारण पाद से विभागको प्राप्तहुए ॐकार का अधिमात्रपना कैसे है उसपर कहते हैं आत्मा के जो पाद हैं वे ॐकार की मात्रा हैं और ओंकार की जो मात्रा हैं वे आत्मा के पाद हैं इससे पाद और मात्रा की एकता से यह कथन [illegible] कौनसी वे ॐकारकी मात्रा हैं उस पर कहते हैं अकार उकार मकार यह तीन ॐकार की मात्रा हैं "जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्वाद्वाऽऽप्नोतिहवै सर्वान् कामानादिश्चभवति य एवं वेद ॥ मांडूक्य" जो जागरित स्थानवाला वैश्वानर है सो ॐकारकी अकाररूप प्रथम मात्रा है किस तुल्यता से दोनों की एकता है इस पर कहते हैं व्याप्ति सेवा आदिवाले होने से जैसे अकार से सर्व प्राणी व्याप्तहैं तैसे वैश्वानर से जगत् व्याप्त है तिस प्रसिद्ध इस वैश्वानररूप आत्माका मस्तक ही स्वर्ग है इत्यादि श्रुतियों के वाक्य से वाच्य वाचककी एकता को हम कहते हैं जिसकी आदि है सो आदिवाला कहाता है तैसे ही [illegible] अकार नाम अक्षर है तैसे ही आदि वाला वैश्वानर है इस कारण तुल्यता होने से वैश्वानरको अकारपना है अब इनकी एकता के ज्ञाता को फल कहते हैं जो ऐसे उक्त प्रकार की वैश्वानर और अकार की एकताको जानता है सो निश्चय ही सब भोगों को पाता है और वही बड़े पुरुषों के बीच में प्रथम होता है "स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वा द्वोत्कर्षति हवै ज्ञान सन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ॥ मांडूक्य" जो स्वप्नस्थानवाला तैजस है सो ॐकारकी उकाररूप द्वितीय मात्रा है दोनों की एकता कैसे है सो कहते हैं उत्कर्ष से वा उभय (द्वितीय) रूप होने से जैसे अकार से उकार पाठके क्रमसे [illegible] है तैसे स्थूल उपाधिवाले विश्वसे

सूक्ष्म उपाधिवाला तैजस उत्कृष्ट है तिस उत्कर्षसे इनकी एकता है वा जैसे अकार और मकार के मध्य विषे स्थित उकार है तैसे विश्व और प्राज्ञ के मध्य में तैजस है इससे तिनकी उभयरूपता की तुल्यता एकता है अब तिनकी एकता के ज्ञाता को जो फल होता है सो कहते हैं जो ऐसे जानता है सो ज्ञानकी सन्तति को बढ़ाता है और तुल्य होता है मित्र के पक्ष की नाईं शत्रु के पक्ष के मध्य भी द्वेष करने को अयोग्य होता है और इसके कुलमें अब्रह्मवेत्ता नहीं होते हैं "सुषुप्तस्थानः प्राज्ञोमकारस्तृतीयामात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोतिहवाइदꣳ सर्व्वमप्रीतिश्चभवति य एवंवेद मांडूक्य" ॥ जो सुषुप्ति स्थानवाला प्राज्ञ है सो ॐकार की मकाररूप तृतीय मात्रा है इस तुल्यता से दोनों की एकता है उनमें कहते हैं कि परिमाण से वा एकता से यहां दोनों की समानता है प्रस्थ (धान्य परिमाण के पात्र) से यव धान्य के परिमाण (माप) की नाईं जैसे लय और उत्पत्ति में प्रवेश और निकलने में प्राज्ञ से विश्व और तैजस परिमाण किये की नाईं होते हैं तैसे अकार और उकार यह दोनों अक्षर ॐकार की समाप्ति में और फिर उच्चारण विषे मकार में प्रवेश करके निकलते हुए की समान होते हैं इससे वे मकार से परिमाण किये की समान होते हैं इससे इन दोनों की तुल्यता से एकता है अथवा जैसे ॐकार के उच्चारण किये मकार रूप अन्त के अक्षर में अकार और उकार यह दोनों एक रूप हुए की समान होते हैं इसी प्रकार विश्व और तैजस सुषुप्ति काल में प्राज्ञ विषे एकरूप हुए की नाईं होते हैं इससे तुल्य होने से प्राज्ञ और मकार की एकता है अब इनकी एकता के ज्ञाता को फल कहते हैं जो ऐसे जानता है सो निश्चय कर इस सर्व जगत् को यथार्थ जानता है और जगत का कारण रूप होता है यहां बीच के (अवांतर) फलका कथन मुख्य साधन की स्तुति अर्थ है "अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्य्यः प्रपंचोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवंवेद" मांडूक्य ॥ जिसकी मात्रा नहीं है

ऐसा जो ॐकार सो अमात्र है और चतुर्थ अर्थात् तुरीयरूप हुआ केवल आत्मा ही है और वाच्यवाचकरूप वाणी और मनको मूल ज्ञान के क्षय से क्षीण होने से व्यवहार करने को अयोग्य है और प्रपंच के उपशमवाला है और शिव (कल्याणरूप) है और अद्वैत है ऐसे उक्त प्रकार के ज्ञानवाले पुरुष से उच्चारण किया हुआ ॐकार तीन मात्रावाला और तीन पादवाला आत्माही है जो ऐसे जानता है सो अपने ही आत्मा से अपने परमार्थरूप आत्मामें प्रवेश करता है अर्थात् सुषुप्ति नामक तीसरे स्थानरूप बीज भाव को दग्ध करके परमार्थदर्शी ब्रह्मवेत्ता पुरुषों के आत्मा के अर्थ प्रवेश पाया हुआ फिर जन्म नहीं पाता काहे से कि तुरीय को अबीजरूप होने से जैसे रज्जू और सर्प के विवेक के होने से रस्सीके विषे प्रवेश को पाया सर्प फिर तिन विवेकी पुरुषों को भ्रांति ज्ञानके संस्कार से पूर्व को समान नहीं होता तैसे यहां भी जानना साधक भावको प्राप्त हुए और मन्मार्ग में वर्त्तनेवाले मात्रा और पादों की निश्चित तुल्यता जाननेवाले संन्यासीजनों को तो यथार्थ उपासना किया हुआ ॐकार ब्रह्म की प्राप्ति के अर्थ आश्रय होता ही है [illegible] स्वामी शंकराचार्यजी ने मांडूक्य उपनिषद् पर ॐकार का भाष्य किया है इसी प्रकार और भी उपनिषदों में वर्णन है यह केवल दिग्दर्शनमात्र है परन्तु स्वामी दयानन्दजी का किया अर्थ किसी भी ग्रन्थ के अनुसार नहीं है इस कारण सत्यार्थप्रकाश में यह ओंकार का अर्थ मिथ्या ही जानना बुद्धिमानों को उचित है कि दयानन्द वा उनके अनुयायियों के वाग्जाल से सावधान रहैं।

भास्करप्रकाश पृ० १४ पं० २७—

हम अन्य प्रमाण के लिखने की आवश्यकता नहीं समझते किन्तु जो मंत्र आपने प्रमाण दिया है और उसका निरुक्त परिशिष्ट तथा भाष्य लिखा है वही स्वामीजी के अर्था की पुष्टि करता है आपने तो केवल मंत्र निरुक्त भाष्य लिख दिया परन्तु यह न विचारा कि यह तो सब स्वामीजी के अर्थ की पुष्टि

करता है यथा (मंत्र) ऋचोअक्षरेपरमेव्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्तइमे समासते (ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० ३९ (निरुक्त परिशिष्ट) ऋचो अक्षरे परमेव्यवने यस्मिन्देवा अधिनिषण्णाः सर्वोयस्तन्न वेदकिंसऋचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्तइमे समासते इति विदुषिउपदिशति। कतमत्तदेतदक्षरमित्येषावागिति शाकपूणिर्ऋचश्चाक्षरे परमेव्यवनेधीयन्ते नानादेवतेषु च मंत्रेषु। एतद्ध वा एतदक्षरं यत्सर्वा त्रयी विद्यां प्रति प्रतीति च ब्राह्मणम्। निरु० अ० १३ खं० १० पं० ज्वालाप्रसादजीने जहां से इस मंत्रका निरुक्त आरम्भ हुआ है वहां से कुछ छोड़कर "इति विदुषउपदिशति" यहां से ही लिखा है तथापि इससे उनका प्रयोजन सिद्ध न हुआ प्रत्युत स्वामीजीकाही तात्पर्य्य सिद्ध होता है (मंत्रका निरुक्तस्थ अर्थ) यद्यपि निरुक्तकारने इसका दूसरा अर्थ आगे सूर्य विषयक भी कियाहै परन्तु हम प्रथम जिस ओंकार विषयक अर्थ को निरुक्तकारने ब्राह्मण का प्रमाण देकर लिखाहै उसीको पाठकोंके अवलोकनार्थ लिखते हैं (ऋचः) ऋचायें (अक्षरेपरमेव्यवने) अविनाशी परमरक्षकमें (यस्मिन्सर्वेदेवाः) [अधिनिषण्णा] जिसमें सब दिव्यगुण स्थित हैं [उसी में स्थित हैं] (यस्तन्नवेद) जो उसको नहीं जानता (स ऋचा किं करिष्यति) वह ऋचा से क्या करेगा (य इत्तद्विदुस्तइमे समासते इति विदुष उपदिशति) "य इत्तद्वि०" इससे विद्वानों को उपदेश करता है कि (कतमत्तदेतदक्षरम्) कौनसा वह अक्षर (ओमित्योषा वागिति शाकपूणिः) शाकपूणि आचार्य उत्तर देते हैं कि "ओ३म्" यह वाणी है (ऋचश्चयाक्षरे परमेव्यवनेधीयन्ते) और ऋचायें निश्चय अविनाशी परमरक्षक में धारित हैं (नाना देवतेषु च मंत्रेषु) अनेक [अग्न्यादि] देवतावाले मंत्रों में (एतद्धवाएतदक्षरम्) यही है वह यही अक्षर है (यत्सर्वात्रयींविद्यां प्रतिप्रतीति ब्राह्मणम्) जो सम्पूर्ण त्रयी विद्या के प्रति (बराबर) है ऐसा ब्राह्मणमें लिखा है। ऊपरके लिखे निरुक्तके (नाना देवतेषु मंत्रेषु एतद्धवा०) अर्थात् अनेक देवतावाले मंत्रों में यही ओंकार अक्षरहै इससे स्पष्ट है कि वेद में जो "अग्निमीडेपुरोहितम्०" इत्यादि अग्निदैवत मंत्रहैं वा वायु आदि देवतावाले मंत्रहैं उनका मुख्य तात्पर्य अग्न्यादि पदों से ओंकारही है अर्थात् अग्न्यादि पदों से स्तुति प्रार्थनोपासना प्रकरणों

में वेद परमेश्वर ही को बोधित करता है। अब इस मंत्र और निरुक्त से इतना तो सिद्ध होहीगया कि वेदों में अग्न्यादि नाना देवता का तात्पर्य ओ३म् है इसलिये अग्न्यादि बहुत से अर्थ जो स्वामीजीने ओ३म् से लियेहैं वे युक्तहैं।

अब हम पाठकों को ध्यान दिलाते हैं कि द० ति० भा० पृ० ८ संस्कृत भाष्य पं० १२ में "—[illegible] १२ में "वायु" और पं० १३-१४ में "आदित्यः" ये अर्थ स्वयं पं० ज्वालाप्रसाद लिखते हैं और भाषा पृष्ठ ६ पं० ६ में वही "अग्नि" पं० ७ में "वायुः" और पं० ८ में "आदित्य" शब्द ओंकार की व्याख्या में उपस्थित है तब सत्यार्थप्रकाश में लिखे अ उ म के अग्नि वायु आदित्य अर्थों में क्या भूल मिल गया और स्वामीजी ने जो अकार से विराट् अग्नि विश्वादि उकार से हिरण्यगर्भ वायु तैजसादि और मकार से ईश्वर आदित्य प्राज्ञादि अर्थ लिये हैं सो मांडूक्य उपनिषद के निम्न लिखित वाक्यों से स्पष्ट निकलते हैं यथा "जागरितस्थानोवैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्रा० ॥" जागरितस्थान=विराट। वैश्वानर=अग्नि अकार पहिली मात्रा "स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीय मात्रा० ॥" स्वप्नस्थान= हिरण्यगर्भ तैजस=[illegible] दूसरी मात्रा "सुषुप्तस्थानः=प्राज्ञो मकार स्तृतीयामात्रा०" सुषुप्तस्थान=ईश्वर। प्राज्ञ=प्राज्ञ मकार तीसरी मात्रा देखना चाहिये कि मांडूक्य के ऊपर लिखे वाक्यों में वैश्वानर तैजस और प्राज्ञ ये तीन अर्थ क्रम से अ उ म के वैसेही लिखे हैं जैसे स्वामीजी ने लिखा है और स्वयं पं० ज्वालाप्रसादजी ही जो ज़रा व्याख्या बढ़ा कर पांडित्य में गणना होने के लिये द० ति० भा० पृ० १० वा ११ में इन्हीं मांडूक्य वाक्यों का अर्थ कुछेक घपले से में मिला कर वही अग्नि तैजस और प्राज्ञ अर्थ करते हैं और करें कैसे ना मूल में वे शब्द उपस्थित हैं इस प्रकार यह ओ३म् का व्याख्यान स्वामीजीकृत और मांडूक्य तथा द० ति० भा० में एकसाही होने से वादी अपने आपही परास्त होता है हां एक बात शेष है यद्यपि वह बात [illegible] के खंडन मंडन से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखती तथापि ओ३म् की चतुर्थ मात्रा जो अ उ म का अवसान है उस पर मांडूक्य का वाक्य और शंकर मतानुसार अर्थ करके पं० ज्वालाप्रसाद

जी ने जो कुछ लिखा है उसस पाठकों को अद्वैतवाद की झलक आवेगी जो अद्वैतवाद जीव ब्रह्म की एकता हमारी समझ में वेदों और उपनिषदों के विरुद्ध है अतः हम भी पाठकों के भ्रम निरासार्थ नीचे वह मांडूक्य वाक्य और उसका स्पष्ट अक्षरार्थ किये देते हैं यथा "अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य देव वेद य एवं वेद" (मांडूक्योपनि०) (अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः) बिना मात्रा चौथा [अवसान] किसी शब्द से व्यवहार में नहीं आसक्ता (प्रपञ्चोपशमः) उसमें प्रपञ्च जगत् का उपशम=लय है (शिवः) वह कल्याणमय है (अद्वैतः) वह अद्वितीय है अर्थात् उसके सदृश कोई नहीं (एवमोंकारः) इस प्रकार का ओ३म् है (यएवंवेद) जो ऐसे जानता है वह (आत्मैव आत्मनात्मानंसंविशति) आपही अपने स्वरूप से परमात्मा का संवेश करता है ब्रह्म को प्राप्त हो मुक्त हो जाता है बिना खैंचातानी के सीधा अक्षरार्थ यही है परन्तु केवल "अद्वैतः" के आते ही पं० ज्वालाप्रसादजी खिंच गये अद्वैत शब्द का सुगम अर्थ सब कोई समझ सकता है कि "जिसके सदृश कोई न हो" यह तात्पर्य नहीं निकल सकता वा खैंचतान से निकलता है कि "उसके अतिरिक्त कुछ न हो" यह ओंकार की व्याख्या और द० ति० भा० के प्रथम समुल्लास का खंडन समाप्त हुआ।

मीक्षा—मिश्रजी ने यह लिखा है कि स्वामी दयानन्दजी अकार से विराट् अग्नि आदिका ग्रहण बतलाते हैं इसमें कोई प्रमाण नहीं देते इस लेख में वास्तविक में पं० ज्वालाप्रसाद ने भी धोखाखाया जो प्रमाण मांगते हैं प्रमाणों की आवश्यकता तो सनातनधर्मियों को है जो बिना वेदशास्त्र के किसी भी पंडित के लेख को प्रमाण नहीं मानते समाज तो स्वामी के लेख को स्वतः प्रमाण मानती है फिर प्रमाण की क्या आवश्यकता है यदि पं० ज्वालाप्रसादजी कहें कि वेद में तो ऐसा नहीं वेद में ऐसा नहीं तो न सही स्वामी दयानन्दजी के विचार में तो है पं० ज्वालाप्रसादजी यह कहतेहैं स्वामीजीको "ओंकार" की व्याख्याही करनी नहीं आई इस लेखको देखकर तो पं० तुलसीरामजीको भी लेखनी उठानीही पड़ी पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं

"यस्मिन्देवा अधिनिषण्णाः" जिस ॐकार में समस्त देवता स्थित हैं यह ॐकारकी व्याख्या है भला अब पं० तुलसीरामजी क्यों मानेंगे अब तो पण्डित ज्वालाप्रसादजीने ॐकार का महत्वही बढ़ा दिया पं० तुलसीरामजी "देवाः" शब्द का अर्थ बदले देते हैं कि जिस ॐकार में "देवाः" दिव्यगुण हैं पं० तुलसीरामजी ने देवाका अर्थ तो दिव्यगुण किया और अधिनिषण्णाका अर्थ किया "हैं" क्या उत्तम अर्थ किये कि जिन अर्थोंको सृष्टिके आरम्भ से लेकर आजतक किसी ने भी नहीं जाना कोई मौलवी साहब एक बच्चे को पढ़ाता था कि "काफ लाम जबर कल, लामबावपेश लू" बोलो बेटा मौलाबख्श वहांपर कोई द्वितीय मनुष्य खड़ा था वह बोला कि इन हिज्जे करने पर कल्लू होता है या कि मौलाबख्श मोलवी ने उत्तर दिया कि कुछ जानते हो लिखे पढ़े हो कि वैसे ही कल्लू बतलाने लगे क्या इन हिज्जों से कभी कल्लू भी होसकता है यह तो मौलाबख्शही होता है जिस प्रकार यह मौलवी साहब "काफ लाम जबर कल, लाम बावपेश लू" को मौलाबख्श बतलाते हैं बस हूबहू इसी प्रकार पं० तुलसीरामजी "देवाः" का अर्थ दिव्यगुण और "अधिनिषण्णाः" का अर्थ "हैं" करते हैं यदि ऐसेही अर्थ होने लगे और "ग्वबेजा" माने ऊँट कहने लगे तो कोषों की क्या आवश्यकता है अच्छा अब यदि देवा का अर्थ दिव्यगुण होता है तो फिर पं० तुलसीरामजी या आधुनिक और कोई समाजी दिखलावे कि देवा का अर्थ दिव्यगुण किसी निघण्टु या निरुक्त या कोष या और भी किसी संस्कृत के पुस्तक में है हिन्दूसाहित्य का एक एक पृष्ठ देख डालिये कहीं पर भी "देवा" का अर्थ दिव्यगुण नहीं जब देवा का अर्थ दिव्यगुण होता ही नहीं फिर पं० तुलसीराम जैसे सज्जन पुरुष का भी जबरदस्ती अर्थों को बदल २ स्वामी दयानन्द के पक्ष की पुष्टि करना क्या दयानन्द के लेख को अवैदिक सिद्ध करना नहीं है और यदि पं० तुलसीराम अर्थ के दिव्यगुण को ही थोड़ी देर के लिये मानलें तो फिर अब पं० तुलसीराम बतलावें कि भास्करप्रकाश के टाइटल पर जो आरम्भ में ॐकार लिखा है उसमें क्या क्या दिव्यगुण हैं अधिक नहीं तो कोई एक ही उसमें एक ही दिव्यगुण बतलावे क्या उसमें यह गुण है कि तार की भांति दो मिनट में दिल्ली से कलकत्ते को खबर पहुँचा दे या कि समाज के उत्सव पर ग्रामोफोन के रिकार्डों की भांति कोई राग सुना दे यदि कहो कि ये गुण उसमें नहीं भला फिर वे गुण कौन हैं जो उस

ॐकार में हैं यदि नहीं हैं तब तो प्रत्यक्ष के विरुद्ध होगया अतएव इस लेख से वेद में दोष आवेगा कि ॐकार में तो कोई साधारण भी गुण नहीं फिर वेद उसमें दिव्यगुण बतलाता है तो क्या इस लेख से वेद अमान्य न ठहरेगा यदि कहो कि हम वह ॐकार नहीं लेते कि जो भास्करप्रकाश के टाइटल पर लिखा है किन्तु ॐकारपदवाच्य ईश्वर लेते हैं और उसी में दिव्यगुण हैं यदि ऐसा है तो फिर "देवा" का अर्थ दिव्यगुण क्यों किया क्या देवता उस ब्रह्म से बाहर हैं क्या कोई ऐसी भी जगह है कि जहां देवता तो हैं किन्तु ईश्वर नहीं यदि कहो कि ऐसा तो नहीं यदि ऐसा नहीं तो फिर ॐकार की व्याख्या बिगाड़ी और देवा का दिव्यगुणशास्त्रविरुद्ध अर्थ किया इसमें लाभ क्या हुआ सम्भव है कि पं० तुलसीराम देवयोनिकी सिद्धि होते देख घबरागये हों कुछ भी हो इतना तो कहनाही पड़ेगा कि पं० ज्वालाप्रसाद का किया अर्थ अब भी सत्यही रहा और भास्करप्रकाशकर्ता उसका खण्डन नहीं कर सकते। पं० तुलसीरामजी इसी मन्त्र को देकर कहते हैं कि बस स्वामीजी के अर्थ कीही तो पुष्टि हुई स्वामीजी के अर्थ को पुष्टि हुई या ॐकार का महत्व आया स्वामीजी ने तो ॐकार के महत्व मिटाने के लिये ही अकार से अग्नि विराट् लिखा स्वामीजी के मन्तव्यानुसार तो यह एक मामूली शब्द हुआ जैसे हरि शब्द से विष्णु, सिंह, वानरादि का ग्रहण होता है वैसे ही इससे भी समझो फिर इस ॐकार में महत्व कौनसा है।

इसके आगे पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने यह दिखलाया कि इस ॐकार की प्रथम मात्रा में पृथवी लोक और अग्नि ऋग्वेद और पृथिवी लोक निवासी स्थित हैं और द्वितीय मात्रा में अन्तरिक्ष, वायु और यजु के मन्त्र और अन्तरिक्ष लोकनिवासीजन स्थित हैं और तृतीय मात्रा में द्युलोक आदित्य साम के मन्त्र और स्वर्गलोक निवासीजन स्थित हैं इसी भाव को लेकर माण्डूक्योपनिषद् कहता है कि 'ॐकार एवेदंसवम्" स्वामी दयानन्द जी इस वेद विहित ॐकार महत्व का खण्डन करते हुए केवल इतना लिखते है कि ॐकार एक ऐसा अक्षर है कि जिसके उच्चारण करने से ईश्वर के कितने ही नाम आ जाते हैं कोई यह तो बतलावे कि इसमें कोई वेद का प्रमाण है जिस अर्थ की पुष्टि वेद करता था उस व्याख्या को उड़ा कर स्वामी दयानन्द जी ने एक मनगढ़न्त व्याख्या तैयार की इसका प्रयोजन यही है कि

ॐकार का जैसा महत्व वेद कहते हैं आर्यसमाज उसको न मान बैठे वेद व पोपलीला में न पड़जावें किन्तु उसके विरुद्ध वेद प्रमाण से रहित हमारी बतला व्याख्या को मानें स्वामी [illegible] के अर्थ की पुष्टि करते हुए पं० तुलसीरामज लिखते हैं कि पं० ज्वालाप्रसादजी ने जो वेद से बतलाया कि "प्रथमाय मात्रायां पृथिवी अग्निः ऋग्वेदः पृथिवी निवासिनः" अर्थात् ॐकार क प्रथम मात्रा में पृथिवी अग्नि, ऋग्वेद और पृथिवी निवासिजन स्थित हैं या अर्थ और स्वामी दयानन्दजी ने जो लिखा कि अकार से अग्नि विराट् आदि कई नामों का ग्रहण होता है ये दोनों अर्थ एक ही हैं पण्डितों की तो बात ही छोड़िये किन्तु ये दोनों अर्थ किसी साधारण बुद्धिवाले के आगे रखने से यही उत्तर मिलेगा कि इन अर्थों में तो जमीन आसमान का फर्क है ये दोनों अर्थ कभी एक हो नहीं सकते सनातनधर्मियों की तो बातही जाने दीजिये इस विषय में तो जब आर्यसमाजी पण्डितों से बातचीत होती है उस समय वे भी यही कहते हैं कि पं० तुलसीरामजी का लेख टालमटोल है और पं० तुलसीरामजी भी क्या करें वेद कुछ और ही कहता है और स्वामी दयानन्द कुछ और ही कहते हैं अब किसके कथन को सत्य कहा जावे हार कर पण्डित तुलसीराम ने यही लिख दिया कि दोनों अर्थ एक ही बात है हम पं० तुलसीराम तथा शेष आर्यसमाजियों से यह पूछना चाहते हैं कि जब वेद ॐकार के महत्व का वर्णन करता है और स्वामी दयानन्द ॐकार महत्व का खण्डन करते हैं फिर एक बात कैसे क्या कभी कोई आर्यसमाजी इस पर भी विचार दृष्टि डालेगा या इसका भी कभी विचार करेगा कि स्वामी दयानन्द के लेख अकार से अग्नि विराट् आदि का ग्रहण होता है इस अर्थ में वेदादि का कोई प्रमाण नहीं है।

फिर यहां [illegible] और भी विचार करना है यदि हम दुर्जन तोष न्याय से यह भी मानलें कि ॐकार के उच्चारण से ईश्वर के कई नाम आजाते हैं आजावें स्वामी दयानन्द के मत में इसका फल कुछ भी नहीं स्वामी दयानन्द आगे सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि जैसे गुड़ गुड़ कहने से मुँह मिट्ठा नहीं होता वैसे ही ईश्वर के नाम लेने से भी कुछ नहीं होता जब कि ॐकार के उच्चार या जप से कुछ फल ही नहीं फिर चाहे ॐकार के उच्चारण से

लक्षनामों का ग्रहण क्यों न हो कुछ भी लाभ नहीं जब कि इसके उच्चारण से कुछ फल ही नहीं फिर इसका उच्चारण ही क्यों किया जावे वास्तविक में स्वामी दयानन्दजी ने जो यह ॐकार की नवीन व्याख्या की है यह ॐकार महत्व गिराने के लिये है स्वामी दयानन्द की व्याख्या तो ॐकार महत्व को गिरा रही है और पं० ज्वालाप्रसाद का लेख ॐकार का महत्व कह रहा है इतने पर भी पं० तुलसीरामजी कहते हैं कि पं० ज्वालाप्रसादजी का लेख ही स्वामीजी के लेख को पुष्टि करता है पं० तुलसीरामजी से निवेदन है कि वह इस बात को अवश्य बतलावें कि स्वामी दयानन्द की भांति मिश्रजी ने वह कौनसा लेख लिख दिया कि जिसमें ॐकार महत्व में न्यूनता आई हो और साथहीसाथ यह भी दिखलावें कि अकार से अग्नि विराट् आदि नामों का ग्रहण जो स्वामी दयानन्द ने किया है यह किस वेद में लिखा है यदि वेद में नहीं तो वेद विरुद्ध होने से यह त्याज्य क्यों नहीं पं० तुलसीरामजी नहीं तो कोई औरही समाजी इस पर लेखनी उठावे।

"अद्वैतः" पदके ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि जीव ब्रह्म की एकता हमारी समझ में वेदों और उपनिषदों के विरुद्ध है फिर आगे केवल इतना ही लिखते हैं कि "अद्वैतः" वह अद्वितीय अर्थात् उसके सदृश कोई नहीं हममी बड़े जोर से कहते हैं कि "अद्वैतः" का यह अर्थ त्रिकाल में भी नहीं होसकता "अद्वैतः" पदका अर्थ तो स्वजाति विजाति भेदशून्य है अर्थात् उसके सदृश और उससे छोटा या बड़ा कोई भी पदार्थ नहीं यह अर्थ है आप तो देवप्रकरण में शंकरभाष्य मानते थे और इस पर जो मिश्रजी ने शंकरभाष्य दिखलाया तो उसके मानने से क्यों इनकार करते हो यदि इनकार ही किया तो फिर शंकर आदि सभी भाष्यकार जीव ब्रह्म की एकता कहरहे हैं और मिश्रजी ने प्रमाण में दिये हैं उनके भाष्यों का खण्डनही करते "हमारी समझ में नहीं आता" इतनाही कहने से काम नहीं चलेगा आपकी समझ में तो ग्रामोफोन के रिकार्ड भी नहीं आते होंगे तो क्या वे इस कारण से राग न गावेंगे कि हम पं० तुलसीराम को समझ में नहीं आते और आप कहते हैं कि वेद उपनिषद में कोई मन्त्र ऐसा नहीं जिसमें जीव ब्रह्म की एकता [illegible] कि एक दो मन्त्र तो अवश्य ऐसे नहीं किन्तु चार हजार हैं लीजिये अभी एकही मन्त्र लीजिये--

"पुरुष [illegible] सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्"

यजु० अध्या० ३१

अर्थ—(इदम्) यह जो दृश्य जगत् (भूतम्) हुआ (च) और (यत्) जो (भाव्यम्) आगे होगा (तत्) वह (सर्वम्) समस्त (पुरुष एव) पुरुष ईश्वर ही है।

कहिये जीव ब्रह्म की तो कौन कहे वेद में तो संसारी पदार्थों और ब्रह्मका भी अभेद बतलाया है फिर आप कैसे दावा करते हैं कि वेद में तो एकता नहीं पण्डितजी महाराज वेद की तो कौन कहे जीव प्रकृति और ईश्वर को तो स्वामी दयानन्दजी ने भी अभेद माना है आप वेद शास्त्र में क्यों जाते हैं आप आर्यसमाज का पहिला [illegible] देखलें उसमें स्वामी दयानन्दजी ने अभेद माना है या हम वैसेही लिखते हैं, पहिला नियम यह है—

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थविद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

पं० तुलसीरामजी को गौर से सोचना चाहिये ध्यान देकर विचारना चाहिये कि प्रकृति और जीवका ज्ञान विद्यासे होता है या बिना विद्याही होजाता है यहाँपर कहना पड़ेगा कि इन दोनों का ज्ञान वेद विद्या से होता है यदि ऐसा है तब तो जीव प्रकृति स्वतः सत्तावाले नहीं ठहरते जब कि ईश्वर से पृथक् इनकी हस्ती ही नहीं तब तो इनका और ईश्वर का अभेद सिद्ध होगया जब कि वेद उपनिषद स्वामी दयानन्द के लेख आदि में सभी जगह ईश्वर जीव की एकता है फिर आप इनकार क्यों करते हैं क्या आप स्वामी दयानन्दजी के लेख को भी अशुद्धही समझते हैं पं० तुलसीरामजी सब जानतेहैं किन्तु सोच इतना है कि यदि इसको मानलें तो स्वामी दयानन्द का षष्ठ स्वमन्तव्य उड़ जावेगा हम भी जोरके साथ कहते हैं कि या तो ६ स्वमन्तव्यही छोड़ना पड़ेगा या तो फिर आर्यसमाज के प्रथम नियम से ही हाथ धोने पड़ेंगे बस अद्वैतपक्ष सिद्ध है और प्रथम समुल्लास की समाप्ति है।

इति श्रीकालूरामरचितेधर्मप्रकाशेप्रथमसमुल्लासः।

श्रीहरि: ।

सूचीपत्र

सनातनधर्म के गूढ़ अभिप्रायों को जानने तथा आर्यसमाजियों को मोक्ष से भगादेने के लिये हमने अपने पुस्तकालय का उद्घाटन किया है। इस पुस्तकालय में जो जो पुस्तकें तैयार हैं उनके नाम दाम सहित नीचे लिखे जाते हैं कि डाक महसूल अलग होगा।

१) धर्मप्रकाश ६ समुल्लास
२॥) पुराणवर्म पूर्वार्द्ध
२) दयानन्दछलकपटदर्पण (पं० जियालाल जैनी कृत)
२) सत्यार्थप्रकाश असली सन् १८७५
१) व्याख्यान दिवाकर का पूर्वार्द्ध
१) व्याख्यान दिवाकर का उत्तरार्द्ध (विजया विवाह निर्णय)
१) अष्टताड
१) मूर्तिपूजा
॥) धर्म
॥) शास्त्रार्थविजय कानपुर
।=) भाद्र निर्णय
।=) खण्डन-धा
।) दयानन्द मत विद्रावण
=) तीर्थ
=) सत्यार्थप्रकाश की छीछालेदर
=)। गद्दि निर्णय
=) हिन्दु शब्द मीमांसा
=) नमस्ते मीमांसा
)॥ दयानन्द की निरक्षता
=) दयानन्द लीला
)॥ दयानन्द हृदय
)॥ दयानन्द मत दर्पण
१) सनातनधर्म विजयसंग्रहकाव्य (कविरत्न पं० अखिलानन्द कृत)
२॥) षोडश संस्कार विधि (पं० भीमसेन कृत)
)॥॥ दयानन्द मत सूची
)॥ धर्म सन्ताप
)॥॥ दयानन्द का कच्चा चिट्ठा
=) देवसभा में वेदों की अपील
=)॥ वेदों पर आरा
)॥॥ वेदों का कतल
)॥ वैदिक धर्म पर कुल्हाड़ा
)॥॥ वेद पर वज्रपात
=) बनावटी वेद
)॥॥ जाली वेदमन्त्र
=) लीडरी की नादिरशाही
=) अनोखा विजय
=) हनुमान निर्णय
=)। संस्कारविधि समीक्षा
)॥॥ स्वामी पर कलंक
)॥॥ मांस विचार
)॥॥ स्वामी गुरु कि चेला गुरु
)॥॥ लोहा लकड़ द्वैवता
)॥॥ द्विजत्व में दियासलाई
)॥ दयानन्द की सभ्यता
)॥॥ निराकार की घुड़दौड़
)॥ दयानन्द की आप्तता
।=) आर्यमत तिरस्करण प्रश्नावली (पं० भीमसेन कृत)
॥) व्याख्यान रत्नमाला
॥) स्पृश्यास्पृश्य मीमांसा

मिलने का पता—पं० कालूराम प्रसाद दीक्षित, मैनेजर 'हिन्दु कार्यालय' मु० पो० अमरोधा, जि० कानपुर, यू० पी०।

SINGAPORE

श्रीगणेशाय नमः

धर्मप्रकाशः

सत्यार्थप्रकाश दयानन्द तिमिरभास्कर भास्करप्रकाशैः संयुतः ।

तस्यैवांशम्

तृतीय समुल्लासः

पण्डित कालूराम शास्त्रिणा लिखितः

सोऽयम्

ग्रन्थकर्त्रा स्वकीयद्रव्यव्ययेन करणपुरनाम्निपत्तने
मर्च्चण्टाख्येमुद्रागारे बाबू छेदालालस्यप्रबन्धेन
मुद्रापयित्वा प्रकाश्यंनीतः

प्रथमवार १००० } आश्विन शुक्ला १० सम्वत् १९७२ ता० १५ अक्टूबर १९१५ ई० { मूल्य १।=)

पृष्ठ ९६० का अग्रिम वार्षिक मूल्य ३-)

Printer Chheda Lall, Proprietor Merchant Press, Cawnpore.

श्रीहरिः ।

प्रार्थना ।

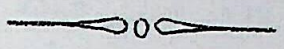

धर्मप्रकाश के प्रथम समुल्लास को देख कर अनेक सज्जनों ने अपनी सम्मतियां भेजी हैं कि जिन सम्मतियों से धर्मप्रकाश की गौरवता प्रकट होती है उन में से कुछ सम्मतियां पाठकों के अन[illegible] नीचे लिखता हूं जिनको पाठक देखने का कष्ट उठावेंगे ।

धर्मप्रकाश पर सम्मतियां—

मासिक पत्रिका सरस्वती अपरैल सन १९१५ ई०

धर्मप्रकाशः प्रथम समुल्लासः कानपूर के जिले में एक जगह अमरौधा है वहां के निवासी पं० कालूराम शास्त्रीजी ने एक लेखमाला निकालने का आरम्भ किया है उसी का यह पहला भाग है इसमें पहले स्वामी दयानन्द सरस्वती के सत्यार्थप्रकाश से अवतरण दिये गये हैं फिर पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत दयानन्द तिमिर भास्कर नामक ग्रंथ से उनके खंडन तदनन्तर पं० तुलसीराम के ग्रन्थ भास्कर प्रकाश से उन खंडनों के खंडन । अंत में पं० कालूराम शास्त्री ने सबकी विस्मृत समीक्षा लिखी है। समीक्षा में आर्यसमाज के पूर्वोक्त दोनों ग्रन्थों के भ्रम आपने दिखलाये हैं उसमें आप ने युक्ति और तर्क से प्रायः अच्छा काम लिया है उसे परिश्रम पूर्वक लिखा है पुस्तक का आकार बड़ा पृष्ठ सं० १०० और मूल्य ।=) है लेखक से ही मिलती हैं ।

मजिस्ट्रेट दर्जे अव्वल रियासत छतरपुर की चिट्ठी भी पढ़ने योग्य है जो कि एक विशेषता और रखती है अर्थात् एक प्यारे मुसलमान ग्रेजुएट की राय है चिट्ठी उर्दू अक्षरों में आई है जो कि उन्हीं अक्षरों में नीचे लिखी जाती है—

چھترپور
۱۸ مئی سنه ۱۹۱۵ع

مخدوم و مکرم جناب شاستري جي—تسليم
جو کتب مذهبي و اخلاقي و تمدني تصنيف خود آپنے وقتاً فوقتاً
میرے پاس بھیجی ھیں میں آپکا تہ دل سے شکریہ ادا کرتے

هوئے اِس امر کا بھي بخوشي اظہار کرتا هون که مين نے اکثر حصه اون
کتابون کا مختلف اوقات مين کار منصبی سے فرصت ملنے پر پڑھا اور اب
بھی پڑھتا هون اور جو کچھه مين نے پڑھا هے اوسپر رائے کی اصلاح کے لئے
فایدہ بخش سمجھتا هون اور اِس خیال سے میری راے مین آپکي یه علمی
محنت ضرور قدر کے قابل هے مجھے یه هدیه ایسي عمدہ کتابون کا مفت
ملا هے لوگ کہا کرتے هین که مفت چیز کی پوری قدر نہین کی جاتی اِس
مقوله کو مین خود تو اپنے تجربه سے پورا صحیح نہین مانتا تاهم میری
تمنا هے که مین انکي قیمت ادا کر دون تاکه وہ قلیل رقم کسي مفید کام
مین لگ سکے اپکو معلوم هے که مجھے سرکاری کام سے فرصت بہت کم
ملتی هے صرف اسیوجه سے اپکا یه احسان بدیر تسلیم کیا گیا هے یه خیال
نه کیا جاوے که میري لاپرواهي یا سستی سے تاخیر هوئی اُمید کرتا هون
که اپ خیریت سے هونگے اور اِس علمي خدمت مین بدستور مصروف *

اپکا خیراندیش
فضل حق

पाठकों के अवलोकनार्थ "मजिस्ट्रेट साहिब" की चिट्ठी हिन्दी अक्षरों में लिखता हूं मुझे आशा है कि इस चिट्ठी से अन्य ग्रेजुएट भी शिक्षा लेकर लाभ उठा सकते हैं और यह चिट्ठी खास कर उन सज्जनों को अधिक लाभदायक हो सकती है कि जिनका मन धर्म बन्धनों से या आत्मिक ज्ञान से घृणा कर चुका है और धर्म मर्य्यादा को तोड़ने में ही सुख समझता है।

मुन्शी फ़ज़लहक़जी साहब बी. ए. नाजिम (मजिस्ट्रेट दर्जा अव्वल) रियासत छतरपुर की चिट्ठी की हिन्दी नकल भी देखिए—

मखदूम मुकर्रम जनाब शास्त्रीजी तसलीम।

जो कुतुब मज़हबी व इख़लाक़ी व तमद्दुनी तसनीफ़ ख़ुद आप ने वक़्तन फ़वक़्तन मेरे पास भेजी हैं मैं उनके मुतअल्लिक़ सिद्क़ दिल से आप का शुक्रिया अदा करते हुए इस अमर का भी बख़ुशी इज़हार करता हूं कि मैंने अकसर हिस्सा इन किताबों का मुख्तलिफ़ औक़ात में कार मनसबी से फ़ुरसत मिलने पर पढ़ा और अब भी पढ़ता हूं और जो कुछ मैंने पढ़ा है उसको मैं लोगों की सलाह के लिए फ़ायदाबख्श समझता हूं और इस ख्याल से मेरी राय में आप की यह इल्मी मेहनत ज़रूर क़दर के क़ाबिल है मुझे यह हदियह ऐसी उमदः किताबों का मुफ्त मिला है लोग कहा करते

हैं कि मुफ्त चीज़ की पूरी क़दर नहीं की जाती इस मक़ूलह को मैं ख़ुद तो अपने तजरबह से पूरा सही नहीं मानता ताहम मेरी तमन्ना है कि मैं इनकी क़ीमत अदा कर दूं ताकि वह क़लील रक़म किसी मुफ़ीद काम में लग सके आपको मालूम है कि मुझे सरकारी काम से फ़ुरसत बहुत कम मिलती है सिर्फ़ इसी वजह से आप का यह एहसान बदेर तसलीम किया गया है यह ख्याल न किया जावे कि मेरी लापरवाही या सुस्ती से ताख़ीर हुई उम्मैद करता हूं कि आप ख़ैरियत से होंगे और इस इल्मी ख़िदमत में बदस्तूर मसरूफ़ ।

आप का ख़ैरन्देश,
फ़ज़लहक़ ।

श्रीमान् पं० श्रीकृष्ण ज्योतिर्विद की सम्मति—

आप हाईकोर्ट के वकील हैं और दूसरे संस्कृत के भी विद्वान् हैं आपने धर्म प्रकाश देख कर जो पत्र लिखा है उसकी नक़ल नीचे लिखता हूं देखिए—

नैनीताल,
२८ मई १९१५

स्वस्ति श्री सदुपमा योग्य श्री शास्त्रधुरीण महोदय को श्रीकृष्ण का सविनय प्रणाम । धर्मप्रकाश के दो अंक मिले हैं, बहुत उत्तम हैं, यद्यपि मुझ को साधारणतः खण्डन मण्डन के लेखों से आग्रहवाद की विशेष झलक देखने के कारण घृणा हो चुकी थी तथापि आपने धर्मप्रकाश को बहुत उत्तम श्रेणी का ग्रन्थ बनाना चाहा है जिसमें वितण्डा आदि को अपने लेख में कदापि स्थान न देकर प्रतिपक्ष के दोषों को अच्छी प्रकार से दिखला दिया है अपने पक्ष की पुष्टि शास्त्रानुसार की है अस्तु मुझ को आप से इस महत्कार्य में सहानुभूति है जो सहायता मुझसे बन पड़ेगी वार्षिक सहायक होकर ही प्रस्तुत करूंगा ।

श्रीकृष्ण ज्योतिर्विद,
वकील,
नैनीताल ।

(मुहर)
श्रीकृष्ण जोशी
हाईकोर्ट वकील ।

श्रीमान् बाबू लक्ष्मीनारायण वकील आगरा की सम्मति—

श्रीमान् ने धर्मप्रकाश की तैयारी में १०) की सहायता तैयारी से प्रथम ही दी थी । श्रीमान् के पास धर्मप्रकाश पहुंचा आप इसको पढ़ कर यह लिखते हैं—

श्रीमान् प० कालूराम...

धर्मोपदेशक ग्रन्थ माला के द्वितीय भाग का प्रथमोपदेश यानी धर्मप्रकाश मिल पढ़कर चित्त अतीव प्रसन्न हुआ वास्तव में आपने बड़े परिश्रम से यह ग्रन्थ लिख है और इसके लिखने के लिए पुस्तकादि एकत्रित करने में भी आप का विशेष धन और समय लगा होगा । परन्तु अगर आप ऐसे धर्म प्रेमी भी सनातन धर्म की उपस्थित शोचनीय दशा पर विचार करते हुए रक्षा करने का प्रयत्न न करेंगे तो अवश्य बड़ा धक्का पहुंचेगा । यह देखकर खेद होता है कि ऐसे आवश्यक ग्रन्थ के प्रकाशन में भी आप को आशाजनक सहायता नहीं मिली.....
मैं अपने मिलनेवालों से इस ग्रन्थ की सहायता के लिए अनुरोध करूंगा और जो बाहर हैं उनको पत्र लिखूंगा ।

अनुग्रहीत
लक्ष्मीनारायण,
वकील ।

पण्डित मण्डली के पत्र विशेष आये हैं जो आगे से छपने आरम्भ होंगे ।

कालूराम शास्त्री ।

श्रीहरिः ।

धर्मोपदेशक ग्रन्थमाला की पुरानी पुस्तकें ।

अवतार ॥) मूर्ति पूजा ॥) श्राद्ध ।) पुराण सिद्धि ।) पुराण कलंकाभासमार्जन ।) विधवा विवाह मर्दन ।) नियोग मर्दन ।) वर्ण व्यवस्था ।) दयानन्द की विद्वत्ता ।॥ नमस्ते मीमांसा ।॥ शुद्ध विवेचन ।) आर्य्यसमाज की गति ।॥ दयानन्द की बुद्धि ।। धर्म सन्ताप ।। नवीन मत समीक्षा ।। संध्या से आयु वृद्धि ।॥ निराकार भ्रम मर्दन ।॥ निराकारवाद में ईश्वराभाव ।॥ नई शिक्षा का विपरीत फल ।॥ मूर्ति पूजा ।। भजन मणि माला ।) दयानन्द हृदय ।॥ दयानन्द मत सूची ।॥ दयानन्द मत दर्पण ।॥ दयानन्द का कच्चा चिट्ठा ।॥ इनके अलावा पं० भीमसेनजी की बनाई पुस्तकें भी हमारे यहां मिलती हैं ।

पुस्तकें मिलने का पता—

मैनेजर—पं० कामताप्रसाद दीक्षित
अमरौधा, कानपुर ।

SANATAN DHARAM SABHA
स. ध. स.
SHRI KRISHNA TEMPLE WA

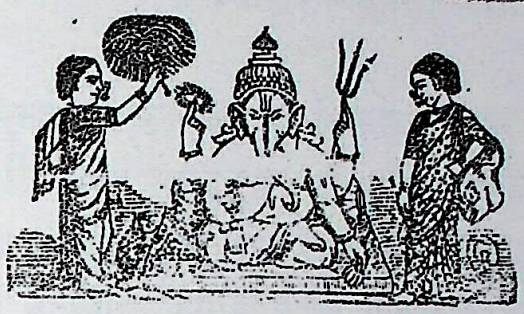

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ तृतीय समुल्लासारम्भः

सत्यार्थ प्रकाश—

अथाऽध्ययनाध्यापनविधिं व्याख्यास्यामः ॥

अब तीसरे समुल्लास में पढ़ने पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं। सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण कर्म्म और स्वभाव रूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चांदी, माणिक, मोती, मूंगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकता। क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि का भय तथा मृत्यु का भी सम्भव है। संसार में देखने में आता है कि आभूषणों के योग से बालकादिकों का मृत्यु दुष्टों के हाथ से होता है।

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।

संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये
धन्या नराविहितकर्मपरोपकाराः ॥

जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता, सुन्दरशील स्वभावयुक्त, सत्यभाषणादि नियम पालनयुक्त, जो अभिमान और अपवित्रता से रहित, अन्य की मलीनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्यादान से संसारी जनों के दुःखों के दूर करने से सुभूषित, वेदविहित कर्मों से पराये उपकार करने में रहते हैं वे नर और नारी धन्य हैं। इसलिये आठ वर्ष के हों तभी लड़कों को लड़कों की और लड़कियों को लड़कियों की पाठशाला में भेज देवें। जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों उन से शिक्षा न दिलावें, किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं। द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्य कुल अर्थात् अपनी २ पाठशाला में भेज दें, विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिये और लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोश एक दूसरे से दूर होनी चाहिये, जो वहां अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहैं। स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी ना जाने पावे। अर्थात् जबतक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहैं तबतक स्त्री वा पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्तसेवन, भाषण, विषय कथा, परस्परक्रीड़ा, [illegible] और सङ्ग इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहैं और अध्यापक लोग उनको इन बातों से बचावें जिस से उत्तम विद्या शिक्षा शील स्वभाव शरीर और आत्मा से बलयुक्त होके आनन्द को नित्य बढ़ा सकें। पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोश दूर ग्राम वा नगर रहै। सब को तुल्य वस्त्र, खान, पान, आसन दिये जांय चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो चाहे दरिद्र के सन्तान हों सबको तपस्वी होना चाहिये। उनके माता पिता अपने सन्तानोंसे वा सन्तान अपने माता पिताओं से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार एक दूसरे से कर सकें जिस से संसारी चिन्ता से रहित होकर केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रक्खें। जब भ्रमण करने को जावें तब उनके साथ अध्यापक रहें जिस से किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें और न आलस्य प्रमाद करें।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥

मनु० अ० ७। श्लोक १५२

इसका अभिप्राय यह है कि इस [illegible]राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पांचवें वा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज देवे जो न भेजे वह दण्डनीय हो, प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला में आचार्यकुल में हो। पिता माता वा अध्यापक अपने लड़के लड़कियों को अर्थसहित गायत्रीमन्त्र का उपदेश कर दें।

तिमिर भास्कर—

यह इतना लम्बा चौड़ा अभिप्राय कौन से अक्षरों से सिद्ध होता है आठ वर्ष से आगे पुत्र पुत्री को घर में रखने से मनुष्य दंडनीय हौं, ऐसे ही अभिप्रायों ने तौ नव शिक्षितौं की बुद्धि पर परदा डाल दिया है, इस श्लोक का यों तात्पर्य है और राजधर्म प्रसंग में का है।

मध्यन्दिनेर्द्धरात्रेवाविश्रान्तोविगतक्लमः।
चिंतयेद्धर्मकामार्थान्सार्धं तैरेकएववा १५१
परस्परंविरुद्धानांतेषांचसमुपार्जनम्।
कन्यानांसंप्रदानंचकुमाराणांचरक्षणम् १५२ अ० ७

राजा को योग्य है, कि, दुपहर आधी रात के समय में जब विश्राम युक्त हो और शरीर खेदरहित हो उस समय राजा मंत्रियों सहित वा आप ही धर्म काम अर्थ इनका विचार करै और यह धर्म अर्थ काम जो परस्पर विरुद्ध हैं इनका विरोध दूर करके उनके अर्जन का उपाय अपने कुल की कन्यायों का दान अर्थात् किस स्थान में विवाह करना चाहिये, और कुमारों का रक्षण विनयादिक शिक्षा करने का विचार करै इस श्लोक से स्वामी जी का अर्थ किंचित् मात्र भी सम्बन्ध नहीं रखता, यह एक बड़ी अद्भुत

बात है कि, एक यज्ञोपवीत घर में करै एक पाठशाला में इस में कोई अपनी ही संस्कृत बना गढके श्लोक के नाम से लिखी होती, और जब स्त्रियों के यज्ञोपवीत होता ही नहीं तौ भला उन्हें गायत्री पढ़ने का कब अधिकार है धन्य है आप की बुद्धि यहां गायत्री पढ़ना लिख दिया तो यज्ञोपवीत भी लिख देते, क्या डर था सभाजी तौ मान्तेही उन्हें तौ आपके वचन पत्थरकी लकीरहैं ॥

भास्कर प्रकाश—

जब कि आप स्वयं स्वीकार करते हैं कि यह श्लोक राजप्रकरण का है और यथार्थ में है ही, तौ राजा को अपनी कन्याओं के सम्प्रदान और कुमारों की रक्षा का विशेष विधान करना किस लिए लिखा, जब कि प्रत्येक प्रजागणस्थ पुरुष का भी कर्त्तव्य है कि वह अपनी कन्याओं के सम्प्रदान और कुमारों की रक्षा करें। तात्पर्य यथार्थ में यही है कि राजा अपनी प्रजा का पितृतुल्य रक्षक है, इसी लिए आप की विवाहपद्धतियों में कन्यादान के पूर्व, किस को कन्यादान करना उचित है, यह निश्चय करते हुए लिखा है कि—

"अथ कन्यादानं कुर्य्यात्पिता तदभावे माता
तदभावे भ्राता तदभावे राजा इत्यादि" ॥

अर्थात् कन्यादान में पिता उसके अभाव में माता उसके अभाव में भ्राता उसके भी अभाव में राजा इत्यादि का अधिकार है। इससे यह ध्वनि स्पष्ट निकलती है कि यदि कोई अपनी संतान के विषय में अपने कर्त्तव्य को पूर्ण न करे, न कर सके वा करनेवाला न रहे तो वह कार्य राजा करे। बस यही तात्पर्य लेकर राजा को विशेष आज्ञा है कि वह प्रजावर्ग के पुत्र पुत्रियों के रक्षणशिक्षणादि का प्रबन्ध करे। वह प्रबन्ध दो प्रकार से हो सकता है (१)—पितृवर्ग जीवित और योग्य हों तो जाति वा राजा का नियम रहे जिसे वे उल्लंघन न करें और (२)—दूसरा यह कि उनके अभाव में राजा स्वयं करे। अब बताइये स्वामीजी ने इसमें क्या मिला दिया। ८ वर्ष का तात्पर्य मनु के उन श्लोकों से निकल आता है जो उपनयन की अवस्था बताते हुवे मनु ने लिखा है। कि—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् । इत्यादि मनु २।३६

कन्याओं को यज्ञोपवीत न होने से गायत्रीमन्त्र पढ़ने का अधिकार नहीं तो लाजाहोम के समय "इयं नार्य्युपब्रूत लाजानावपन्तिका आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयोमम स्वाहा"। और प्रतिज्ञा के समय विवाह में "समञ्जन्तु विश्वेदेवाः" इत्यादि वेदमन्त्रों के पाठ का अधिकार कहां से आ जायगा और स्त्री पुरुष की सहधर्मिणी कैसे मानी जायगी और—

ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् । अथर्व०

के अनुसार कन्या ब्रह्मचारिणी होवें यह पाया जाता है, तब आप कन्याओं के ब्रह्मचर्य वेदाध्ययन से ऐसे क्यों चौंकते हैं। क्या आप के पास कोई वेद का प्रमाण है कि स्त्रियों को ब्रह्मचर्य और वेदपाठ का अधिकार नहीं ? द्विज कहने से जब कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का आप भी ग्रहण करते हैं और द्विज का अर्थ दो जन्मवाला है अर्थात् एक माता के उदर से प्रकट होना दूसरा गुरुकुल में प्रकट होना, तो हम पूछते हैं कि जब जन्म और संस्कार इन दोनों से द्विज बनता है और आप के मत में कन्या का द्विजत्वसम्पादक संस्कार नहीं होता तो—

उद्वहेत द्विजोभार्य्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥

जिसका अर्थ स्पष्ट है कि द्विज, लक्षणवती सवर्णा भार्या से विवाह करे। सवर्णा का अर्थ समानवर्णवाली है। वर्ण ४ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हैं जिनमें से पहले ३ द्विज इसलिये हैं कि उनके दो जन्म होते हैं तो बताइये तो सही कि कन्या के दो जन्म नहीं हुवे और जननी और गायत्री इन दो माताओं को जो कन्या प्राप्त नहीं हुई वह द्विज कैसे होगी और जो कन्या द्विज नहीं वह द्विजों की सवर्णा कैसे हो सकती है और सवर्णा से द्विजों का विवाह विहित है तो आप के मत में द्विजों को कन्या ही न मिलेगी। अब स्त्रियों के वेदपाठाधिकार में प्रमाण सुनिये—

१—इमं मन्त्रं पत्नी पठेत् ॥ श्रौतसूत्र ॥

इस मन्त्र को पत्नी पढ़े।

२—वेदं पत्न्यै प्रदाय वाचयेत् ॥ श्रौतसूत्र ॥

स्त्री को पुस्तक देकर वेद बँचवावे।

३—अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्य्ये बभूवतुमैत्रेयी च
कात्यायनी च तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव।

बृहदारण्यक। याज्ञवल्क्य की दो स्त्री थीं मैत्रेयी और कात्यायनी इनमें मैत्रेय ब्रह्मवादिनी थी। यदि स्त्रियों को वेदपाठ का अधिकार नहीं तो मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी कैसे हुई।

४ शङ्कर दिग्विजय में मण्डनमिश्र की स्त्री ने शङ्कराचार्य से कहा कि—

अपि तु त्वयाद्य न समर्गजितः प्रथितागुणीर्मम पतिर्यदहम्।
वपुरर्द्धमस्य न जिता मतिमन अपि मां विजित्य कुरु शिष्यमिमम् ॥५६।

हे शङ्कराचार्य! आप ने मेरे प्रसिद्धागुणी पति को अभी पूर्ण नहीं जीता क्यों कि उसका अर्ध देह मैं हूं जब मुझे भी आप जीत लें तब मेरे पति को शिष्य करें।

शङ्कराचार्य ने उत्तर दिया कि :—

यदवादिवादकलहोत्सुकतां प्रतिपद्यते हृदयमित्यबले।
तद मा[illegible]सीम[illegible]महिलाजने नकथयन्तिकथाम् ॥ ५९ ॥

तुम शास्त्रार्थ करने को चाहती हो परन्तु महायशस्वी लोग स्त्री से शास्त्रार्थ नहीं करते।

उसने उत्तर दिया कि—

स्वमतं प्रभेत्तुमिह यायतते सवधू जनोस्तुयदिवास्त्वितरः।
यतितव्यमेव खलु तस्यजये निजपक्षरक्षणपरैर्भगवन् ॥६०॥

भगवन्! जो अपने मत का खण्डन करे चाहे स्त्री हो वा पुरुष, अपने पक्ष की रक्षा में तत्परों को अवश्य उसके विजय करने में प्रयत्न करना उचित है।

इसके अतिरिक्त उस समय विद्याधरी ने प्राचीन समय में भी स्त्री पुरुषों में शास्त्रार्थ होने का प्रमाण दिया कि—

अतएवगार्ग्यभिधयाकलहसहयाज्ञवल्क्यमुनिराडकरोत् ।
जनकस्तथासुलभयाऽवलयाकिममीभवन्ति न यशोनिधयः ॥६१॥

इसीलिये याज्ञवल्क्य ने गार्गी से और जनक ने सुलभा से शास्त्रार्थ किया था। क्या ये लोग यशस्वी न थे ? ॥६१॥

इस पर शङ्कराचार्य को उत्तर न आया और शास्त्रार्थ स्वीकार करना पड़ा। और उस शास्त्रार्थ में श्रुति (वेद) के वाक्यों पर विवाद हुआ। यथा—

अथसाकथा प्रववृतेस्मतयोरुभयोः परस्परजयोत्सुकयोः ।
मतिचातुरी रचितशब्दभरी श्रुतिविस्मयी कृतविचक्षणयोः ॥ ६३ ॥

तब वह शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। जिसमें एक दूसरे के विजय करने को उत्सुक था और बुद्धिचातुर्य, शब्दगाम्भीर्य और श्रुतिप्रमाण आश्चर्यदायक थे ॥६३॥

अब बताइये कि स्त्री को वेद पाठाधिकार न था तो वेदविषयक शास्त्रार्थ विद्याधरी गार्गी और सुलभा ने कैसे किया। परन्तु हां, इतना पता अवश्य लगता है कि शङ्कराचार्य जो प्रथम शास्त्रार्थ करने में हिचकिचाये और टालना चाहा, इससे प्रतीत होता है कि उस समय जब कि शङ्कराचार्य हुवे तब भी स्त्री जाति की अप्रतिष्ठा आरम्भ हुई थी, परन्तु जब का विद्याधरी ने प्रमाण दिया कि जनक और याज्ञवल्क्य ने स्त्रियों से शास्त्रार्थ किया उस उत्तम समय में निस्सन्देह आप जैसे सङ्कीर्ण हृदयों का जन्म न होने से देश का सौभाग्य था कि स्त्रियों को भी वेदपाठाद्यधिकार समान ही प्राप्त थे।

५—इङश्च। अष्टाध्यायी ३। ३। २१ महाभाष्यम्—इङश्चेत्यपादाने स्त्रियामुपसंङ्ख्यानं कर्तव्यम्। इङश्चेत्यत्रापादाने स्त्रियामुपसङ्ख्यानं कर्तव्यं तदन्ताच्च वा ङीष्वक्तव्यः। उपेत्याधीयतेऽस्या उपाध्यायी, उपाध्याया ॥

देखिये इस उदाहरण में उपाध्यायी वा उपाध्याया उस स्त्री का नाम है जिसके पास जाकर (लड़कियां) वेद पढ़ें। यदि स्त्री को पढ़ने का अधिकार नहीं तो पढ़ाने का अधिकार कहां से हो गया। और यदि कन्या पाठशाला की उपाध्याया वा उपाध्यायी से कन्यायें पढ़ने को जावें तो क्या लड़के उनसे पढ़ने को जावें ? क्या कहीं

यह लेख है कि लड़के लोग उपाध्याय से न पढ़ कर उपाध्यायी से पढ़ा करें ? य
नहीं तो कन्या ही "उपेत्याधीयते" अर्थात् उपनीत होकर पढ़े, यह तात्पर्य
और यह पाया गया कि कन्यायें भी उपाध्यायी के पास वैसे ही उपनीत होती
जैसे लड़के उपाध्याय के पास।

द—अनुपसर्जनात्। अष्टा० ४। १। १४॥
महाभाष्यम्—आपिशलमधीते ब्राह्मणी आपिशला॥

इससे सिद्ध है कि स्त्रियां भी गुरुकुल में जाकर वेदशाखा आदि पढ़ती थीं
इस सूत्र पर दूसरा उदाहरण है कि :—

७—काशकृत्स्निना प्रोक्ता मीमांसा काशकृत्स्नी।
काशकृत्स्नीमधीते काशकृत्स्ना ब्राह्मणी॥

इससे भी सिद्ध है कि काशकृत्स्न ऋषिकृत मीमांसा को पढ़नेवाली ब्राह्मण
का नाम काशकृत्स्ना होता था। मीमांसा शास्त्र में वैदिक मन्त्रों वा कर्मों व
मीमांसा होती है।

इन प्रमाणों से सिद्ध हो गया है कि आर्ष समय में कन्यायें उपाध्यायी के पास उप
नीत होती थीं और उपाध्यायी उन्हें पढ़ाती थीं। पत्नी यज्ञ में मन्त्र पाठ करती थीं
वधू विवाह में मन्त्र पाठ पूर्वक लाजाहोम करती हैं। तो अवश्य है कि उनका उप
नयन मन्त्रोपदेश और स्वाध्यायादि होता था जैसा कि स्वामीजी ने वेदशास्त्रानुकू
लिखा है।

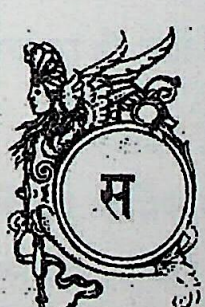

समीक्षा—द्वितीय समुल्लास में गर्भ में पढ़ा कर विद्वान् कर दिया औ
अब पाठशाला में भेजते हैं क्या बालक जो गर्भ में पढ़ा था वह भू
जाता है स्वामी जी भी अजब किस्म के मनुष्य हैं दो बार विद्वा
करते हैं और आगे दो ही बार उपनयन (जनेऊ) पहिना देंगे विद्वान् क
विद्वान् करना इस के ऊपर आर्य समाजियों को विचार करना चाहिए

स्वामी जी लिखते हैं कि बालकों को आभूषण न पहिनाये जावें क्योंकि इनसे
देहाभिमान और विषयासक्ति बढ़ती है और कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है। यदि
आभूषणों से देहाभिमान, विषयासक्ति और मृत्यु होती है तो रुपये के संचय करने

से भी यह तीनों काम होते हैं तो क्या संसार रुपये का भी संचय करना छोड़ दे ? यदि सोने चांदी को पास में रखने से देहाभिमानादि बढ़ते हैं तो फिर स्वामी जी ने रुपये का संग्रह क्यों किया ? यदि आभूषणों से देहाभिमान बढ़ता है और विषयासक्ति होती है तो वस्त्रों से भी इन दोनों का होना सम्भव है यदि ऐसा है तो स्वामी दयानन्दजी ने दिगम्बर वेष को छोड़ कर कोट बूट पहिन, घड़ी लगा, छड़ी हाथ में ले, हुक्के में चांदी की मुहनाल लगा कर संसारी पदार्थों के सुख का अनुभव किया तो क्या इतने पर भी स्वामी जी को देहाभिमान और विषयासक्ति ने न सताया होगा ? आभूषणों से देहाभिमान और विषयासक्ति तथा मृत्यु का होना कौन वेद मंत्र में लिखा है इसका [illegible] समाजियों को लगाना चाहिए। हम को तो मालूम होता है कि यूरुप वाले आभूषण नहीं पहिनते इसी कारण से आभूषणों का निषेध स्वामी दयानन्दजी ने वेद से निकाला है। यूरुपी लोग बढिया बढिया वस्त्र पहिनते हैं इसी कारण से स्वामीजी ने वेद में वस्त्रों का निषेध नहीं पाया।

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी विद्या और विद्या पढ़नेवाले तथा पढ़ानेवालों की प्रशंसा लिखते हैं और उसमें "विद्या विलास मनसः" यह श्लोक प्रमाण देते हैं क्या वेद में यही ज्ञान है कि वह विद्वानों की या खूबसूरतों की प्रशंसा करे यदि है तो स्वामी दयानन्द को प्रमाण देना चाहिए था यदि वेद में नहीं है तो फिर वेद का बहाना लेकर अपने मन के भाव क्यों लिखे जाते हैं और "विद्या विलास मनसः" जो स्वामी दयानन्द ने प्रमाण में दिया है इसको तो समाज उस दशा में भी प्रमाण नहीं मान सकती जब कि नौ सौ [illegible]नन्यानव (९९९) स्वामी दयानन्द और आकर समझावे या खास निराकार ही आकर कहे क्योंकि यह श्लोक आर्य समाजियों के धार्मिक ग्रन्थ का ही नहीं है।

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि अध्यापक और अध्यापिका वे ही पढ़ा सकें जो धार्मिक और विद्वान् हों। बात उत्तम है और मानने के लायक है और हम इस को स्वीकार करते हैं और इसके लिखने वाले स्वामी दयानन्द को धन्यवाद देते हैं किन्तु पूछना यह है कि यह भाषा कौन वेद मंत्र का अनुवाद है और नियोगी पुरुष तथा नियोगिनी स्त्री अध्यापक या अध्यापिका हों या नहीं ये धार्मिक हैं या अधार्मिक इसका निर्णय समाज को अवश्य कर देना चाहिए हिन्दुओं का वेद क्या है मजमुआ ज़ाबता तालीम ही है कि जिसमें लड़कों का मदरसे में भरती होना

आदि समस्त कानून ही लिखा रक्खा है ।

स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि अष्टम वर्ष में लड़का लड़की को पाठशाला में भेज दें इसके [illegible]प्रसादजी के बिना पूछे ही पं० तुलसीराम प्रमाण लिखते हैं "गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्" क्या खूब रही देना था हिंगाष्टक और दे बैठे अफीम, प्रमाण तो इस बात का देना था कि आठवें वर्ष में लड़का लड़की का पाठशाला भेजना अमुक श्रुति और स्मृति में लिखा है इसका उत्तर न देकर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि ब्राह्मण का उपनयन अष्टम वर्ष में होता है सम्भव है कि पं० तुलसीराम यह सिद्ध करना चाहते हों कि उपनयन के बाद विद्या पढ़ने का अधिकार होता है यदि ऐसा है तब तो स्वामी दयानन्द को यह लिखना चाहिये था कि ब्राह्मण अपने लड़के को अष्टम वर्ष में पाठशाला भेज दे क्योंकि अष्टम वर्ष में ब्राह्मण जाति का ही उपनयन कहा है । पं० तुलसीराम ब्राह्मण जाति के उपनयन का प्रमाण देकर अष्टम वर्ष में सभी जातियों के बच्चों को पोठशाला भेजना चाहते हैं क्या ब्राह्मण के बालक का उपनयन होने पर समस्त जातियों के बालकों के उपनयन का होना मान लिया जावेगा या ब्राह्मण अपने लड़के को उपनयन कराकर पाठशाला भेजे और शेष जाति वैसे ही भेज दें या स्वामी दयानन्द का लेख मानें कि द्विज अपने लड़कों का यज्ञोपवीत कराके पाठशाला भेजें ? यदि पं० तुलसीराम का लेख सत्य है तो फिर समाज या पं० तुलसीराम इसमें श्रुति प्रमाण दें कि अमुक मंत्र में यह लिखा है कि क्षत्रिय आदि बिना ही यज्ञोपवीत के वेद पढ़ा सकते हैं । यदि स्वामी दयानन्द का लेख सत्य है तब तो क्षत्री को ग्यारहवें वर्ष और वैश्य को बारहवें वर्ष में उपनयन करवा कर वेद पढ़ने के लिए भेजना होगा यह मनु की आज्ञा है पं० तुलसीराम ने मनु का आधा श्लोक लिखा है यदि पूरा लिख देते तो यह सब ज्ञान हो जाता पढिये अब हम पूरा लिखते हैं—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥

मनु० अ० २ श्लो० ३६

अर्थ—गर्भ से अष्टम वर्ष में ब्राह्मण का और ग्यारहवें वर्ष क्षत्री का और बारहवें वर्ष वैश्य का उपनयन करें ।

पं० तुलसीराम ने उपनयन के बाद बालकों का पाठशाला भेजना माना और मनु ने क्षत्री के बालक का उपनयन ग्यारहवें वर्ष और वैश्य के बालक का उपनयन बारहवें वर्ष में लिखा इस कारण से क्षत्री और वैश्य के बालक को ग्यारहवें और बारहवें वर्ष में पाठशाला भेजना चाहिये और शूद्र तथा स्त्रियों का उपनयन स्मृतिकारों ने किसी अवस्था में भी नहीं लिखा अतएव शूद्र और स्त्रियों को पाठशाला में नहीं भेजना होगा। अब यह सिद्ध हो गया कि अष्टम वर्ष में समस्त जातियों के बच्चों का पाठशाला में भेज देना स्वामी दयानन्दजी का यह लेख मनगढ़न्त और वेद स्मृतियों के विरुद्ध है।

स्वामी दयानन्दजी यह लिखते हैं कि जो मनुष्य अष्टम वर्ष में अपने लड़के लड़की को पाठशाला में न भेजे उसके लिए राजनियम और जातिनियम होना चाहिये इसमें स्वामी दयानन्दजी मनु के एक श्लोक का आधा भाग प्रमाण में भी देते हैं—

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्।

मनु० अ० ७ श्लो० १५२

स्वामी दयानन्दजी आधा श्लोक प्रमाण में तो देते हैं किन्तु उसका अर्थ नहीं लिखते क्योंकि यदि अर्थ लिख दें तो इस श्लोक में से राजनियम और जातिनियम जो स्वामी दयानन्दजी ने निकाला है वह कूच कर जावेगा। पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र इस प्रकरण के पूरे दो श्लोक लिखकर बतलाते हैं कि इसमें तो राजनियम और जाति नियम का कहीं जिकर भी नहीं। पं० ज्वालाप्रसाद का लेख यह है—

मध्यन्दिनेर्द्धरात्रेवा विश्रान्तोविगतक्लमः।
चिंतयेद्धर्मकामार्थान्सार्धं तैरेकएववा॥
परस्परंविरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम्।
कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥

राजा को योग्य है कि दुपहर आधी रात के समय में जब विश्रामयुक्त हो और शरीर खेद रहित हो उस समय राजा मन्त्रियों सहित व आप ही धर्म काम अर्थ इनका

विचार करै और यह धर्म अर्थ काम जो परस्पर विरुद्ध हैं इनका विरोध दूर करके इनके अर्जन का उपाय अपने कुल की कन्याओं का दान अर्थात् किस स्थान में विवाह करना चाहिये और कुमारों का रक्षण विनयादिक शिक्षा करने का विचार करै ।

इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी जो उत्तर देते हैं वह नीचे लिखा है पढिये--

जब कि आप स्वयं स्वीकार करते हैं कि यह श्लोक राजप्रकरण का है और यथार्थ में है ही तो राजा को अपनी कन्याओं के सम्प्रदान और कुमारों की रक्षा का विशेष विधान करना किस लिये लिखा जब कि प्रत्येक प्रजागणस्थ पुरुष का भी कर्तव्य है कि वह अपनी कन्याओं के सम्प्रदान और कुमारों की रक्षा करें तात्पर्य यथार्थ में यही है कि राजा अपनी प्रजा का पितृ तुल्य रक्षक है इसीलिये आपकी विवाह पद्धतियों में कन्यादान के पूर्व किसको कन्यादान उचित है यह निश्चय करते हुवे, लिखा है कि "अथ कन्यादानं कुर्य्यात्पिता तदभावे माता तदभावे भ्राता तदभावे राजा इत्यादि" अर्थात् कन्यादान में पिता उसके अभाव में माता उसके अभाव में भ्राता उसके भी अभाव में राजा इत्यादि का अधिकार है इससे यह ध्वनि स्पष्ट निकलती है कि यदि कोई अपनी संतान के विषय में अपने कर्तव्य को पूर्ण न करे न कर सके वा करनेवाला न रहे तो वह कार्य राजा करे बस यही तात्पर्य लेकर राजा को विशेष आज्ञा है कि वह प्रजावर्ग के पुत्र पुत्रियों के रक्षणशिक्षणादि का प्रबन्ध करे वह प्रबन्ध दो प्रकार से हो सकता है—(१) पितृवर्ग जीवित और योग्य हों तो जाति वा राजा का नियम रहे जिसे वे उल्लंघन न करें और दूसरा यह है कि उनके अभाव में राजा स्वयं करे अब बताइये स्वामीजी ने इसमें क्या मिला दिया" ।

पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने यह दिखलाया कि इसमें यह कहां लिखा है कि राजनियम और जातिनियम से काम लिया जावे यह तो स्वामी ने अपनी तरफ से मिलाया और अज्ञ मनुष्यों के बहकाने के लिये श्लोक लिख दिया। पं० तुलसीरामजी इस पर मौन हो गये पं० तुलसीरामजी ने इतना साहस भी न किया कि स्वामी दयानन्द कृत (इस श्लोक के) अर्थ की पुष्टि में लेखनी भी उठावें। मामला तो यह यहां पर ही तै हो गया और पाठकवर्ग यह भली भांति जान गये कि वास्तव में इस श्लोक का अर्थ वही ठीक है जो मिश्र ज्वालाप्रसादजी ने लिखा है।

पं० तुलसीरामजी लिखते हैं जब कि आप स्वयं स्वीकार करते हैं कि यह श्लोक राजप्रकरण का है और यथार्थ में है ही तब हमको पं० तुलसीराम के लेख पर हँसी आ जाती है यह तो वही बात हुई कि किसी मनुष्य ने कहा कि ताजीरात हिंद दफ़ा ३४ में यह लिखा है कि राजा प्रजा का समस्त द्रव्य छीन ले इस के ऊपर दूसरा मनुष्य यह उत्तर दे दे कि दफ़ा ३४ में तो उन मनुष्यों पर जुरमाना करना लिखा है जो मनुष्य म्युनिसिपल्टी के इलाके में पेशाब आदि करके सफाई को मिटाते हैं इसको सुन कर वह पहिला [illegible] कि देखिये यह ताजीरात हिंद की दफ़ा ३४ में ही तो लिखा है यही तो हम कहते थे हमने क्या भुस मिला दिया। बस हूबहू यही हाल पं० तुलसीरामजी का है पं० तुलसीरामजी यह कहते हैं कि यह तो तुम भी मानते हो कि श्लोक राजप्रकरण का है हम पं० तुलसीराम से यह पूछते हैं कि उदाहरण में यह बहस थी कि दफ़ा ३४ में क्या लिखा है कि यह बहस थी कि ताजीरात हिंद में दफ़ा ३४ ही नहीं इसी प्रकार पं० ज्वालाप्रसाद यह कहते थे कि यह श्लोक राजप्रकरण का नहीं था यह कहते थे कि स्वामी दयानन्द ने जो अर्थ किया है वह इसका अर्थ नहीं। विवाद अर्थ पर है न कि प्रकरण पर।

फिर पं० तुलसीराम यह दिखलाते हैं कि तुम्हारी तो विवाह पद्धतियों में भी लिखा है क्या हमारी विवाह पद्धतियों को ही प्रमाण मानकर स्वामी दयानन्दजी ने यह लेख सत्यार्थप्रकाश में लिखा है क्या हमारी विवाह पद्धतियां समाजको प्रमाण हैं? यदि ऐसाही है तो स्वामी दयानन्दजीने संस्कार विधि अलग बनाकर डेढ़ चावल की खिचड़ी क्यों पकाई? पृथक् संस्कार विधि बनने से हम यह समझतेथे कि हमारी विवाह पद्धतियां समाज को प्रमाण नहीं होंगी परन्तु खुशी की बात है कि आज पं० तुलसीरामजीने यह दिखला दिया कि तुम्हारी विवाह पद्धतियां समाजको प्रमाण हैं। इस लेखको देखकर हम समाजसे यह आशा रखते हैं कि स्वामी दयानन्दने संस्कार विधि में जो जो लेख हमारी विवाहपद्धतियों के विरुद्ध लिखे उन को निकाल देगी।

किन्तु हमारी विवाहपद्धतियां प्रमाण मानने पर भी स्वामी दयानन्दजी के इस लेख की सत्यता या पुष्टि नहीं होती क्योंकि विवाह पद्धतियों में यह लिखा है कि कन्या का पिता कन्यादान करे यदि पिता न हो तो माता करे माता न हो तो भ्राता करे यदि भाई न हो तो राजा कन्यादान करे। पद्धतियों में कन्यादान की आज्ञा बतलाई है न कि राजनियम बना कर कन्याओं के पढ़ाने की विधि।

स्वामी दयानन्दजा न तो उस श्लोक का यही अर्थ लिखा था कि लड़का लड़कियों की शिक्षा के लिये राजनियम और जातिनियम बने किन्तु पं० तुलसीराम ने इसी श्लोक का अर्थ १८ पंक्ति में लिखा है। श्लोक क्या है ज्ञान का भंडार है जो चाहो इसी श्लोक में से अर्थ कर लो। पं० तुलसीरामने जो अर्थ इस श्लोकका लिखा है उस अर्थ को कोई भी लिखा पढ़ा मनुष्य यह सिद्ध नहीं कर सकता कि यह इस श्लोक का अर्थ है और जो कुछ पं० तुलसीराम ने लिखा है इस लेख की पुष्टि में कोई भी मनुष्य वेद स्मृति का प्रमाण नहीं दे सकता सम्भव है पं० तुलसीराम ने यह समझ रक्खा हो कि जो कुछ भी हम लिख देंगे वही संसार को प्रमाण हो कर वेद कहलाने लगेगा पं० तुलसीराम के लेख में यदि कोई आर्यसमाजी भाई वेदादि का प्रमाण देकर उसकी पुष्टि करेगा तो हम उसके अहसानमन्द होकर उसको धन्यवाद देंगे परन्तु क्या [illegible] कोई कलम उठावे।

स्वामी दयानन्दजी ने यह लिखा था कि द्विज अपने लड़के का यज्ञोपवीत करके और लड़कियों का यथा योग्य संस्कार करके पाठशाला में भेज दें और आगे स्वामी दयानन्दजी ने कन्याओं को गायत्री पढ़ने का भी अधिकार दे दिया इस के ऊपर पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र लिखते हैं कि "जब स्त्रियों का यज्ञोपवीत होता ही नहीं तो फिर उनको गायत्री पढ़ने का अधिकार कैसा? यहां आप ने गायत्री पढ़ना लिख दिया तो यज्ञोपवीत भी लिख देते समाजी तो आप की बात को पत्थर की लकीर मानते हैं"। पं० तुलसीरामजी इसके उपर लिखते हैं कि यदि स्त्रियों को गायत्री मंत्र पढ़ने का अधिकार नहीं तो लाजा होम के समय "इयंनार्य्यु पब्रूते" और प्रतिज्ञा के समय विवाह में "समञ्जन्तु विश्वेदेवाः" इत्यादि वेद मंत्रों के पाठ का अधिकार कहां से [illegible] ऊपर हमारा यह उत्तर है कि "इयंनार्य्यु पब्रूते" यह मंत्र वेद का मंत्रही नहीं संस्कारविधि में स्वामी दयानन्दजी भी अपनी लेखनी से इसको पारस्कर गृह्यसूत्र का मंत्र लिखते हैं। जब यह वेद का मंत्रही नहीं तब फिर इसके उच्चारणसे वेद पढ़ने की सिद्धि आप कैसे करते हैं फिर "समञ्जन्तु विश्वेदेवाः" इस मंत्र का जो प्रमाण दिया है समस्त गृह्यसूत्र और समस्त पद्धतियां इस बात को कह रही हैं कि यह मंत्र वर के उच्चारण का है केवल स्वामी दयानन्दजी ने माना है कि यह मंत्र लड़का लड़की दोनों पढ़ें। स्वामी दयानन्द को छोड़कर जब कि किसी ने भी इस मंत्र को कन्या के उच्चारण का नहीं लिखा फिर हम कैसे मान लें कि इस मंत्र को कन्या उच्चारण करती है यह शक्ति तो समाज में ही है कि चाहे

वेद का लेख हो या ब्रह्मा से लेकर आज तक के सभी विद्वानों का लेख हो दयानन्द के लेख से न मिलने पर उसको तिलांजली दे दी जाती है। हम में न तो यह शक्ति है कि सब के लेखों पर पानी फेर सकें और न सब के विरुद्ध स्वामी दयानन्द के लेख को प्रमाण कोटी में ला सकें स्वामी दयानन्द के लेख को आप प्रमाण मानते हैं हम नहीं, आप हमारे मानने योग्य प्रमाण दें कि अमुक सूत्रकार या पद्धतिकार ने इस मंत्र का कन्या के मुख से उच्चारण होना लिखा है सो ऐसा कहीं लिखा नहीं विवाद समाप्त समझो।

आगे पं० तुलसीराम कन्या के गुरुकुल भेजने और वेद पढ़ने का एक और प्रमाण लिखते हैं "ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" इस प्रमाण से पंडित तुलसीराम यह सिद्ध करते हैं कि कन्या ब्रह्मचर्य्य धारण कर के युवान पति को प्राप्त होती है। इसके उपर हमारे दो उज्र हैं एक तो यह कि यह मंत्र अथर्व वेद की कौथुमी शाखाका है। स्वामी दयानन्दजी शाखाओंको वेद नहीं मानते। स्वामी दयानन्द जी मंतव्यामंतव्य प्रकरण में लिखते हैं कि शाखा स्वतः प्रमाण नहीं क्योंकि वे जैमिनि आदि ऋषियों की बनाई हैं जब कि शाखा स्वामी दयानन्द और आर्यसमाजको प्रमाण नहीं तो फिर इस कौथुमी शाखा के प्रमाण को कौन मानेगा। द्वितीय यह कि इसमें कन्याओं के ब्रह्मचर्य का कहीं भी जिक्र नहीं इसका सीधा सीधा अर्थ यह है कि—

(कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्य्येण) ब्रह्मचर्य्य से (युवानम्) युवान (पतिम्) पति को (विन्दते) प्राप्त होती है।

यहां पर युवानं पतिं का विशेषण है और युवानं पद में ब्रह्मचर्य्य हेतु है इसी कारण से यहां पर ब्रह्मचर्य्येण यह हेतु में तृतीया विभक्ति है अर्थात् ब्रह्मचर्य से युवान हुए पति को कन्या प्राप्त होती है। यहां पर ब्रह्मचर्य्यका सम्बन्ध युवान पद से है न कि कन्या से। जब ब्रह्मचर्य्यका सम्बन्ध कन्यासे है ही नहीं तब फिर जबरदस्ती से कन्या के साथ में उसका सम्बंध कर के प्रमाण में देना क्या यह तुलसीराम का आग्रह नहीं है क्या ऐसे ऐसे आग्रहों से [illegible] उसका निर्णय हुआ है?

यदि कोई समाजी यह कहे कि तुम ही आग्रह करते होगे और कन्याओं के ब्रह्मचर्य तथा वेद पढ़ना पं० तुलसीराम का ही लिखा सत्य होगा इस शंका को दूर करने के लिये हम अपने किये अर्थकी पुष्टिमें दो प्रमाण और देते हैं। प्रथम तो यह

कि मनु ने कन्याओं का विवाह आठ वर्ष की अवस्था से बारह वर्ष की अवस्था तक में लिखा है तो क्या गुरुकुल में पढ़ते पढ़ते बिनाही वेद के समाप्त किये विवाह हो जायगा, (२) स्त्रियों के संस्कारमें आचार्य को भी वेद मंत्रके बोलनेका मनुजी निषेध करते हैं स्त्री का वेद पढ़ाना तो दरकिनार रहा स्त्रियों के संस्कार में आचार्य द्वारा वेद का बोला जाना भी निषेध कर दिया है अब आपही मिला सकते हैं कि तुलसीराम का लेख मनु के विरुद्ध है या पं० ज्वालाप्रसाद का (३) मनुजी ने स्त्रियों का वेद का पढ़ना और गुरुकुल में जाना और अग्निहोत्र करना इन तीनों का कतई निषेध कर दिया है यह हम आगे लिखेंगे अब पाठक निर्णय कर सकते हैं कि कौथुमी शाखा के मंत्र का अर्थ हमारा सत्य है या पं० तुलसीराम का।

कन्याओं के वेद पढ़ाने में पं० तुलसीराम एक और प्रमाण लिखते हैं कि "उद्वहेत द्विजोभार्य्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्" पं० तुलसीराम का अभिप्राय यह है कि द्विज जो है वह सवर्णा स्त्री के साथ विवाह करै और स्त्री सवर्णा उसी समय हो सकती है जब कि उसका उपनयन हुआ हो और वह वेद पढी हो। इसके ऊपर प्रथम तो हम यही कहेंगे कि यह प्रमाण जो पं० तुलसीराम ने दिया है यह किसी स्मृति का है कि जिसको आर्यसमाज प्रमाण ही नहीं मानती जब आर्यसमाज इसको प्रमाण नहीं मानती तो फिर इसको प्रमाण में देना क्या भूल नहीं है? इसके अलावा इसमें रक्खा ही क्या है यह श्लोक तो जन्म से वर्ण मान कर लिख रहा है अर्थात् इसका अभिप्राय यह है कि ब्राह्मण ब्राह्मण की लड़की के साथ और क्षत्री क्षत्री की लड़की के साथ और वैश्य वैश्यकी [illegible] विवाह करै हमें नहीं मालूम कि इस श्लोक में कन्याओं का उपनयन और वेद पढ़ना कैसे निकल आया जो पति करे वही स्त्री करे तब भी सवर्णा होती है तो वकील की स्त्री वकालत करने परही सवर्णा होगी। वकीलों को ऐसी स्त्रियां मिलेंगी नहीं अतएव इनको तो कोरा ही रहना पड़ेगा। डिप्टी की स्त्री डिप्टी होनेपर सवर्णा होगी। हिन्दुस्तानको यूरुप बनाने का वेदने ठेका ले लिया। वाह रे वेद और वेद के अर्थ बतानेवाले! इसके आगे पं० तुलसीराम कन्याओं के वेद पढ़ने में सात प्रमाण और देते हैं—

(१) "इमं मन्त्रं पत्नी पठेत" अर्थात् इस मंत्र को पत्नी पढे इससे पं० तुलसीराम स्त्री को वेदका पढ़ाया जाना सिद्ध करते हैं। इसका उत्तर यह है कि श्रौतसूत्र आर्य समाज का धार्मिक ग्रन्थ नहीं है। आर्यसमाज श्रौतसूत्र को त्रिकाल में भी

मानने को तैयार नहीं यदि आर्यसमाज श्रौतसूत्र को प्रमाण में लेती है तब तो श्रौतसूत्रों में लिखा मूर्तिपूजन और मृतक पितरोंका श्राद्ध भी करना पड़ेगा। इस सूत्र में पत्नीको जिस मंत्रके उच्चारणकी आज्ञा है वह मंत्र वेदका नहीं है किन्तु सूत्रोक्त है पं० तुलसीरामको ऐसा प्रमाण देना चाहिए जिससे स्त्रीका वेद पढ़ना सिद्ध हो।

(२) "वेदं पत्न्यै प्रदाय वाचयेत" इस प्रमाण के लिए हमने बार बार श्रौत सूत्रों को देखा परन्तु श्रौतसूत्रों में कहीं पर भी इस मंत्र का पता न चला। हमारा अनुमान है कि जिस प्रकार रुपये इकट्ठे करने के लिए स्वामी दयानन्दजी ने मनु के नाम से "विविधानि च रत्नानि विविक्तेषु पणादयेत्" आधा श्लोक गढ़ लिया था और विधवा विवाह चलाने के लिये अखिलानन्द ने मनु के नाम से दो तीन श्लोक गढ़कर वैधव्य विध्वंसक चम्पू में विधवा विवाह बतानेवाले लिख दिये हैं इसी प्रकार यह मंत्र भी श्रौतसूत्र के नाम से गढ़ कर तैयार किया गया है यदि कोई आर्यसमाजी किसी समय में इस मंत्र को श्रौतसूत्र में दिखलायेगा तो हम उसका धन्यवाद देते हुए प्रीति के साथ तोषदायक उत्तर देंगे।

(३) पं० तुलसीराम बृहदारण्यक उपनिषद् का प्रमाण देकर याज्ञवल्क्य की धर्मपत्नी मैत्रेयी को ब्रह्मवादिनी लिखते हैं। पं० तुलसीराम को यह विचारना चाहिये था कि आर्यसमाज न तो हिन्दुओं के इतिहास को ही सत्य मानती है और न बृहदारण्यक ग्रन्थ को ही प्रमाण कोटी में लेती है फिर आर्यसमाजी किस आधार पर निर्णय कर सकते हैं कि स्त्री को वेद पढ़ना चाहिए कि नहीं (२) ब्रह्मवादिनी का अर्थ तो यह है कि (ब्रह्म) 'ईश्वर को कहनेवाली' ईश्वर का ज्ञान तो बिना वेद के वेदान्त दर्शन आदि से भी हो सकता है और यदि पं० तुलसीराम मैत्रेयी का वेद पढ़ना मानते हैं और असली सिद्धान्त स्त्री का पाठशाला में जाकर वेद पढ़ना बतलाते हैं तो फिर पं० तुलसीराम यह प्रमाण दें कि मैत्रेयी किस अवस्था में, किस गुरुकुल में, किस आचार्य ने उपनयन कराकर कितनी संहिताओं की विदुषी करदी थी? एक बात और भी कहना है कि केवल इतिहास से धर्म का निर्णय नहीं हुआ करता यदि केवल इतिहास से ही धर्म का निर्णय होजावे तो फिर स्मृतियों से कौन काम रहेगा।

(४) प्रमाण पं० तुलसीरामजी यह देते हैं कि मंडन मिश्र की स्त्री विदुषी थी इसका उत्तर यह है कि क्या स्वामी दयानन्दने स्त्रियों का वेद पढ़ाना इसीलिये

लिखा है कि मंडन मिश्र की स्त्री विदुषी थी क्या आज आर्यसमाज ने शंकर दिग्विजय को स्वतः प्रमाण मान लिया है ? क्या आनन्द की बात है कि यदि समाज का काम अटक जावे तो ऐसी दशा में उन ग्रन्थों को भी स्वतः प्रमाण मान लिया जाता है कि जिनका खंडन समाज रात दिन करती है फिर शंकर दिग्विजयके स्वतः प्रमाण मानने से भी तो कार्य सिद्धि नहीं होती। मनु इसका विरोध करते हैं मनु कहते हैं कि केवल इतिहास से धर्म का निर्णय मत करो, किन्तु—

वेदःस्मृतिःसदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधंप्राहुः साक्षाद्धर्मस्यलक्षणम् ॥

मनु अ० २ श्लो० १२

वेद, धर्मशास्त्र, सदाचार, और अपने आत्माकी प्रियता इन चार प्रकार से धर्म का निर्णय करो। प्रथम देखो इस विषय में वेद की क्या आज्ञा है जब वेद की आज्ञा मिल जावे तब फिर धर्मशास्त्र को देखो जब धर्मशास्त्र की आज्ञा मिल जावे तब फिर सदाचार एतिहासिक चरित्र देखो फिर उस में अपने मनकी प्रियता देखो इन चार कायदों से धर्म का निर्णय होता है। वेद में न तो मनुष्यों का वेद पढ़ना बतलाया और न स्त्रियों का। वेद से दूसरा नम्बर धर्मशास्त्र का है धर्मशास्त्रने यह बतलाया कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य कुल में उत्पन्न पुरुष अपने आचार्य कुल में बास करें और वेद पढ़ें [illegible] में उत्पन्न हुई कन्या आचार्य कुल में बास न करें उपनयन न पहिनें और वेद न पढ़ें जब कि धर्मशास्त्र ने स्त्रियों के वेद पढ़ने का निषेध कर दिया तब फिर उसको इतिहास उड़ा नहीं सकता। स्मृति आज्ञा इतिहास से सर्वदा प्रमाण रहती है जहां पर इतिहास और धर्मशास्त्र में विवाद होगा वहांपर धर्मशास्त्र मानना होगा। धर्मशास्त्रने स्त्रियों के पढ़ने का निषेध कर दिया है अतएव इतिहास में स्त्रियों के विदुषी मिलने पर भी स्त्रियों का पढ़ाया जाना यह धर्म नहीं है।

इसके आगे पं० तुलसीरामजी तीन प्रमाण व्याकरण के देते हैं जिनसे स्त्रियों का विदुषी होना सिद्ध होता है किन्तु वेदज्ञाता होना सिद्ध नहीं होता। यहां पर पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने स्त्रियों के वेद पढ़ाने पर तर्क की है न कि अक्षर मात्र पर सो तो पं० तुलसीरामजी सिद्ध नहीं कर सके कि अमुक ग्रन्थमें स्त्रियों का वेद पढ़ना

लिखा है। पं० तुलसीरामने लेख की समाप्ति करते हुए यह भी लिख दिया कि कन्याओं का उपनयन होता था यदि कन्याओं का उपनयन होना वास्तव में वेद विधि है तो फिर वर्तमान आर्यसमाज क्यों नहीं करती इस के अलावा इसी प्रकरण में स्वामी दयानन्द ने द्विज जाति के लड़कों का यज्ञोपवीत तो बतलाया और द्विज जाति की लड़कियों का यज्ञोपवीत नहीं बतलाया और तुलसीरामजी बतलाते हैं तो इन दो में से वर्त्तमान आर्यसमाज को किस की आज्ञा माननीय है मुझे आशा है कि इसका निर्णय प्रतिनिधियां अवश्य करेंगी।

इसके आगे स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि उपनयन संस्कार (घर और आचार्य कुल में) दो बार होना चाहिये। स्वामी दयानन्द के लेख को देखकर हँसी आये बिना नहीं रहती। यज्ञोपवीत संस्कार का दोबार होना वेदादि शास्त्रमें कहींपर त्रिकाल में भी नहीं मिल सकता न मिलने परही शास्त्र की आज्ञा न रहने पर भी स्वामी दयानन्द के इस लेख को दो लाख समाजी सत्य मानते हैं क्या बात है या तो ये संस्कृत नहीं जानते और नहीं तो इनका खयाल यही होगा कि "बाबा वचनं प्रमाणम्"। यदि हम यही समझ लें कि हमारा आक्षेप करना व्यर्थ है और उपनयन संस्कार दोही बार होता है तो फिर आर्यसमाजी भाई इसका प्रमाण क्यों नहीं देते या अपने बालकोंका दो बार उपनयन क्यों नहीं करवाते? यदि इनको स्वामी दयानन्द के लेखानुसार दो बार उपनयन करने में उज्र है तो क्या यह सिद्ध नहीं होता कि इसको तो आर्यसमाजी भी नहीं मानते। जब यह आर्यसमाजियों को भी अमान्य है तो इसका सत्यार्थप्रकाश से निकाल देना कोई पाप है। पं० ज्वालाप्रसादजी ने इसपर आक्षेप किया किन्तु पं० तुलसीरामजी ने न तो उत्तर दिया और न उसका अयोग्य होनाही स्वीकार किया। प्रेस की अशुद्धता का बहाना लेकरही निकाल देते कुछ भी न करना क्या यह पक्षपात नहीं इन आचारणों से तो प्रलय तक भी धर्म निर्णय न होगा।

अब इसके आगे स्त्री के उपनयन तथा आचार्य कुल में वास और वेद के पढ़ने का विचार करता हूँ किन्तु इस विचार से प्रथम कुछ उपयोगी बातों का लिखना उचित और आवश्यकीय समझता हूँ।

आज भी संसार में प्रत्येक जाति अपने चार भाग रखती है और इन चारों भागों के पृथक् पृथक् लियाकत, ताकत, तिजारत, खिदमत ये चार काम हैं इसी प्रकार

हिन्दू जाति में भी चार भागों के चार काम हैं किन्तु फर्क इतना है कि और और जातियां इन भागों को कर्म के अनुसार मानती हैं किन्तु हिन्दू जाति ने इसको जन्म से रक्खा है।

इस में बहुत कारण हैं उनको मैं वर्ण व्यवस्था में लिखूंगा केवल कुछ आवश्यकीय बात लिखता हूं—प्राचीन ऋषि मुनियों ने इसके ऊपर बहुत गहिरे विचार कर के यह फल निकाला था कि ब्राह्मण का लड़का जिस अल्प समय में आसानी के साथ जैसा वेद का विद्वान् हो सकता है वैसा अन्य वर्ण का नहीं क्योंकि उस को उठते, बैठते, खाते, बात करते, सर्वदा वेद के अभिप्रायों को सुनने या जानने का मौका मिलता रहता है उसके पिता आदि इसी काम को करते रहते हैं। इसी प्रकार क्षत्री आदि के बालकको अपने अपने काम में निपुण होने की बड़ी भारी आसानी मिलती रहती है दूसरे पिता आदि की प्रकृति का प्रभाव भी पुत्र के ऊपर अवश्य पड़ता है इत्यादि बातों को विचार कर मन्वादि ऋषियों ने जन्म से वर्ण व्यवस्था कायम कर दी। लियाकत (पढ़ने पढ़ाने) का काम ब्राह्मणों के ऊपर रक्खा और प्रजा की रक्षा करने का काम क्षत्रियों के आधीन किया, तिजारत व्यापार वैश्य जाति के ऊपर छोड़ दिया और देश सेवा शूद्रों के आधीन कर दी।

शूद्रों की अपेक्षा वैश्यों में धर्म का बंधन अधिक लगाया और वैश्यों की अपेक्षा क्षत्रियों को और उनकी अपेक्षा ब्राह्मणों को सब से अधिक धर्म का जिम्मेदार ठहराया इस के अनेक उदाहरण वेदादि शास्त्रों में मिलते हैं आप केवल एक इसी उदाहरण से समझ सकते हैं कि यदि कोई शूद्र हिन्दू जाति से भिन्न जातियों हिन्दुओं में भी श्वपच आदि जाति का अन्न ग्रहण कर ले तो उस को प्रायश्चित्त न्यून और द्विज को अधिक करना पड़ता है।

शूद्र की अपेक्षा द्विजाति के ऊपर धर्म का भार अधिक है इस कारण द्विजातियों को यज्ञ करने का अधिकार दिया गया। जिन जातियों को यज्ञ का अधिकार दिया उन्हीं जातियों को उपनयन संस्कार का भी अधिकार दिया है इस को आप इस प्रकार समझ सकते हैं कि यज्ञोपवीत ९६ चौव्वे का होता है इसके समझने के लिये एक दृष्टि प्रथम वेद पर डालनी होगी। वेद संख्या अर्थात् वेदके मंत्र एक लाख हैं "लक्षं वेदाश्चत्वारो लक्षमेकन्तु भारतम्" अर्थात् चारो वेदों के मन्त्र एक लाख और महाभारत की श्लोक संख्या एक लाख है। एक लक्ष वेद मंत्र तीन भागोंमें विभाजित

है कर्मकाण्ड उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड यह इन तीनों भागों के नाम हैं। वेद में अस्सी ८० हजार मंत्र कर्मकाण्ड के, १६ हजार मंत्र उपासनाकाण्ड के शेष चार हजार मंत्र ज्ञानकाण्ड के हैं।

जिस समय बटुक उपनयन को कन्धे में डालता है उसी दिन से ८० हजार मंत्रों में कहे कर्मकाण्ड और १६ हजार मंत्रों में कहे उपासनाकाण्ड का जिम्मेदार बनता है इसी कारण से ९६ चौव्वे का जनेऊ रक्खा है। ९६ चौव्वेका अभिप्राय यही है कि ८० हजार कर्मकाण्ड के मंत्रों में कहे कर्म और १६ हजार मन्त्रों में कही उपासना को आज मैं अपने कन्धे पर रखता हूं और यज्ञोपवीत में ग्रन्थी लगाने का अभिप्राय यह है कि इसको नहीं भूलूंगा। जिस समय तक द्विज इन दोनों काण्डोंका अधिकारी रहता है उस समय तक यज्ञोपवीत को अपने कन्धे पर रखता है जिस समय इन दोनों में परिपक्व होकर ज्ञानकाण्ड में जाता है उस समय यज्ञोपवीत को उतार कर फेंक देता है और संन्यासी बन जाता है उपनयन करना क्या है मानो कर्म काण्ड और उपासनाकाण्ड धारण करने का इकरारनामा या विशेष चिन्ह है अतएव स्मृतिकारों ने यज्ञाधिकारियों को उपनयन पहिनने की आज्ञा दी और शेष को नहीं दी इसी कारण से स्त्री और शूद्र का उपनयन संस्कार नहीं होता क्योंकि उनको यज्ञादि कर्म का अधिकार नहीं है चारों वर्णों के अधिकार मनुने इस प्रकार बतलायेहैं—

अध्यापन मध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणा नाम कल्पयत्॥

मनु० अ० १ श्लो० ८८

अर्थ—पढना, पढाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, ये ६ कर्म ब्राह्मणों के बनाये।

प्रजानां रक्षणं दान मिज्याध्ययन मेव च।
विषयेष्व प्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥

मनु० अ० १ श्लोक ८९

अर्थ—प्रजाओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना,

वेद पढना, विषय जो गाना नाचना आदि हैं तिन में चित्त का न लगाना, ये संक्षेप से क्षत्रियों के कर्म्म बनाये।

पशूनां रक्षणं दान मिज्याध्ययन मेव च।
वणिक्पथ कुसीदं च वैश्यस्य कृषिरेव च॥
मनु० अ० १ श्लो० ९०

अर्थ—पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, जल में नाव वा जहाजों से और स्थल में भार-बरदारी आदि से व्यापार करना, व्याज लेना और खेती करना ये ६ वैश्य के कर्म्म नियत किये।

ऊपर के लेख से यह सिद्ध है कि शूद्रों को यज्ञ का अधिकार नहीं। यज्ञ का अधिकार न होने के कारण इनको उपनयन का अधिकार भी नहीं दिया गया। संस्कारों के अधिकार मनु ने जो बतलाये हैं उनको नीचे पढ़िये—

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीर संस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥
मनु० अ० २ श्लो० २६

अर्थ—वैदिक कहिये वेद में कहे हुए मंत्र योग आदि शुभ कर्म्मों को करिके द्विजों का गर्भाधान आदि संस्कार करना चाहिये वह पावन कहिये पाप के क्षय कारण हैं प्रेत्य कहिये परलोक में यज्ञादि फलों के सम्बन्ध से और इह कहिये इस लोक में भी वेदाध्ययन आदि में अधिकार से प्रसंग पडने पर। मनु फिर शूद्र की व्यवस्था देते हैं—

न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कार मर्हति।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम्॥
मनु० अ० १० श्लो० २६

अर्थ—लहशुन आदि के खाने में शूद्र को कुछ पातक नहीं होता है तो ब्रह्म वध आदि में होता ही है क्योंकि "अहिंसा सत्य मस्तेयं" अर्थात् हिंसा न करना सत्य बोलना चोरी न करना यह चारों वर्णों को साधारणता से कहा है और यज्ञोपवीत आदि संस्कारों के योग्य नहीं है और इस का अग्निहोत्र आदि कर्म्मों में अधिकार नहीं है क्योंकि विहित नहीं है और शूद्र को कहे हुए पाक यज्ञ आदि धर्म से इसका निषेध नहीं है अर्थात् पाक यज्ञ आदि करे।

अब मनु जी महाराज यह बतलाते हैं कि जिस का यज्ञोपवीत होगया हो आचार्य उसी को वेद पढ़ावे।

उपनीय तुयः शिष्यं वेद मध्यापयेद्द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥

मनु० अ० २ श्लो० १४०

अर्थ—जो ब्राह्मण शिष्य का यज्ञोपवीत करके कल्प कहिये यज्ञ विधि और रहस्य कहिये उपनिषद सहित सब वेद की शाखा को पढाता है उसको आचार्य्य कहते हैं।

पाठक वर्ग! मनु के इस लेख से भली भांति समझ में आ जाता है कि जिन को यज्ञ करने का अधिकार है उन्हीं को उपनयन पहिनने का और जिस ने उपनयन पहिना है उसी को वेद पढ़ने का अधिकार है। जिसको यज्ञ का अधिकार नहीं उस को उपनयन का भी अधिकार नहीं और जिसने उपनयन नहीं पहिना है वह वेद नहीं पढ़ सकता।

शूद्र जाति को यज्ञ करने का अधिकार नहीं इस वास्ते मन्वादि महर्षियों ने उपनयन का भी अधिकार नहीं दिया और उपनयन के विना वेद नहीं पढ़ाया जाता इस वास्ते शूद्रों को वेद पढ़ाने का निषेध कर दिया है इस विषय में स्वामी दयानन्द जी ने शूद्र को उपनयन के बिना ही वेद पढ़ने का अधिकार दिया है इस में हम

अपनी बुद्धि के अनुसार यही कह सकते हैं कि स्वामी दयानन्द मन्वादि स्मृतियों से अनभिज्ञ थे या तो फिर यही अनुमान कर सकते हैं कि स्वामी जी धर्म को किंचित मात्र भी नहीं मानते थे अर्थात् इन को वैदिक धर्म से घृणा हो गई थी और वैदिक धर्म का बहाना ले [illegible] पर कुठार चलाते हुए हिन्दुस्तानियों को योरूपीय बनाने में धार्मिकता और बहादुरी समझते थे। कई दिन तक तो स्वामी दयानन्द के (शूद्र को वेद पढ़ाना) इस सिद्धान्त पर आर्यसमाजियों का विश्वास रहा कि शूद्र भी वेद पढ़ सकता है परन्तु जब समाजियों ने दयानन्द तिमिर भास्कर आदि पुस्तकों को देखा तब मालूम हुआ कि शूद्र को वेद पढ़ाना दयानन्द का यह सिद्धान्त १६ आना वेद विरुद्ध है और जिन्हों ने सत्यार्थप्रकाश को छोड़ कर और पुस्तक नहीं देखी वे अब भी स्वामी दयानन्द के लेख को ही पत्थर की लकीर समझते हैं।

इस विषय में आर्यसमाज में तीन पार्टी हो गई हैं एक प्रथम पार्टी का तो यह कहना है कि स्वामी दयानन्द जो कुछ लिख गये वही मानना होगा और शेष किसी भी महर्षि के लेखपर ध्यान न दिया जावे। इस पार्टी के मुखिया बाबू घासीराम जी एम. ए. तथा मह[illegible] आदि २ हैं और यह पार्टी बाबू पार्टी के नाम से प्रसिद्ध की गई है और दूसरी पार्टी शूद्रों को वेद पढ़ाना तो क्या वेद के सुनाने में भी पाप समझती है इस पार्टी के नेता पं० भीमसेनजी शर्मा अध्यापक महा विद्यालय ज्वालापुर तथा पं० अखिलानन्द आदि आदि हैं और तृतीय पार्टी वह पार्टी है कि जो दोनों के बीच में रहती है कभी तो बाबू पार्टी की पुष्टि का लेख लिख देती है और कभी पंडित पार्टी की पुष्टि का. इस पार्टी के पारसाल से जितने लेख छपे हैं उन में से साफ नतीजा कोई भी मनुष्य नहीं निकाल सकता कि इन्हों ने किस पार्टी की पुष्टि में यह लेख लिखा है इसके एक ही लेख से बाबू पार्टी अपने सिद्धान्त की पुष्टि और पंडित पार्टी अपने सिद्धान्त की पुष्टि समझ सकती है इस पार्टी के मुखिया पं० तुलसीराम तथा कृष्णलाल आदि हैं। इस वर्ष गुरुकुल सिकंदराबाद में तीनों पार्टियों के मनुष्य [illegible] वहां पर जो कुछ भी बात चीत या कारवाई हुई है उस को मैं ता० २० मार्च सन् १९१५ ई० के सद्धर्म प्रचारक साप्ताहिक पत्र में से हूबहू लिखे देता हूं पाठक पढ़ने का कष्ट उठावें।

सिकन्दराबाद में जन्म ब्राह्मण लीला।

सेवा में निवेदन है कि गुरुकु[illegible] सिकन्दराबाद का उत्सव तिथि १४। १५ तथा

१६ फरवरी १९१५ को बड़ी विचित्र घटनाओं से पूर्ण समाप्त हुआ यत्किंचित् वृत्तान्त पाठकों के ज्ञानार्थ यहां अंकित करता हूं—

प्रथम दिवस १४ को प्रातःकाल जो पंडित मंडली वहां इकट्ठी हुई श्री वर्ण व्यवस्था विषय पर विचार करने लगी सभापति के आसन को पं० भीमसेन अध्यापक महा विद्यालय ज्वालापुर ने ग्रहण किया था।

वक्ताओं में से सब से प्रथम पं० अखिलानन्दजी उठे इन्हों ने सत्यार्थप्रकाश को उठा सभा के सदस्यों को ललकार* के कहा मैं दावे के साथ हर्ष पूर्वक कहता हूं कि स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश में ९९ वार गुण कर्म स्वभाव से वर्ण व्यवस्था को माना है व मानना चाहिये मेरे लेखों को आप लोग अन्यत्र समाचार पत्रों में देखेंगे जो कि प्रकाशित हो चुके हैं वा होंगे। इस आर्य्यसमाज के अन्दर ऐसे पुरुष आ घुसे हैं जो कि गुण कर्मों से वर्ण व्यवस्था मान कर ब्राह्मण बनना चाहते हैं, ब्राह्मणत्व का अधिकार करना चाहते हैं परन्तु यह हो नहीं सकता असम्भव है आदि आदि कथन कर बैठ गये।

इनके पश्चात् पं० जनमेजयजी उठ कर कहा कि सत्यार्थप्रकाशके स्वमन्तव्यामन्तव्य सं० १६ को देखिये वहां श्रीस्वामीजी लिखते हैं "वर्णाश्रम को गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूं" यह सब को मानना योग्य है, इत्यादि। इस पर पं० दिलीपदत्तजी उपाध्याय ज्वालापुर ने कहा—

यदि सत्यार्थप्रकाश में ९९ वार जो वर्ण निर्णय गुण कर्म स्वभावानुसार लिखा हुआ हो और स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में गुण कर्म की योग्यता से वर्ण निर्णय एक बार ही लिखा है तो भी स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश का लेख अधिक तर माननीय है, इत्यादि। फिर पं० अखिलानन्दजी ने कहा कि जो स्वमन्तव्यामन्तव्य में गुण कर्म के साथ स्वभाव शब्द लुप्त नहीं किया उसका कारण प्रेस की भूल व स्वामीजी का भूल जाना है इसी पर पं० छुट्टनलाल स्वामी मेरठ ने कहा प्रेस की भूल है यदि प्रेस की भूल हो तो भी गुण कर्मों की योग्यता इस से पद समूह में कर्म शब्द बहुबचनान्त होने से स्वभाव का बोधक हो जाता है।

अब पं० प्रयागदत्त जी अवस्थी ने स्वभाव की आलोचना की। उन्होंने कहा स्वभाव माता पिता से आता है इस लिये स्वभाव गुण कर्म के साथ अवश्य होना

* यह आक्षेप है। [illegible]

चाहिये इस पर एक पंडित ने कहा देखो (आर्योद्देश्यरत्नमाला सं०) वहां स्वभाव का लक्षण स्वामीजी क्या लिखते है "स्वस्यभावः" स्वभावः। जो अपना भाव हो यथा अग्नि का जलना दाह करना। फिर एक महाशय ने कहा स्वभाव अदलता बदलता रहता है स्वभाव दो प्रकार का होता है एक नैमित्तिक है दूसरा स्वाभाविक है अतः माता पिता के रजवीर्य पर स्वभाव निर्भर नहीं हो सकता क्योंकि स्वभाव बदलता रहता है, इत्यादि।

इनके पश्चात् पं० नन्दकिशोरजी उपदेशक उठे और कुछ कहा—

सब से पीछे पं० भीमसेनजी ज्वालापुर निवासी सभापति उठे और कहा कि बहुत विवाद हो चुका है इस वर्ण व्यवस्था पर आप विद्वान् पंडितों ने बहुत कुछ कहा परन्तु मेरी निश्चित रूप से यह सम्मति है कि जो जिस जिस वर्ण में है वह उस वर्ण में रहे क्या आवश्यकता है कि वह अन्य वर्ण में जावे हां शूद्रादि विद्या पढें विद्या पढ़ने से उन लोगों का यश हो सकता है जब शूद्र पढ़ लिख जायगा तब उसका स्वतः यश होगा शूद्र शब्द से क्यों घृणा की जाय क्या शूद्र शब्द से शूद्र वर्णस्थों का अपमान होसकता है ? नहीं, अतः अपने अपने वर्ण में सब कोई रहें अपने वर्ण को छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है, इत्यादि। सभा समाप्त होते ही अनेक पुरुष कोलाहल करने लगे और पूछने लगे कि क्या निश्चय हुआ।

दूसरे दिन १५-२-१५ को फिर सभा आरम्भ हुई। आज तीन विषय थे— (१) शूद्रों को यज्ञोपवीत का अधिकार है कि नहीं (२) कौन कौन वर्ण किस किस वर्ण का पवीत करवावें (३) किस किस वर्णस्थ के हाथ का खान पानादि करना चाहिये।

आज सभापति के आसन को पं० नन्दकिशोरजी उपदेशक ने ग्रहण किया था। वक्ताओं में से सब से प्रथम पं० अखिलानन्दजी उठे और कहा कि स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश में अनेक आचार्यों का मत दर्शाते हुए लिखा है कि शूद्रों को उपनयन किए बिना संहिता भाग छोड़कर अन्य विद्या पढ़ना चाहिये, इत्यादि।

इनके पश्चात् पं० जनमेजय ने सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास में से "यथे मां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः" इस वेद मंत्र को भाषार्थ सहित पढ़ कर सुनाया और कहा कि यह वेद मंत्र अन्य प्रमाणों की अपेक्षा स्वतः ईश्वरोक्त प्रमाण होने से माननीय है इसके सन्मुख अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं। इस वेद मंत्र

से स्पष्ट सिद्ध होता है कि शूद्रों को भी वेदों के पढ़ने का अधिकार है। फिर पंडित अखिलानन्दजी उठे और कहा कि स्वामीजी कृत यजुर्वेद भाष्य के अन्य महीधरादि भाष्यों को मिलाना चाहिये क्योंकि स्वामीजी कृत भाष्य इस वेद मंत्र का अशुद्ध है अर्थ व्याकरण की रीत्यनुसार होना चाहिये। अपना पाण्डित्य जिताते हुए अखिलानन्द ने स्पष्ट रीति से महर्षि कृत अर्थ का अपमान किया सभापति ने मर्यादा से उल्लंघन करते देख इन्हें बैठा दिया।

इनके पीछे पं० बालमुकुन्दजी उपदेशक करनाल मंडल उठे और कहा कि जो लोग ऋषि का अपमान करते हैं वह स्वार्थी* हैं मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने का अधिकार है परमात्माने सूर्य्य चन्द वायु आकाश जल पृथिवी सब के लिये समान † की है ऐसे ही परमात्मा का ज्ञान वेद मनुष्य मात्र के लिये है यदि द्विजों के लिये होता तो परमात्मा पक्षपाती हो जाते, इत्यादि। तदन्तर एक व्यक्ति ने कहा आर्य्यसमाज नियम सं० ३ में वेदों का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म बतलाया है इस में सुनना शूद्रों का है और पढ़ना पढ़ाना द्विजों के लिये है। पुनः पं० बालमुकुन्दजी व पं० त्रिलोकनाथजी अध्यापक सिकन्दराबाद में सत्यार्थप्रकाश में से मनुष्य मात्र को वेदों के पढ़ने का अधिकार है सिद्ध कर दिखाया। पीछे पं० नरसिंह शर्मा उपदेशक राजस्थान ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वेदों के पढ़ने का अधिकार सब के लिये सिद्ध किया। तदनन्तर पं० सन्तरामजी मोगावाले उठे और कहा कि तुम लोग विषयान्तर में हो।

"शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार" तो है परन्तु उपनयन का नहीं क्योंकि संस्कारविधि में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यका उपनयन लिखते हैं शूद्रों का नहीं, इत्यादि।

इनके पश्चात् जनमेजयजी उठे और कहा शूद्र किस अवस्था में और कब होता है सत्यार्थप्रकाश में व अन्य शास्त्रों में लिखा है ब्राह्मण १६ वें क्षत्रिय २२ वें और वैश्य २४ वें वर्ष में उपनयन हुवे विना शूद्र हो जाते हैं।

अतः सिद्ध होता है कि विद्या पढ़ने की योग्यता न होने तथा उपनयन न करने पर ब्राह्मणादि से शूद्र होता है। उपरोक्त नियमानुसार पुरुष चाहे किसी कुल

---

* उत्तर नहीं दे सकता गालियां देताहै † सबको एक सम मानता है यदि मास्टर बालक के तमाचा लगादे तो बालक मास्टर को ठीक कर कहदे कि सब समान है।

में भी उत्पन्न क्यों न हुआ हो शूद्र होगा अन्य जाति अतः मनुष्य मात्र को वेदों के पढने का अधिकार है और उपनयन* का भी अधिकार है, इत्यादि।

तदनन्तर पं० भीमसेनजी अध्यापक ज्वालापुरके उठे और बोले कि तुम लोग बारबार सत्यार्थप्रकाश आदि स्वामीजी कृत ग्रन्थों को उठाते हो तुम किस दावे से कहसकते हो कि ये पुस्तकें ठीकहैं क्या स्वामी दयानन्द निर्भ्रान्तथे अन्य ऋषि मुनि भ्रांति युक्त थे स्वामी दयानन्द मनुष्य थे भ्रान्ति युक्त भी थे क्या जो कुछ उन्होंने लिखा सत्य लिखा व अन्य ऋषि मुनियों ने मिथ्या लिखा है अतः हम को जानना चाहिये कि स्वामी दयानन्दजी भी भूल कर सकते हैं।

शूद्रों को वेद का [illegible] सुनाना भी नहीं चाहिये और ब्राह्मणादि को चाहिये कि यदि शूद्र यज्ञशाला के समीप व वेद पढ़ते समय आजाए तो सब कृत्य बन्द कर दें और शूद्र को पास न फटकावें हम ने अब तक अपनी आत्मा का खून किया और अपने पांडित्य का नाश किया अब न करेंगे, इत्यादि।

खान पान भी उत्तम वर्ण व्यवस्था का करना चाहिये शूद्रों के हाथ से नहीं। अन्त में सभापति पं० नन्दकिशोरजी ने कहा अब अनेक प्रकार के वाद विवाद हो चुके निश्चित कुछ भी नहीं हुवा कोई कुछ भी क्यों न कहे महर्षि दयानन्दके लेखानुसार मानना चाहिये। सभापति के भाषण के अनन्तर सभा समाप्त हुई।

सभा समाप्त होतेही श्रोतागण परस्पर कहने लगे शोक है फिर आर्यसमाज के अन्दर स्वार्थी पाखण्डी नास्तिक लोग आने लगे हैं जिस से वैदिकधर्म को हानि पहुँचेगी अच्छा हो कि ये नास्तिक पुरुष समाज से बहिष्कृत हों और धर्म को हानि न पहुँचे।

धर्म का सेवक

जनमेजय।

जनमेजय बाबू पार्टी के हैं इस कारण से पं० पार्टीवालों पर इस लेख में कटु शब्दों की वर्षा की गई है जब सनातनधर्मी आर्यसमाजियों के बाइकाट करने का रिज़ोलूशन पास करते हैं या प्रस्ताव रखतेहैं तब आर्यसमाजके अखबार सनातन धर्मियों के पीछे मक्खी और मच्छरों की तरह पड़ जाते हैं। लेकिन जनमेजय ने

* स्वामी दयानन्दजी तथा मन्वादि ऋषियों से विद्वान् है या धर्म को तिलांजली दे चुका है।

इस लेख में जन्म से वर्ण व्यवस्था माननेवाले ब्राह्मणों के लिये बाइकाट करने की सम्मति खुलासा दी है किन्तु इतने पर भी किसी आर्यसमाजी ने चूं तक नहीं की। जनमेजय ने ब्राह्मणों का जो बाइकाट करना लिखा है यह कोई नई बात नहीं है। यह प्रस्ताव यू. पी. की प्रतिनिधि [illegible] में भी आचुका है, सद्धर्मप्रचारकने भी ब्राह्मणों पर बहुत हमले किये हैं, भास्करप्रकाश ने भी कुछ कसर नहीं छोड़ी, आर्य मित्र ने भी ब्राह्मणों को गालियां देने में कल उठा नहीं रक्खा। यह झगड़ा अखबारी जगत में ही नहीं किन्तु कार्यक्षेत्र में भी आगया। सम्वत् १९७१ का वेदप्रकाश बतला रहा है कि गुरुकुल कांगड़ी में तीन सौ के ऊपर ब्रह्मचारी हैं जिनमें केवल ३५ बालक ब्राह्मण जातिके हैं। सम्बत् १९७१ में प्रतिनिधि यू पी के उत्सव वृन्दाबनमें पं० अखिलानन्द तथा मुरारीलाल आदि आदि ब्राह्मणों के व्याख्यानों का बाइकाट भी होचुका है। महात्मा मुन्शीराम आदि समाज के नेताओं ने ब्राह्मणों को पेटभर गालियां देकर अपना मन भी प्रसन्न किया है। इन सब बातों का तात्पर्य यही है कि स्वामी दयानन्द के गप्पोड़ों को सत्य क्यों नहीं माना जाता और ऋषि मुनियों को गालियां क्यों नहीं दीजातीं, धर्म का निर्णय क्यों किया जाता है, ब्राह्मण पार्टी वेदों की रक्षा क्यों करती है? वास्तव में आर्यसमाज वेद और ब्राह्मण की शत्रु है।

मुन्शीराम आदि आर्यसमाजी जान बूझकर धर्म का नाश केवल इस लिये कर रहे हैं कि संसार में हमारी प्रसिद्धि हो और हम आर्यसमाज के नेता कहलावें। जान बूझकर धर्म का बिगाड़ा जाना देखकर पंडित पार्टी को भी हमारी भांति आर्य समाज के सुधार करने के लिये लेखनी उठानी और व्याख्यान देने पड़ते हैं। जो सिद्धान्त सनातनधर्मी पंडित रखते हैं उसी सिद्धान्त का उपदेश पं० भीमसेन ने किया है परन्तु नतीजा यह निकला कि बाबू पार्टी पं० भीमसेन आदि की जान की दुश्मन होगई। जब यह अपनेही पंडितों के उपदेश को नहीं मानती तब फिर हम क्या आशा कर सकते हैं कि हमारे लेखों से वर्त्तमान आर्यसमाज का कुछ सुधार होगा। आर्यसमाज का तो यह सिद्धान्त है [illegible] विद्वान् कहे, श्रुति कहे, स्मृति कहे, स्वतः स्वामी दयानन्द आकर समझावें किन्तु यह किसी की भी नहीं मानेगी यह तो उसी सड़कपर चलेगी कि जिसपर अमेरिका आदि देश चल रहेहैं अस्तु-यहांपर हम को इतनाही बतलाना है कि शूद्रों के विषय में जो सिद्धान्त सनातनधर्मी विद्वानों तथा श्रुति स्मृति का है वही सिद्धान्त पंडित पार्टी के विद्वानों का है। शूद्रों को वेद

न पढ़ाया जाना सिद्ध होगया अब इस में अधिक लिखने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। स्वामी दयानन्द शूद्रों के वेद पढ़ाने में "यथेमांवाचंकल्याणीं" एक प्रमाण आगे और देंगे इस का उत्तर वहीं पर दे दिया जावेगा यहां पर इतनाही कह देना काफी समझता हूँ कि स्वामी दयानन्दजी ने इस मंत्र का जो अर्थ लिखा है वह मन माना और अयोग्य है इसके ऊपर पंडित अखिलानन्दजी ने सिकन्दराबाद में यही कहा कि स्वामी दयानन्द कृत अर्थ गलत है जिसको आर्यसमाजी पंडितही गलत कह रहे हैं फिर उसके अर्थ की सत्यता उर्दू अंग्रेजीवाले सात लाख जन्म में भी सिद्ध नहीं कर सकते।

अब यह निर्णय होगया कि वेद को छोड़कर शूद्र और और विद्यायें भी पढ़ सकता है या नहीं इसके ऊपर यह उत्तर है कि साधारण धर्मों में सामान्य विद्या पढ़ना यह मनुष्यमात्र का धर्म है और विद्या पढ़ने के लिये किसी भी स्मृतिकार ने निषेध नहीं किया अतएव शूद्र विद्या पढ़े और विद्या पढ़के सम्पत्ति आदि की उन्नति करे इसमें न कोई निषेध है और न कोई पाप है। शूद्रों की व्यवस्थाका लेख समाप्त करता हुआ स्त्रियों के लिये धर्म का विचार आरम्भ करता हूँ जिसप्रकार शूद्रों को यज्ञ उपनयन वेदाधिकार नहीं है इसी प्रकार स्त्रियों को भी नहीं है। महर्षि मनु प्रथम स्त्रियों को यज्ञ का निषेध करते हैं—

नास्तिस्त्रीणांप्रथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥

मनु० अ० ५ श्लो० १५५

अर्थ—स्त्री जाति को पति से पृथक् यज्ञ करने का अधिकार नहीं और पति की बिना आज्ञा व्रत उपवास नहीं कर सकती वह पति की सेवा करती है उस सेवा ही से उसको उत्तम गति स्वर्ग मिलता है।

इसके आगे मनु लिखते हैं कि स्त्रियों के संस्कार में संस्कारकर्त्ता आचार्य वेद मंत्रों का उच्चारण न करे—

अमंत्रिकातुकार्येयं स्त्रीणामावृतशेषतः।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्॥

मनु० अ० २ श्लो० ६६

अर्थ—स्त्रियों का जाति कर्मादि क्रिया कलाप कहेहुए काल के क्रम से शरीर संस्कार के लिये बिना वेद मंत्रों के करना चाहिये।

अब इसके आगे मनु स्त्रियों को उपनयन, गुरुकुल में वास, वेद पढ़ना, अग्निहोत्र करना इसका निषेध करते हैं—

वैवाहिको विधिस्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पति सेवा गुरौवासो गृहार्थोग्नि परिक्रियाः॥

मनु० अ० २ श्लो० ६७

अर्थ—विवाह की विधि ही स्त्रियों का उपनयन संस्कार है और पति सेवा ही गुरुगृहवास और वेदाध्ययन है घर का काम ही सायं प्रातः समिधानयन होम अग्नि सेवा है।

पाठकवर्ग! आप भलीभांति जानगये कि मनने यज्ञ और उपनयन वेदाध्ययन गुरुगृहवास अग्निहोत्र का निषेध कर दिया अब कोई भी इन्साफ-पसंद या धर्म-जिज्ञासु पुरुष यह कह सकता है कि स्त्रियों को वेद का अधिकार है? या यों कहिये कि स्त्रियों को वेद पढ़ने की आज्ञा बतलानेवाला धार्मिक कहला सकता है? पाठक वर्ग! आप लोग अब यह जान चुके कि स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है।

अब सामान्य विद्या का विचार रहगया। जिसप्रकार शूद्रों को सामान्य विद्या पढ़ने का अधिकार है इसीप्रकार साधारण नियमों के अनुसार स्त्रियों को भी विद्या पढ़ने का अधिकार है और उस में कोई भी श्रुतिस्मृति निषेध नहीं करती किन्तु शूद्रों की भांति स्त्रियां प्रत्येक मनुष्य से विद्या नहीं पढ़ सकतीं इसका कारण यह है कि स्त्री स्वभावतः चंचल प्रकृतिवाली होती है अतएव पुरुषों के साथ में इनका बहुसंभाषणादि का निषेध है "नन्वग्नितप्तदानाम घृतकुम्भसमः पुमान्" स्त्री अग्नि है और पुरुष घी का घड़ा है जिस प्रकार अग्नि के संसर्ग से घृत पिघल जाता है उसी प्रकार स्त्री के संग से पुरुष अपनी धार्मिक वृत्तियों का त्याग कर देता है। मनु ने तो यहां तक लिखा है कि—

मात्रास्वस्रादुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत्।
बलवानिंद्रियग्रामो विद्वांसमति कर्षति॥

मनु० अ० २ श्लो० २१५

अर्थ—माता बहिनी अथवा पुत्री इनके साथ भी एकान्त स्थान में न बैठे क्योंकि इंद्रियों का समूह बलवान है शास्त्र की रीति से चलनेवाले पुरुष को भी बश में कर लेता है।

इत्यादि शास्त्र प्रमाणों को देखते हुए स्मृतिकार यह आज्ञा नहीं देते कि कन्या किसी अन्य पुरुष के पास पढ़ने के लिये भेजी जावे और अध्यापिकाओं के पास भी कन्या का पढ़ने को भेजना बुरा है क्योंकि स्त्रियों के द्वारा स्त्रियों के साथ में परपुरुष का संयोग होना सम्भव है और आज कल प्रत्यक्ष में भी कन्या महाविद्यालयों में जहां की स्त्री अध्यापिका हैं पतिव्रतधर्म का जिस प्रकार गला घोटा जाता है वह किसी से छिपा नहीं। लाहौर जैसे प्रसिद्ध शहरों में भी काला मुंह करने के नोटिस लग चुके हैं। इन सब खराबियों को ध्यान में रखते हुए स्मृतिकारों ने यह व्यवस्था दी है—

पितापितृव्योभ्राता वानेनाध्यापयेत्परः।
स्वगृहेचैवकन्याया भैक्ष्यचर्य्याविधीयते॥

(महर्षियम)

अर्थ—कन्या को [illegible] पिता यद्वा पितृव्य कन्या का चाचा या कन्या का भाई ही पढ़ावे अन्य को कन्या के पढ़ाने का अधिकार नहीं है।

जिस समय अपने पति के घर चली जाती है उस समय स्त्री को पति से पढ़ना यह "गुरुरेवपतिस्त्रीणाम्" इत्यादि स्मृतियों के लेख से ऋषियों ने सिद्ध किया है। पिता चाचा भाई पति इनसे भिन्न स्त्री हो या पुरुष किसी को भी स्त्री के पढ़ाने का सत्व नहीं है यह हिन्दू शास्त्रों का सिद्धान्त है।

अब स्त्रियों के लिये अंग्रेजी शिक्षा का विचार शेष रहगया। आजकल भारत वर्ष में एक दल ऐसा भी पैदा होगया है कि जो धर्म का नाम सुनतेही नाक चढ़ाकर "नोनसेन्स धर्म" कह उठता है इनको देश के नाश करनेवाली देशोन्नति का भूत लगा है। यह सज्जन इस समय यह चाहते हैं कि इंगलैंड की भांति भारतमें विधवा बिवाह, स्त्रियों की स्वतन्त्रता, सब जातियों का एक भोजन और शरीर के ऊपर योरूपीय ड्रेस हेट बूट कोट हो और भारत में धर्म का नाम न रहे। यह सज्जन रात दिन इस में कोशिश करते हैं और यह इसी को भारत की उन्नति मानते हैं। ईश्वर

का इनको जरा भी भय नहीं। इन्हीं के लीडर स्वामी दयानन्दजी हैं जो ये चाहते हैं स्वामी दयानन्द वही वेद में बतला गये हैं।

आज यह सज्जन स्त्रियों को अंग्रेजी शिक्षा देकर ग्रेजुएट बनाना चाहते हैं बस विचार इतना है कि स्त्रियोंको अंग्रेजी शिक्षा दीजावे या नहीं। शास्त्रकारोंने स्त्री का धर्म पतिव्रत ही माना है पतिव्रत को छोड़कर स्त्री का और दूसरा धर्म ही नहीं। इस को हम "नास्तिस्त्रीणांपृथग्यज्ञो" मनु के इस श्लोक से दिखा चुके हैं। जिस स्त्री ने अपने पतिव्रतधर्म को बचा लिया संसार में वही धार्मिका और पूजनीया है। स्त्रियों के पतिव्रतधर्म रखने के अनेक उपदेश मन्वादि ऋषियों ने बतलाये हैं। जब मन्वादि ऋषियों को यह विचार हुआ कि स्त्री पुरुष के साथ संसर्ग करती हुई अपने पतिव्रतधर्म को बचा नहीं सकती तब उन्होंने स्त्री को सर्वदा के लिये परतन्त्र बना दिया जैसा कि मनुने बतलाया है

पितारक्षतिकौमारे भर्तारक्षतियौवने।
रक्षंतिस्थविरेपुत्रा न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति॥

मनु अ० ९ श्लो० ३

अर्थ- कुमार अवस्था में स्त्री की पिता रक्षा करे और युवान अवस्था में उसका पति और वृद्धापन में उसके पुत्र रक्षा करें। स्त्री को कभी भी स्वतंत्रता न देनी चाहिये।

इत्यादि अनेक प्रबन्ध ऐसे किये गये हैं कि जिनसे स्त्री के पतिव्रतधर्म में कलंक न आवे और पश्चिमीय [illegible] का यह फल है कि वह आते ही स्वतंत्रता मांगती है और पतिव्रतधर्म और स्वतन्त्रता का यह बिलाई जैसा वैर है जिस तरह बिलाई से चूहे का बचना असम्भव है इसी प्रकार स्वतन्त्रता आनेपर पतिव्रतधर्म का बचना भी असम्भव ही है जब भारत की स्त्रियों का पतिव्रत ही बिगड़ गया तब फिर समझो कि भारत की इतिश्री के दिन आगये। इस पर विचार करते हुए भारत के हितैषी सज्जन स्त्रियों को अंग्रेजी शिक्षा देने का निषेध करते हैं।

शास्त्रकारों ने एक पति होने को ही पतिव्रतधर्म माना है। आर्यसमाज के खयाल से स्त्री ग्यारह विवाह और ग्यारह नियोग के ऐसे बाईस पति करनेपर भी पतिव्रता रह सकती है। ऐसेही खयाल के लोग आजकल स्त्रियों को अंग्रेजी शिक्षा देने को

सम्मति देते हैं। शास्त्रकारों का भाव यह है कि स्त्री को ऐसी शिक्षा कदापि न दी जावे कि जिससे वह स्वतन्त्र होकर पतिव्रतधर्म का नाश कर दे।

आज तक अंग्रेजी शिक्षा का निषेध करनेवाले संस्कृत के विद्वान् ही थे किन्तु खुशी की बात है कि आर्यसमाज के प्रसिद्ध लीडर ला० लाजपतराय का खयाल भी ऐसा होगया है उन्होंने [illegible] तजर्बे से यह बात सीखी है कि स्त्रियों का पढ़ाना हिन्दूधर्म को गारत करना है। दो वर्ष के करीब हुए उन्होंने लाहौर में एक स्पीच दी थी जिस में यह बतलाया था कि हिन्दू धर्म उसी समय तक जिन्दा रह सकता है कि जब तक स्त्रियां अंग्रेजी की विदुषी नहीं होतीं। लालाजी ने यह भी कहा था कि जिस प्रकार अंग्रेजी पढ़ कर मनुष्य धर्म को तिलांजली दे चुके हैं उसी प्रकार विदुषी होते ही स्त्रियां भी दे देंगी। इस व्याख्यान में लालाजी ने बाबू हंसराज जी से अपील भी की थी कि आप कालेज की बागडोर अपने शिष्यों के हाथ में देकर आप हिन्दूधर्म की रक्षा के मैदान में उतरें। यह समस्त व्याख्यान हिन्दोस्तान समाचार पत्र उर्दू लाहौर में छपा है।

अनुभवी पुरुषों का यह पूरा अनुमान है कि जब तक स्त्री अंग्रेजी शिक्षा से शिक्षित नहीं होती तभी [illegible] रह सकती है और तभी तक पतिव्रतधर्म का पालन कर सकती है अर्थात् आर्य ऋषिमुनिप्रणीत स्त्रियों की शिक्षा का होना धर्म जाति के लिये हितकारी है पश्चिमीय शिक्षा हानिकारक। मैं अपने आर्यसमाजी भाइयों से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस लेख से कुछ शिक्षा लें और यदि स्त्रियों को वेद पढ़ाने का कोई प्रमाण हो तो उसको पेश करें मनमाना काम करना और किसी भी शास्त्रकार के वचन को न मानना यह विद्वत्ता और धर्म नहीं है।

गायत्र्यर्थ निर्णयः।

सत्यार्थ प्रकाश—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ यजु० अ० ३६। मं० ३॥

इस मंत्र में जो प्रथम (ओ३म्) है उस का अर्थ प्रथम समुल्लास में कर

दिया है वहीं से जान लेना। अब तीन महाव्याहृतियों के अर्थ संक्षेप से लिखते हैं "भूरिति वै प्राणः" "यः प्राणयति चराऽचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः" जो सब जगत् के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयम्भू है उस प्राण का वाचक होके "भूः" परमेश्वर का नाम है। "भुवरित्यपानः" "यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः" जो सब दुःखों से रहित, जिसके संग से जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं इसलिये उस परमेश्वरका नाम "भुवः" है। "स्वरिति व्यानः" "यो विविधं जगत् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः" जो नानाविधि जगत् में व्यापक होके सबका धारण करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "स्वः" है। ये तीनों वचन तैत्तिरीय आरण्यक प्रपा० ७ अ० ५ के हैं (सवितुः) "यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य" जो सब जगत् का उत्पादक और सब ऐश्वर्य्य का दाता है (देवस्य) "यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः" जो सर्व सुखों का देनेहारा और जिस की प्राप्ति की कामना सब करते हैं उस परमात्मा का जो (वरेण्यम्) "वर्त्तुमर्हम्" स्वीकार करने योग्य अति श्रेष्ठ (भर्गः) "शुद्धस्वरूपम्" शुद्धस्वरूप और पवित्र करनेवाला चेतन ब्रह्मस्वरूप है (तत) उसी परमात्मा के स्वरूप को हम लोग (धीमहि) "धरेमहि" धारण करें किस प्रयोजन के लिये कि (यः) "जगदीश्वरः" जो सविता देव परमात्मा (नः) "अस्माकम्" हमारी (धियः) "बुद्धिः" बुद्धियों को (प्रचोदयात्) "प्रेरयेत्" प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कामों से छुड़ा कर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे "हे परमेश्वर! हे सच्चिदानन्दस्वरूप! हे नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव! हे अज निरञ्जन निर्विकार! हे सर्वान्तर्यामिन्! हे सर्वाधार! जगत्पते! सकलजगदुत्पादक! हे अनादे! विश्वम्भर! सर्वव्यापिन्! हे करुणामृतवारिधे! सवितुर्देवस्य तव यदो भूर्भुवः स्वर्वरेण्यं भर्गोऽस्ति तद्वयं धीमहि दधीमहि धरेमहि ध्यायेम वा कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह हे भगवन्! यः सविता देवः परमेश्वरो भवानस्माकं धियः प्रचोदयात् स एवास्माकं पूज्य उपासनीय इष्टदेवो भवतुनातोऽन्यं भवत्तुल्यं भवतोऽधिकं च कञ्चित् कदाचिन् मन्यामहे" हे मनुष्यो! जो सब समर्थोंमें समर्थ सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, नित्य शुद्ध, नित्य बुद्धि, नित्य मुक्त स्वभाववाला, कृपासागर, ठीक २ न्याय का करनेहारा, जन्म मरणादि क्लेश रहित, आकार रहित, सब के घट २ की जाननेवाला, सब का धर्त्ता पिता उत्पादक, अन्नादि से विश्व का पोषण करनेहारा, सकल ऐश्वर्य्ययुक्त, जगत् का निर्माता,

शुद्धस्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतन स्वरूप है उसी को हम धारण करें। इस प्रयोजन के लिये कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामी स्वरूप हम को दुष्टाचार अधर्म्मयुक्त मार्ग से हटाके श्रेष्ठाचार [illegible] में चलावे, उस को छोड़ कर दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें। क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है वही हमारा पिता राजा न्यायाधीश और सब सुखों का देनेहारा है।

इस प्रकार गायत्री मन्त्र का उपदेश करके संध्योपासन की जो स्नान आचमन प्राणायाम आदि क्रिया हैं सिखलावें। प्रथम स्नान इसलिये है कि जिस से शरीर के बाह्य अवयवों की शुद्धि और आरोग्य आदि होते हैं। इस में प्रमाण—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

मनु० अ० ५ श्लो० १०९।

जल से शरीर के बाहर के अवयव, सत्याचरण से मन, विद्या और तप अर्थात् सब प्रकार के कष्ट भी सह के धर्म ही के अनुष्ठान करने से जीवात्मा, ज्ञान अर्थात् पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के विवेक से बुद्धि दृढ़ निश्चय पवित्र होते हैं। इससे स्नान भोजन के पूर्व अवश्य करना। दूसरा प्राणायाम इसमें प्रमाण—

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः॥

योग० साधनपादे सू० २८।

जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है जब तक मुक्ति न हो तब तक उसके आत्मा का ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

मनु० अ० ६।७१।

जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं।

प्राणायाम की विधि—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ योग० समाधिपादे सू० ३४

जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न जल बाहर निकल जाता है वैसे प्राण को बल से बाहर फेंक के बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे जब बाहर निकालना चाहे तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रक्खे तब तक प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है जब घबराहट हो तब धीरे २ भीतर वायु को लेके फिर भी वैसे ही करता जाय जितना सामर्थ्य और इच्छा हो। और मन में (ओ३म्) इस का जप करता जाय इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है। एक "बाह्यविषय" अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना। दूसरा "आभ्यन्तर" अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाय उतना रोकना। तीसरा "स्तम्भवृत्ति" अर्थात् एक ही बार जहां का तहां प्राण को यथाशक्ति रोक देना। चौथा "बाह्याभ्यन्तराक्षेपी" अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उस से विरुद्ध उस को न निकलने देने के लिये बाहर से भीतर ले और जब बाहर से भीतर आने लगे तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाय। ऐसे एक दूसरे के विरुद्ध क्रिया करें तो दोनों की गति रुककर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होती हैं। बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्मरूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इस से मनुष्य के शरीर में वीर्य बुद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल पराक्रम जितेन्द्रियता सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा स्त्री भी इसीप्रकार योगाभ्यास करे। भोजन, छादन, बैठने, उठने, बोलने, चालने, बड़े छोटे से यथायोग्य व्यवहार करने का उपदेश करें। सन्ध्योपासन, जिस को ब्रह्मयज्ञ भी कहते हैं। "आचमन" उतने जल को हथेली में लेके उस के मूल और मध्यदेश में ओष्ठ लगा के करे कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुँचे न उस से अधिक न न्यून।

तिमिर भास्कर—

दयानन्दजी ने महाव्याहृतियों के अर्थ में भी गोलमालकरा है तैत्तिरीय आरण्यक के नाम से स्वयं कल्पना की है अब ये वाक्य लिखे जाते हैं जो तैत्तिरीय में हैं—

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रोव्याहृतयः। तासामुह स्मैतां चतुर्थीम्माहाचमस्यः प्रवेदयते। मह इति तद्ब्रह्म सआत्मा अंगान्यन्यादेवताः। भूरितिवाअयंलोकः। भुव इत्यन्तरिक्षम्। सुवइत्यसौ लोकः ? मह इत्यादित्यः आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते॥ तैत्तिरी०

इस उपनिषद में ब्रह्मका उपदेश आगे पंचकोशरूप गुहा में करैंगे इस कारण प्रथम श्रद्धापूर्वक गृहीत व्याहृतियों का त्याग असम्भव है इसमें व्याहृति शरीरवाले हिरण्यगर्भ की उपासना स्वाराज्यफलप्राप्ति हेतुका विधान करते हैं, वोह व्याहृतिशरीर रूप हिरण्यगर्भ हृदय में ध्यान करने योग्य है भूः भुवः स्वः यह तीन व्याहृति हैं कहीं तो स्वः ऐसा व्याहृतिका आकार होता है और कहीं सुवः ऐसा आकार होताहै, अर्थ का भेद नहीं, क्योंकि, प्रातिशाख्य नाम वेदके व्याकरण स्वः के स्थान में सुवः और स्वर्ग के स्थानमें सुवर्ग ऐसा शब्द प्रयोग होता है, इन तीन व्याहृतियों के मध्य यह चतुर्थ व्याहृति महर्लोक है, इसको महाचमसके पुत्र माहाचामस्य ऋषिने जाना वा देखा, यहां उपदेश से जो यह माहाचामस्य ऋषिने देखी हुई महर व्याहृति है सो ब्रह्म है, अब इनकी तुल्यताको कथन करतेहैं जैसे कि ब्रह्म महत्है और व्याहृति महर् है इससे इनकी एकता बनती है और वोह महर् आत्मा (ब्रह्मका रूप) है, क्योंकि, वोह महर् व्याप्तिरूप कर्मवाला है, इससे सो आत्मा है और अन्य जो व्याहृतिरूप लोक देव वेद और प्राण हैं वे जिसमें कि "महः" ब्रह्म है इस आगे कहने के वाक्य से कथन किये व्याहृतिरूप ब्रह्मके देवलोक आदिक सर्व अवयव रूप हैं, और जिसमें वे सूर्य चन्द्र ब्रह्म और अन्न रूपसे व्याप्त होवे हैं इससे और देवता (ब्रह्मके पाद आदिक अवयव) हैं और महा व्याहृति अंगी है, भाव यह है कि महाव्याहृतिरूप जो अंगी है, हिरण्यगर्भ, तिसके भूः व्याहृतिको पाद और भुवः व्याहृतिको बाहू और सुवः व्याहृति को शिररूपसे ध्यान करै, ऐसी उपासना की

विधि है सो कथन करते हैं अर्थात् भूरादि प्रजापति अंगोंको जिस जिस रूपसे चिन्तन करना है सो निरूपण करते हैं॥

पृथ्वीलोक प्रजापति के पादरूप भूः व्याहृति है और अन्तरिक्ष लोक प्रजापति के बाहुरूप भुवः व्याहृति है, और स्वर्गलोक प्रजापतिका शिरोरूप सुवः व्याहृति है, और जो प्रकाशमान आदित्य है सो प्रजापतिका मध्यभागरूप महाव्याहृति है, भावं यह है कि पृथ्वीलोक में प्रजापतिके पाद दृष्टि करना, और अन्तरिक्ष में प्रजापति के बाहु दृष्टि करना, स्वर्ग में प्रजापतिका शिर दृष्टि करना, और आदित्यमें प्रजापति के शरीर मध्य दृष्टि करना और मध्यभागसे अंगोंकी वृद्धि होती है, इसी कारण कहते हैं कि आदित्यसे सब लोकोंकी वृद्धि होती है, इसीप्रकार से आगे अग्नि आदि में प्रजापतिके अंग दृष्टि जानना॥

भूरितिवाअग्निः। भुवइतिवायुः। सुवरित्यादित्यः। महइति चन्द्रमाः चन्द्रमसावावसर्वाणिज्योतींषि महीयन्ते। भूरितिवा ऋचः भुवइति सामानि सुवरिति यजूंषि॥ २॥

भूः यह प्रसिद्ध अग्नि है भुवः यह वायु है स्वः यह सूर्य है महः यह चन्द्रमा है चन्द्रमा से प्रसिद्ध सब ज्योति (तारा) वृद्धि को पाते हैं भूः यह प्रसिद्ध ऋचा (ऋग्वेद) है भुवः यह सामवेद है स्वः यह यजुर्वेद है २

महइतिब्रह्म। ब्रह्मणावाव सर्वे वेदामहीयन्ते। भूरितिवैप्राणः भुव इत्यपानः। सुवरितिव्यानःमहइत्यन्नम्। अन्नेनवावसर्वेप्राणामहीयन्ते।तावाएताश्चतस्रश्चतुर्द्धाचतस्रश्चतस्रोव्याहृतयः ता यो वेद सवेद ब्रह्म। सर्वेऽस्मै देवाबलिमावहन्ति असौ लोको यजूंषि वेद द्वेच। तैत्तिरीय उपनिषदि अनु० ५

अर्थ—महः यह ब्रह्म ॐकार है क्योंकि ॐकारसेही सब वेद वृद्धिको प्राप्त होते हैं भूः यह प्राण है भुवः यह अपान है स्वः यह

व्यान है महर् यह अन्न है अन्नसेही सब प्राण वृद्धिको पाते हैं जो यह उपचार व्याहृति चार प्रकार की हैं इन का फल वर्णन करते हैं कि एक व्याहृति चार चार प्रकारकी होगई तब प्रकरणानुसार षोडशकलायुक्त पुरुषका ध्यान कहा व्याहृति से पृथ्वीकला अग्नि कला ऋग्वेदकला प्राणकला ऐसे चतुष्कला तो प्रजापति के पाद हैं, और अन्तरिक्षकला वायुकला सामवेदकला अपानकला ऐसी चतुष्कला बाहू हैं, स्वर्गलोककला आदित्यकला यजुर्वेदकला व्यानकला ऐसी चतुष्कला प्रजापतिका शिर है, आदित्यकला चन्द्रकला ॐकारकला अन्नकला ऐसा प्रजापतिका आत्मशब्द प्रतिपाद्य मध्यभाग है ऐसे षोडशकलायुक्त पुरुषको हृदयमें ध्यान करनेसे जो फल प्राप्त होताहै सो कथन करते हैं, इन व्याहृतियोंको पूर्व प्रकार से जो जानताहै सो ब्रह्मको जानताहै, तिसके अर्थ प्रजापतिके अंग भूत सब देवता बलिको प्राप्त करते हैं सो यह लोक और यजुर् दोनोंको जानताहै और दयानन्दजीने इस षोडश कलायुक्त प्रजापतिकी उपासनाके प्रकरणमें भूरितिवै प्राणः भुवरित्यपानः सुवरितिव्यानः इतने भागको लेकर प्राण अपान और व्यान पदको परमेश्वरपरता वर्णनकरी है परन्तु बुद्धिमान् विचारैं कि यह कितनी धृष्टता है कि सगुणोपासनाके फलके लोप करने को यह लीला रची है कि, यह कौन प्रकरण के वाक्य हैं सो भी नहीं लिखा इस प्रकरणमें यह व्यानादि ईश्वरवाचक नहीं क्योंकि उसके साथ यह लिखा है कि (अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते) अन्नसेही सब प्राण वृद्धिको प्राप्त होते हैं यदि यहां प्राणादि शब्द से ईश्वरका ग्रहण किया जाय तो अन्नसे वृद्धि कहना असंगत हो जाय अब ये देखना चाहिये कि स्वामीजी ने जब ॐकार और व्याहृतियोंकेही अर्थों में अनर्थ किया तो और मंत्रों की क्या कथा है अब गायत्रीके अर्थ लिखते हैं कि, प्राचीन ग्रन्थों में इसका कैसा व्याख्यान कियाहै ॥

तत्सावितुर्वरेण्यमित्य सौवा आदित्यःसविता सवा प्रवरणीय

आत्मकामेनेत्याहुर्ब्रह्मवादिनोऽथभर्गोदेवस्यधीमहीति सवि तावैदेवस्ततोयोऽस्यभर्गाख्यस्तंचिन्तयामीत्याहुर्ब्रह्मवादिनः

प्रथम पादकी प्रतीकधरकर अर्थ करते हैं सवितृपदका अर्थ असौवा इत्यादि यह जो प्रत्यक्ष आदित्यहै सो सविताहै आत्म काम करकै प्रवरणीय है अर्थात यह जो आत्मातिरिक्त पदार्थकी कामना रहितहै तिसको यह सविताही एकता बुद्धि करकै प्रार्थ-नीय है, भाव यह है कि पिण्डसार प्राण और ब्रह्माण्डसार आदित्यकी एकता भावना करकै दोनों उपाधिसे उपलक्षिततत्व को आत्मारूप से भावना करे, यह वेदविद् पुरुष कहते हैं अब द्वितीय पादकी व्याख्या करते हैं देव शब्दवोध्यसविताही है तिस कारणसे सविताका जो भर्गाख्यरूप है तिसको चिन्तन करते हैं ऐसे वेदविद् कहते हैं ॥

अथ धियोयोनःप्रचोदयादितिबुद्धयो वैधियस्तायोऽस्माकंप्र चोदयादित्याहुर्ब्रह्मवा[illegible]

अर्थ-अन्तःकरण की वृत्तियोंको जो परमात्मा प्रेरणा करता है यह ब्रह्मवादी कहते हैं तब मंत्रका अर्थ ऐसा जानना "सवितुर्दे-वस्ययत् भर्गाख्यं वरेण्यं तत् धीमहि। तत्किम् योऽस्माकं धियो ऽन्तःकरणवृत्तीः प्रचोदयात् प्रेरयति" सविता देवका जो भर्ग तथा वरेण्य रूप है तिसे हम ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धि वृत्तियों को प्रेरणा करता है ॥

अथभर्गइति योहवा अमुष्मिन्नादित्ये निहितस्तारकोऽक्षिणि वैषभर्गाख्योभाभिर्गतिरस्यहीति भर्गोभर्जयतीतिवैषभर्गइति रुद्रोब्रह्मवादिनोऽथ भइति भासयतीमान् लोकान् रइति रंज यतीमानिभूतानि ग इति गच्छन्त्यस्मिन्नागच्छन्त्यस्मादिमाः प्रजास्तस्माद्गत्वाद् भर्गः शश्वत् सृयमानात् सूर्य्यः सवनात् सविताऽऽदानादादित्यः पावनात् पवनोऽथापोप्यायनादि त्येवंव्याह ॥

इसमें भर्ग और सवितृपदका व्याख्यान है और प्रसंग से आदित्य सूर्य पावन आप शब्दों के अर्थ को भी निर्णय करते हैं "योऽमुष्मिन्नादित्ये निहितो वा यश्चाक्षिणि तारको निहित एष भर्गाख्यः" यह अन्वय है जो यह आदित्यमंडल में स्थितहै अन्तर्यामी तथा जो नेत्र में कृष्णतारा उपलक्षित अन्तर्यामी स्थित है यह भर्गाख्यवाला देव है (भाभिर्गमनमस्येतिभर्गः) किरणरूप प्रकाश वा वृत्तिरूप प्रकाश करके गमन होता है तिस अन्तर्यामी का वोह भर्ग है आशय यह कि केवल चेतन में गमन व्यापक होने से बनता नहीं, परन्तु किरणरूपप्रकाश वा वृत्तिरूप प्रकाश उपाधि के गमनसे गमनप्रतीत होताहै, ऐसे एकप्रकारसेभर्गशब्दकीनिरुक्ति कहकर प्रकारान्तरसे निरुक्ति करते हैं (भर्जयतीतिवाएष भर्गः) जो सर्वजगत्का संहार करताहै सो यह भर्ग है ऐसा रुद्ररूपहै परमात्माका, ऐसे वेदावित् कहते हैं। अब एक २ अक्षरके अर्थ करतेहैं (भासयतीमान्लोकानितिभः) अपने मंडल अन्तर्गत प्रकाश से सर्वजगत् को प्रकाश करताहै इसकारण भ और (रंजयतीमानिभूतानि इति रः) अपने आनन्दरूप से सर्व प्राणिवर्ग को आनन्दित करता है इससे रहै (गच्छन्त्यस्मिन् वा आगच्छन्त्यस्मात् सर्वा इमाः प्रजा इति गः) और सुषुप्ति प्रबोधमें वा महाप्रलय उत्पत्ति काल में सर्व प्रजा परमात्मा में लीन होकर फिर उत्पन्न होती है इससे गहै ऐसे भर्गपना होनेसे भर्ग है और (शश्वत्सूयमानात सूर्य्यः) निरन्तर उदय और अस्त होकर प्रातःकालादि करने से सूर्य है और (सवनात् सविता) सर्व प्राणिवर्गकी वृष्टि अन्नवीर्यादि द्वारा उत्पत्तिकरता होनेसे सविता है और (आदानात् आदित्यः) पृथ्वी का रस तथा प्राणिवर्ग की आयु को ग्रहण करनेसे आदित्य है और (पवनात् पावनोप्येषएव) सर्वको पवित्र करने से पावन नाम वायु भी यह परमेश्वरहै और आप नाम जल भी यह परमेश्वरही है क्योंकि सर्व जगत्को (प्यायनात्) वृद्धि करने से वेदार्थवित् कहते हैं, इसप्रकार से गायत्री मंत्र के दो पाद

से अधिदैवतत्वका निश्चय करा, अर्थात् सूर्य वायु जल उपलक्षित सम्पूर्ण देवतारूप परमात्मा को बोधन किया, और सब जगत् उत्पत्तिपालनसंहारकर्तृत्व बोधनकिया, तथा जगत् लयाधार और जगत्उपादान कारण भी भर्गपदव्याख्यानसे कहा, इसे कहने से जड प्रकृति जगत् उपादान कारण पक्ष दयानन्दजी का गायत्री ब्रह्मविद्या विरुद्ध है, इससे सज्जनोंको वोह अर्थ त्याज्य है, अब गायत्री के तृतीयपाद से अध्यात्म तत्व का निर्णय करते हैं जिस के निर्णय से स्वामीजी स्वीकृत चेतनका वास्तव भेद पक्ष भी खण्डित हो क्योंकि औपाधिक भेद तो स्वीकृत है ॥

खल्वात्मनोत्मानेताऽमृताख्यश्चेतामन्तागन्तोत्सृष्टानन्दयिता कर्ता वक्ता रसयिता घ्राता द्रष्टा श्रोतास्पृशति च ॥

अर्थ—(अमृताख्यःखल्वयमात्मा आत्मा नेता) यह जो अमृताख्यप्राण है सो निश्चयही आत्मा अर्थात् शरीर इन्द्रियसंघातका आत्मा है और नेता अर्थात सर्व संघातका प्रेरकहै, यहां अमृत कहने से प्राणके भी प्रेरक आत्मतत्वका ग्रहणहै, प्राणउपाधिक होकर वोह आत्मानेता और चित्त औपाधिकचेता और मनऔपाधिक मन्ता, पद औपाधिकगन्ता, पायु उपाधिसे उत्सृष्टा, उपस्थ उपाधिसे आनन्दयिता, हस्त उपाधिसे कर्ता, वागिन्द्रिय उपाधिसे वक्ता, रसना उपाधिसे रसयिता (रसग्राही) और घ्राण उपाधिसे घ्राता (सूंघनेहारा) चक्षुउपाधिसे द्रष्टा देखनेहारा, श्रोत्र उपाधिसे सुननेहारा, त्वगिन्द्रिय उपाधिसे (स्पृशति) छूनेवाला होताहै, चकारसे बुद्धि उपाधिसे अध्यवसिता, अहंकार उपाधिसे अभिमन्ता होता है यह जानना।

विभुर्विग्रहेसन्निविष्टाइत्यंवक्ष्याह अथ यत्र द्वैतीभूतंविज्ञानं तत्राहि शृणोति पश्यति जिघ्रति रसयति चैवस्पर्शयति सर्व मात्माजानीतेति यत्राद्वैतीभूतं विज्ञानं कार्य्य कारण कर्म्म निर्मुक्तं निर्वचनमनौपम्यं निरुपाख्यं किंतदवाच्यम् ॥

अर्थ-(प्रश्न) जो पूर्व नेतृत्वादिविशिष्ट वस्तु प्राणादि उपाधि विशिष्ट कहा सो क्या है (उत्तर) (विभुर्विग्रहे सन्निविष्ट इति एवं हि आह) विभु नाम व्यापक परमात्माही विग्रह (देह) में प्रविष्ट होकर अर्थात् लिंग शरीराभिमानी होकर प्राणादि उपाधि भेदसे नेतृत्वादि रूपसे कहा जाता है भाव यह है सो एकही परमात्मा सर्व बुद्धि प्रेरक रूपसे उपास्य है ऐसे वेदज्ञाता कहते हैं इसीप्रकार बृ० उपनिषदमें लेख है कि:—

आत्मेत्येवोपासीतात्रैते सर्वएकंभवन्ति ॥

बृ० उ० अ० ३ ब्रा० ४ । क० ७

"द्रष्टा श्रोता आदिको (आत्मा इति एव उपासीत अत्र हि एते सर्वे एकं भवन्ति) आत्मारूप करके परमात्मासे अभिन्न जान कर उपासना करे क्योंकि इस आत्मामेंही सर्व एक होते हैं," अब पाधिक भेद और वास्तव अद्वैत पक्षको अन्वय व्यतिरेकसे दृढ़ करते हैं जहां द्वैतीभूत विज्ञान होता है जाग्रदादि अवस्थामें वहां सुनताहै, देखताहै, सूंघताहै, रस लेताहै, स्पर्श करताहै और उपाधिविशिष्ट होकर एकका आत्मा सर्वको जानताहै, ऐसे उपाधिके सद्भाव कालमें भेद व्यवहार होताहै, और जब सुषुप्ति समाधि कालमें अद्वैतीभूत विज्ञान होताहै, तब कार्य अर्थात् विषय, करण अर्थात् करणग्राम, कर्म अर्थात् क्रिया, इससे रहित निर्विशेष उपमा रहित अप्रमेय होताहै, सो वस्तु निषेध बोधक शब्दों सेही क्यों कहते हो किसी तत् वा इदं आदि शब्दोंसे क्यों नहीं कहते यह (प्रश्न) करते हैं किंतद् इस पदसे अर्थ यह तत् सो वस्तु किं अर्थात् कैसी है (उत्तर) अवाच्यं नाम सर्व इन्द्रिय व्यापार के उपराम होते जो सर्व व्यवहारका साक्षी होकर व्यवहारोपरति वा साक्षी है सो अद्वैत विज्ञान स्वाभाविक आत्मरूप है किसी शब्दका वाच्य नहीं, इसप्रकार इस स्थानमें उपाधि के व्यतिरेकमें अद्वैत कहा, यह ब्राह्मणादि ग्रन्थोंसे गायत्रीका अर्थ वर्णन किया

अब इस स्थानमें यह विचारणीय है कि दयानन्दजीने जो सत्यार्थ प्रकाश पृ० ६०१ में लिखाहै [illegible] वदकी शाखा जो कि वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रंथ हैं तो गायत्री जो वेदोंमें प्रधान है तिसका अर्थ किसी एक व्याख्यानकी रीतिसे तो लिखना दयानन्दजीको अवश्य था, और जो ग्यारह सो सत्ताईस शाखा लिखीहैं इसमेंभी चार कमती लिखीहैं क्योंकि महाभाष्य की रीतिसे ग्यारह सो इकतीस शाखा होतीहैं तो इन मंत्रों के व्याख्यान होनेपर भी दयानन्दजीको एक व्याख्यानभी गायत्री मंत्रके अर्थ निर्णय वास्ते न मिला तो फिर इनके कल्पित अर्थ को कौन मानेगा फिर स्वामीजीने सवितृपदका व्याख्यान यह लिखाहै जो (सुनोत्युत्पादयति सर्व जगत् स सविता) दयानन्दजी तो अपनेको निघण्टु निरुक्तका पण्डित मानतेहैं फिर यह विरुद्ध अर्थ क्यों लिखा क्योंकि नि० अ० ५ खं० ४ में सवितृपदका भाष्यकार दुर्गाचार्यकृत व्याख्यान यह है कि (सविता षुप्रसवैश्वर्ययोः भू० । प० । तृचि सविता सर्वकर्म्मणां वृष्टिप्रदानादिना अभ्यनुज्ञाता) षु धातु प्रसव तथा ऐश्वर्यमें है प्रसव नाम अभ्यनुज्ञानकाहै अर्थात् फल देने वास्ते कर्मका स्वीकार करना सो सवितादेव वृष्टिरूप फल देने वास्ते यावत् प्राणिवर्ग के कर्म को स्वीकार करताहै और ऐश्वर्य नाम प्रेरणा का है सो सवितादेव सर्व जन्तु मात्रको कर्ममें प्रवृत्त करताहै उदय होकर वा ईश्वररूपसे सबका प्रेरकहै तब ऐसी व्युत्पत्ति होनी चाहिये जो (सुवतीति सविता) और दयानन्दजी ने सुनोत्युत्पादयति सर्व जगत स सविता यह व्युत्पत्ति करीहै इस से भाष्य विरुद्ध है तथा षुञ् अभिषवे स्वादिगणीय धातुका प्रयोग सुनोति रखकर उत्पादयति यह अर्थ करताहै सो भी पाणिनि ऋषि लिखित धात्वर्थ से विरुद्ध है। क्योंकि अभिषव नाम कण्डनकाहै यथा सोमवल्लीका रस निकालने में सोमवल्लीका अभिषव अर्थात् कण्डन होताहै उत्पादन अर्थ षुञ् धातु स्वादिगणीका नहीं इससे पाणिनी के मतसे भी दयानन्दजीका यह अर्थ विरुद्ध है और जो

देवपदकी व्युत्पत्ति करी है "यो दीव्यति दीव्यते वा सदेवः" इस व्युत्पत्तिसे तौ व्याकरण को भी समेट धरा क्योंकि "दिवु क्रीडा विजगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति, गतिषु, दिवादिगणीय परस्मैपदी इस धातुका प्रयोग लिखा है तौ दीव्यति दीव्यते वा सदेवः उस स्थान में धातु तौ केवल परस्मैपदि और प्रयोग [illegible] पदका भी लिख दिया सो प्रलाप है (प्रश्न) दीव्यते यह प्रयोग कर्म में प्रत्यय करके लिखा है (उत्तर) जो दयानन्दजी कर्म में प्रत्यय करते तो इस कर्तृपदमें तृतीया विभक्ति येन ऐसा होना योग्य था, और देव शब्दका वाच्य अर्थ प्रकाश क्रिया का कर्म जगत जड़ वस्तु होजाता, और जो कर्मकर्तृ अर्थ में प्रयोग कहैं तौ भी असंगत है क्योंकि प्रथम परमात्मा प्रकाश क्रियाका कर्महो पश्चात उसी कर्मको कर्तृत्वरूपसे विवक्षा हो तब कर्म कर्तरिप्रयोग हो, सो परमात्मा प्रकाश क्रियाका कर्म होगा तौ पर प्रकाश्यत्वरूप जड़ताकी प्राप्ति होगी और जो स्तुति अर्थ में दिवधातु को मानकर कर्म में प्रत्यय करैं तो देवशब्दका कर्तरि अर्थ के प्रकरण में [illegible]दि गणमें पाठ होनेसे असंगत है, इससे दीव्यते यह प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है और अर्थ भाषामें (सब सुखोंका देनेहारा लिखा है) विचारना चाहिये कि क्रीडा-किसी बाह्य साधनमें विलास विजिगीषा-जीतनेकी इच्छा, व्यवहार-क्रयविक्रय करना द्युति-प्रकाश, स्तुति-स्तवनक्रिया, मोद-आनन्द होना, मद अहंकार करना, स्वप्न-शयनक्रिया, कान्ति-इच्छागति-ज्ञान गमन वा प्राप्ति इतने अर्थ तो पाणिनीजीने इसके स्पष्ट लिख दिये हैं, परन्तु दयानन्दजीने टोटा समझ सुखदान भी इस धातुका अर्थ और कल्पना करलिया क्या पाणिनिऋषि के अर्थों से आपका निर्वाह नहीं होता है, परन्तु मनमाना अर्थ तो नहीं निकलता इसी दयानन्दजीने नये अर्थ की कल्पना करी है ॥ गायत्री प्रकरण पूर्ण हुआ ॥

भास्कर प्रकाश—

स्वामीजी ने कुछ गोल माल नहीं किया। आपको "कुर्यात्सर्वस्यखण्डनम्" का व्यसन होगया है। इस प्रसंग में तो आप बड़ेही चक्कर में आये हैं। जो अर्थ स्वामीजी ने किये हैं वही आपने भी तो किये हैं फिर गोलमाल उन्होंने की है वा आपने। देखो द० ति० भा० पृ० २४ पं० १। २ "भूरिति वै प्राणः भुव इत्यपानः" तैत्ति० अनु० ५ फिर आप कैसे कहते हैं कि स्वामीजी ने स्वयं कल्पना की है। "सवितु" का अर्थ स्वामीजी ने "सर्वोत्पादक" किया है वही आप ने द० ति० भा० पृ० २५ पं० २० में लिखा है कि "सवनात्सविता" उत्पादक होने से "सविता"। "धियः" का अर्थ स्वामीजी ने "बुद्धियों को" किया है वही आप ने द० ति० भा० पृ० २८ पं० ९ में "बहवोबुद्धिभेदाः" बुद्धियां भी हैं, ऐसा लिखा है। आप सविता शब्द से अपने दिये प्रमाण के विरुद्ध सूर्यलोक का ग्रहण करेंगे और गायत्री से सूर्यदेव की भौतिक उपासना सिद्ध करेंगे तो आपनेही जो विस्तार पूर्वक गायत्री मन्त्र में आये "भर्गः" पद का अर्थ लिखा है कि—

भर्गतिभासयतीमान् लोकान्। भर्गतिर्भंजयतीमानिभूतानि।
भर्गतिगच्छन्त्यस्मिन्नागच्छन्त्यस्मादिमाः प्रजाः॥

इसका अर्थ भी आपने पृ० २६ पं० ५ में लिखा है कि— "सुषुप्तिप्रबोध वा महाप्रलय, उत्पत्तिकाल में सर्व प्रजा, परमात्मा में लीन होकर उत्पन्न होती हैं"॥

देखिये आपने भी यहां "भर्ग" शब्द के अर्थ में परमात्मा का ग्रहण किया है। इस से सिद्ध हुवा कि स्वामीजी ने जो अर्थ किया है वह संगत और शास्त्रानुकूल होने के अतिरिक्त आप के पुस्तक से भी पुष्ट होता है। यह दूसरी बात है कि आप ने पाण्डित्यप्रकाशनार्थ व्याहृतियों का अर्थ करते हुए तैत्तिरीय का पाठ बहुत सा भरदिया और आधिभौतिक आधिदैविक आध्यात्मिक तीनों प्रकार के अर्थ लिख दिये और स्वामीजी ने वे अर्थ न लिखकर संक्षेप से एक अर्थ लिख दिया जो ब्रह्मयज्ञ में उपयोगी था और उन्होंने सत्यार्थप्रकाश पृ० ३८ पं० २२ में प्रथमही लिख दिया है कि अब तीन महाव्याहृतियों के अर्थ "संक्षेप" से लिखते हैं। इस लिये उनपर यह तूफान मचाना और तैत्ति० का बहुत पाठ लिख मारना और वृथा लिखना कि स्वामीजी ने अपनी कल्पना तैत्ति० के नाम से की है, सब अनर्थ और असत्य है। और आपने जो—

खल्वात्मनोत्मा नेतामृताख्यश्चेता मन्ता गन्तोत्सृष्टानन्दयिता
कर्त्ता वक्ता रसयिता घ्राता द्रष्टा श्रोता स्पृशति च ॥

और

विभुर्विगृह मन्निविष्ट इत्येवं ब्राह्म । इत्यादि—

लेख से बृहदारण्यक के इस पाठ को जोड़ दिया है कि—

आत्मेत्येवोपासीतात्रैतेसर्वएकंभवंति । बृह० अ० ३ ब्रा० ४ ।

सो आपने चातुर्य नहीं किया किन्तु खुल्लम खुल्ला झूंठ लिखा है। भला पूर्वोक्त पाठ का इस से क्या सम्बन्ध। धन्य! महाराज!! आपने इसी वास्ते अपने पूर्व लेख (खल्वात्मनोत्मा नेता) का पता जान बूझकर नहीं लिखा जिससे कोई पता न चला लेवे, भला इस प्रकार के चातुर्य से कभी सत्यार्थप्रकाश का खण्डन वा विद्वानों की आंखों पर धूल फेंककर कार्य सिद्धि होसकती है? वा अद्वैतपक्ष सिद्ध होसकता है? कभी नहीं। तथापि हम आप के बेपते लेख का अर्थ करके आप को दिखलाते हैं कि इस में [illegible] वर्णन है—

(आत्मनः आत्मा नेता) आपके ही लेखानुसार आत्मा अर्थात् शरीरेन्द्रिय संघात का जो नेता आत्मा है वही चेता मन्ता गन्ता उत्सृष्टा आनन्दयिता कर्त्ता वक्ता रसयिता घ्राता द्रष्टा श्रोता और स्पृष्टा है। भला इस से द्वैत अद्वैत का क्या सिद्ध हुवा? और दूसरे वाक्य—

विभुर्विगृहे सन्निविष्ट इत्येवंब्राह्म। अथ यत्र द्वैतीभूतं विज्ञानं तत्रंहि श्रृणोति पश्यति जिघ्रति रसयति चैव स्पर्शयति सर्वमात्मा जानीतेति यत्राद्वैतीभूतं विज्ञानं कार्यकारणकर्मनिर्मुक्तं निर्वचनमनौपम्यं निरुपाख्यं किंतदवाच्यम् ॥

का अर्थ यह है कि—व्यापक आत्मा देह में घुसा है, यह कहते हैं। जब द्वैतीभूत ज्ञान होता है तब समझा जाता है कि आत्मा सुनता, देखता, सूंघता, चखता और छूता है तथा सर्व को जानता है, परन्तु जब अद्वैत अर्थात् देहादि द्वितीय पदार्थों से सम्बन्ध छूट जाता है तब कार्य कारण कर्म से निर्मुक्त, वचन उपमा और नाम से रहित किम् और तद् शब्द का भी वाच्य नहीं होता। तात्पर्य यह है कि

आत्मा में देखना, सुनना आदि व्यवहार, निर्देश, देवदत्तादि नाम—शरीर सम्बन्ध से बनते हैं, केवल में नहीं। भला इस से जीव ब्रह्म की एकता अनेकता क्या निकलती है? कुछ नहीं।

स्वामीजी ने संक्षेप के कारण आप के समान तैत्तिरीय शाखा का पाठ नहीं धरा परन्तु जितना लिखा है वह सब तैत्तिरीय के अनुकूल ही है। हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि जो अर्थ स्वामीजी ने लिखे हैं वही आपने भी लिखे हैं। हां, उन्होंने प्रकरणानुकूल संक्षेप से और आपने प्रकरण विरुद्ध विस्तार से लिखा है। वेदों की ११३१ शाखाओं में ४ संहिता मूल वेद भी अन्तर्गत गिनी हैं उन को पृथक् करके स्वामीजी ने ११०७ गिनाई हैं, समझ कर देखिये।

आपने जो पाठ निरु० अ० ९ खं० ४ का लिखा है वह न तो नैगमकाण्ड अ० ९ खं० ४ में है और न दैवतकाण्ड अ० ९ खं० ४ में लिखा है। अतः या तो आप पता भूले वा अन्य कुछ कारण हो इस लिये जबतक निरुक्त में इस पाठका पता पं० ज्वालाप्रसाद न लगायें तब तक उत्तर देना व्यर्थ है। रही यह बात कि निरुक्तकार के मतानुसार भ्वादिगणी षु प्रसवैश्वर्ययोः धातु का प्रयोग "सुवति" होता है "सुनोति" नहीं, इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो आपका लिखा निरुक्तका पाठ उस पतेपर मूलमें उपस्थित नहीं जो पता आपने छापा है, इसके अतिरिक्त निरुक्तकार ने कहीं धातुओं के गण भी [illegible] है कि भ्वादि आदि में से अमुक गणी धातु का प्रयोग है इस लिये आप का (भू० प०) लिखना असंगत है। निरुक्त में केवल प्रयोग से गण पहचाना जाता है सो आपके असत्य पते के निरुक्त में भी सुनोति वा सुवति इन दोनों में से कोई प्रयोग भी नहीं है तो आप के लेखानुसार भी स्वामीजी का "सुनोति" प्रयोग निरुक्त के विरुद्ध नहीं प्रतीत होता। और पाणिनि का जो आप प्रमाण देते हैं कि पाणिनि ने स्वादिगणी षुञ् धातु का अर्थ अभिषव लिखा है, उत्पादन नहीं, इसका उत्तर यह है कि महात्माजी! पाणिनि जीने अभिषव अर्थ तो लिखा है परन्तु यह तो नहीं लिखा कि अभिषव का अर्थ उत्पादन नहीं वा कुछ अन्य अमुक अर्थ है? अर्थ समझना हमारा आप का काम है। सोमवल्ली के रस निकालने में इस धातु का प्रयोग होता है तो यह तो समझिये कि रस निकालना वा रस उत्पन्न करना इन में क्या भेद है? कुछ नहीं। रस निकालने

का तात्पर्य भी तो यही है कि सोभरम का उत्पन्न करना। इस लिये स्वामीजी का लेख पाणिनि के विरुद्ध नहीं है। आपने जो "षुप्रसवैश्वर्ययोः" धातुको भू० प० लिखा क्या यह अदादि गण में नहीं है? जब षु धातु भ्वादि अदादि और स्वादि तीनों गणों में है तो स्वादिगण में गण का आदि होने से मुख्य है। तो "मुख्यामुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः" के अनुसार स्वादिगणी का ही ग्रहण भी चाहिये, जैसा कि स्वामीजीने किया है।

प्रत्युत्तर—दीव्यते प्रयोग यथार्थ में कर्मवाच्य है और यही कारण आत्मनेपद लिखने का है और प्रकाश "प्रगट होने" को भी कहते हैं क्योंकि परमात्मा भक्तों के हृदय में प्रकट होते हैं, इसलिये प्रकाश क्रिया के कर्म भी कहे जा सकते हैं, इस में कुछ दोष नहीं। पचादिगण में कर्तृवाच्य लिखने से हमारी हानि नहीं क्योंकि स्वामीजी ने कर्तृवाच्य अर्थ भी तो लिखा ही है। कर्तृवाच्य अर्थ में "यः" है ही कर्मवाच्य में कर्तृपद अध्याहृत "येन" का अध्याहार हो जायगा। "सब सुखों का देनेवाला" यह पदार्थ नहीं किन्तु भावार्थ है। दिषु धातु का "मोद—आनन्द" अर्थ है ही, बस स्वयम् आनन्दस्वरूप है वही अपने भक्तों को सब सुख देसकता है। इस लिये स्वामीजी का तात्पर्य निर्दोष है।

समीक्षा—स्वामी दयानन्दजी ने गायत्री का अर्थ करते समय प्रथम व्याहृतियों के अर्थ कहां सफाया करडाला इसी को पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रने विस्तार पूर्वक प्रकरण देकर दिखलाया कि आप करते क्या हैं। व्याहृतियों का व्याख्यान तो उपनिषदों में इस प्रकार से पाया जाता है इस लेख को देखकर पं० तुलसीरामजी कुछ क्रोध में आकर लिखते हैं कि स्वामीजी ने व्याहृतियों के अर्थ में कुछ गोलमाल नहीं किया आप को "कुर्यात्सर्वस्य खण्डनम्" का व्यसन होगया! इस प्रसंग में तो आप बड़े चक्कर में आये हैं जो अर्थ स्वामीजी ने किये वही आपने किये फिर गोल माल उन्होंने किया या आपने।

पं० तुलसीराम का इतना लिखना किसी भी आर्यसमाजी को तोषदायक नहीं है और न इस से व्याहृतियों के अर्थ की पुष्टि होती है सच पूछिये तो स्वामी

दयानन्द के शास्त्र विरुद्ध लेख का मंडन कोई कहां तक करेगा। जब कुछ नहीं हो सकता तब पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र के ऊपर अपराध लगाकर आगे बढ़ चलते हैं। पं० तुलसीराम को यह तो विचारना चाहिये था कि "कुर्यात्सर्वस्य खण्डनम्" यह सिद्धान्त आर्यसमाज का है या पं० ज्वालाप्रसाद का इस विषय में तो आर्यसमाज संसार भर के मजहबों से बढी चढी है कि जिस के धार्मिक पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में सिवाय खण्डनके और कुछ है ही नहीं। सत्यार्थप्रकाश की तोंद तो खण्डन ही से फूली है मूर्त्तिपूजा, मृतक पितरों का .... तीर्थ आदि आदि धर्मों का खण्डन समाज ने किया या सनातनधर्म ने इतने पर भी पं० ज्वालाप्रसादजी को खण्डन का दोष लगाना क्या यही इन्साफ है ?

पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि व्याहृतियों का जो अर्थ स्वामी दयानन्द ने किया है वही पं० ज्वालाप्रसादजी ने भी किया है क्या सचही इन दोनों के अर्थों में कुछ अन्तर नहीं हमारी समझ में तो इन दोनों के अर्थ में जमीन आसमान का अंतर है पं० तुलसीराम कुछ भी उत्तर नहीं लिख सकते इस कारण से एक अर्थ लिखकर शिरपर आई बलाय को पौलसी से टालते हैं।

पं० ज्वालाप्रसादजी व्याहृतियों का जो अर्थ लिखते हैं वही अर्थ तैत्तिरीयोपनिषद ने विस्तार से लिखा है तैत्तिरीयोपनिषद में इस स्थान पर तृतीय अनुवाक से हिरण्यगर्भ प्रजापति के ध्यान का आरम्भ होता है यहां पर समस्त संसार के पदार्थों को अवयव मानकर ब्रह्माण्ड को ब्रह्म का साकार रूप माना है और उसी का ध्यान यहां पर लिखा है यदि स्वामी दयानन्द उपनिषद के अनुकूल व्याहृतियों का अर्थ कर दें तो ईश्वर शरीरी (साकार) होजावे और ब्रह्म साकार नहीं होता स्वामी दयानन्द का यह मनगढंत सिद्धान्त ऐसा कच कर जावे कि जैसे गधे के शिर से सींग। पं० ज्वालाप्रसादके अर्थ की पुष्टि के लिये हम तैत्तिरीयोपनिषद का समस्त पञ्चमोऽनुवाक लिखते हैं—

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः तासामुह स्मैतां चतुर्थीम्। माहाचमस्यः प्रवेदयते। मह इति। तद्ब्रह्म। स आत्मा। अङ्गान्यन्या देवताः। भूरिति वा अयं लोकः। भुव इत्यन्तरिक्षम्। सुवरित्यसौ लोकः ॥ १ ॥ मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे

लोका महीयन्ते । भूरिति वा अग्निः । भुव इति वायुः सुवरित्यादित्यः । मह इति चन्द्रमा । चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतीꣳषि महीयन्ते । भूरितिवै ऋचः । भुव इति सामानि । सुवरिति यजूꣳषि ॥ २ ॥ मह इति ब्रह्म । ब्रह्मणावाव सर्वे वेदा महीयन्ते । भूरितिवै प्राणः । भुव इत्यपानः । सुवरिति व्यानः । मह इत्यन्नम् । अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते । ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्धा । चतस्रश्चतस्रो व्याहृतयः । ता यो वेद । स वेद ब्रह्म । सर्वेऽस्मै देवा वलिमावहन्ति ॥ ३ ॥ असौलोको यजूꣳषिवेदद्वेच ।

प्रथम—"भूः" का अर्थ पृथिवीलोक, "भुवः" का अर्थ अन्तरिक्ष, "स्वः" का अर्थ स्वर्ग, और "महः" का अर्थ दृश्य सूर्य करके यह दिखलाया है कि सूर्य से समस्त लोक बृद्धि को प्राप्त होते हैं ।

द्वितीय—"भूः" का अर्थ भौतिक अग्नि, "भुवः" का अर्थ वायु, "स्वः" का अर्थ दृश्य सूर्य, और "महः" का अर्थ चन्द्रमा करके यह लिखा है कि चन्द्रमा से समस्त तारागण बृद्धि को प्राप्त होते हैं ।

तृतीय—"भूः" का अर्थ ऋक्, "भुवः" का अर्थ साम, "स्वः" का अर्थ यजुः, और "महः" का अर्थ ब्रह्म करके यह लिखा है कि ब्रह्मसे वेद बृद्धि को प्राप्त होते हैं।

चतुर्थ—"भूः" का अर्थ प्राण, "भुवः" का अर्थ अपान, "स्वः" का अर्थ व्यान और "महः" का अर्थ अन्न करके यह लिखाहै कि अन्नसे प्राण बृद्धिको प्राप्त होते हैं।

स्वामी दयानन्दजी ने इन चार अर्थों में से अंतिम एक अर्थ लिया है और इस मन्त्र में कहे देव और अंग सिद्ध न होजावे इस भय से प्राण अपान व्यान इन तीनों व्याहृतियों का अर्थ ईश्वर किया है अब हम आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि यदि वास्तव में स्वामी दयानन्दजी का लिखा "भूः" "भुवः" "स्वः" इन तीनों व्याहृतियों का अर्थ ईश्वर है ऐसी हालत में तैत्तिरीयोपनिषद के इस अनुवाक पर हड़ताल लगी या नहीं क्या समाज इस कार्य से धार्मिक कहलाने का दावा करसक्ती है क्या समाज ने स्वामी दयानन्द के अयोग्य लेखों से वेद पर पानी फेरने में अपनी

उन्नति समझा है जब स्वामी दयानन्द इसप्रकार बातों पर हड़ताल लगाते हैं ऐसी दशा में उनको महर्षि पदवी देना क्या समाज का यह कार्य उचित और प्रशंसनीय है मुझे आशा है कि विचारशील आर्यसमाजी इसपर विचार करेंगे। पं० ज्वालाप्रसाद जी ने दयानन्द तिमिरभास्कर में विस्तार पूर्वक उपनिषदकृत अर्थ को दिखलाया है किन्तु उसके उत्तर में पं० तुलसीरामजी असमर्थ होगये हैं। दयानन्दतिमिरभास्कर के अलावा हम भी कुछ दोष स्वामी [illegible] देते हैं। देखिये-जब कि स्वामी दयानन्दजी ने प्राण का अर्थ ब्रह्म किया है और आगे जो उपनिषद् ने यह लिखा है कि अन्न से प्राण बृद्धि को प्राप्त होते हैं तो क्या सब समाजियों का निराकार ईश्वर दाल रोटी या हलुवा पूरी खिलाकर संडो (पतिलयान) बनाया जावेगा इसका क्या उत्तर है ?

स्वामी दयानन्दजी "भूः" का अर्थ लिखते हैं "भूरितिवै प्राणः" "यः प्राणयति चराचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः" जो सब जगत् के जीवन का आधार प्राण से भी प्रिय और "स्वयम्भूः" उस प्राण का वाचक होके "भूः" परमेश्वर का नाम है। क्या कोई भी विद्वान् चाहे वह आर्यसमाजी हो या सनातनधर्मी मुसलमान हो या ईसाई किसी भी व्याकरण से चाहे संस्कृत या हिन्दी या अर्बी या अंग्रेजी आदि आदि ग्रामरों से स्वामी दयानन्दकृत "भूः" के अर्थ और व्युत्पत्ति की सत्यता सिद्ध करने का कभी भी दावा कर सकता है ? क्या "भूः" की इतनी बड़ी व्युत्पत्ति होसकती है क्या प्राण से ईश्वर का ग्रहण करना इसमें निरुक्त निघंटु कोष आदि किसी भी शास्त्र का प्रमाण कोई आर्यसमाजी देसकता है ? यदि ऐसा नहीं तो फिर हम क्यों न कहें कि आर्यसमाज अंधेरखाते में पड़गया और अपनी आंखों को बन्द कर स्वामी दयानन्दजी की आंखों से ही काम लेना चाहता है। एक दृष्टि "भुवः" शब्द के अर्थ पर भी डालिये। स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि "भुवरित्य पानः" "यः सर्वं दुखम पानयति सोऽपानः" जो सब दुखों से रहित जिस के संग से जीव सब दुखों से छूट जाते हैं इसलिये उस परमेश्वर का नाम "भुवः" है जिसप्रकार कोई मनुष्य बरेली के सुरमे का अर्थ सोडावाटर कर ले इसी प्रकार स्वामी दयानन्द जी ने अपान का अर्थ ईश्वर किया है जो आज तक किसी भी हिन्दू ग्रन्थ में नहीं लिखा अतएव अमान्य है।

स्वामी दयानन्दजी इसके अर्थ में लिखते हैं कि जिसके संग से जीव सब दुखों से छूट जाते हैं। यहांपर हम को इतना पूछना है कि आर्यसमाजी जीवों को उस

का संग हुआ या नहीं यदि ये कहें कि नहीं हुआ तो फिर बतलावें कि इनका निराकार, सर्वव्यापक, एकरस ईश्वर कहां गया क्या हिन्दुस्तान छोड़कर अमेरिका आदि किसी अन्य देश को चला गया ? यदि ये कहें कि नहीं नहीं वह तो सर्वदा ही सर्वव्यापक एकरस होने से भारतवर्ष में भी है और आर्यसमाजी जीवों को उस का संग है ऐसी दशा में हम पूछते हैं कि क्या वास्तव में इन के दुःख दूर होगये, क्या इनकी मोक्ष होगई, क्या अब ये मोक्ष से लौटकर फिर संसार में तो नहीं आवेंगे, क्या बिना भोगे दुःखदायक कर्म छूट गये ? स्वामी दयानन्दजीने जो सत्यार्थ प्रकाश में यह लिखा था कि कर्म बिना भोगे नहीं छूटते क्या यह आज मिथ्या हो गया ? इसपर समाजियों को विचार करना चाहिये क्योंकि स्वामीजी के इस अर्थ से समाज के कई एक सिद्धान्तों पर धक्का पहुँचा है यह कोई मान नहीं सकता कि यहां पर यही ठीक और अपने स्थान पर सिद्धान्त ठीक हैं ।

क्या पं० तुलसीराम ने आगा पीछा विचार कर स्वामी दयानन्द के अर्थ को शुद्ध माना या यों ही ? "बाबा वाक्यं प्रमाणम्" नियम के अनुसार शुद्ध कह दिया इस का विचार पाठक कर सकते हैं ।

स्वामी दयानन्दजी व्यान के अर्थ में लिखते हैं कि "स्वरिति व्यानः" "यो विविधं जगत् व्याप्नोति स व्यानः" जो नाना विध जगत् में व्यापक होके सब का धारण करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "स्वः" है इसके ऊपर इतना विचारणीय है कि भारतवर्ष निवासी आर्यसमाजियों को जब उसका संग नहीं फिर व्यान शब्द में कहीं ईश्वर की व्यापकता विविध जगत में कैसे ठहर सकती है अपान में तो ईश्वर को [illegible] बताया क्योंकि संग एक देशी का ही होता है और अब विविध जगत में [illegible] जाते हैं यदि वह वास्तव में विविध जगत में व्यापक होता तब तो आर्यसमाजियों के दुःख दूर होजाते किन्तु जब कि ऐसा नहीं हुआ फिर प्रत्यय के विरुद्ध विविध जगत में ईश्वर की व्यापकता को कोई विचारशील मनुष्य कैसे मान सकता है ।

स्वामीजी लिखते हैं कि ईश्वर सब जगत को धारण करता है इससे ईश्वर का नाम "स्वः" है क्या मजे की व्याख्या है कहां "स्वः" कहां धारण करना "स्वः" और धारण करने का तो कुछ भी सम्बन्ध नहीं यह तो वही बात हुई कि बजाज गज से कपड़ा नापता है इस कारण नेत्रहीन को अंधा कहते हैं जिस प्रकार बजाज

के गज और नेत्रहीन से कुछ भी सम्बन्ध नहीं उसी प्रकार "स्वः" और धारण करने में भी कोई सम्बन्ध नहीं। हम देखना चाहते हैं कि व्याहृतियों के दयानन्दकृत (अयोग्य वेद विरुद्ध) अर्थ की रक्षा में पं० तुलसीराम या और कोई समाजी आगे को क्या लेख लिखता है।

स्वामी दयानन्दकृत अर्थ की कोई कालांतर रक्षा करेगा उन का तो यह स्वभाव है कि जो जी में आता है वही अर्थ कर लेते हैं। सत्यार्थप्रकाश में गायत्री मंत्र की व्याहृति "भूः भुवः स्वः" इनका अर्थ ईश्वर किया किन्तु वेद के जिस स्थान से यह मंत्र उठाकर सत्यार्थप्रकाश में लिखा उस स्थान में स्वामीजी ने व्याहृतियों का अर्थ क्या किया इस को भी कभी आर्यसमाजियों ने आंख उठाकर देखा? यह मंत्र यजुर्वेद अ० ३६ मंत्र संख्या ३ का है और यही पता स्वामी दयानन्दजी इस मंत्र के नीचे सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं। जब हम व्याहृतियों के दयानन्दकृत अर्थ का निर्णय करने के लिये एक दौड़ वेद के ३६ अध्याय में लगाते हैं तो वहां पर स्वामी दयानन्दकृत (व्याहृतियों का) अर्थ कुछ और ही पाते हैं। वहां पर स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि "भूः" कर्मकाण्ड विद्या "भुवः" उपासनाकाण्ड की विद्या "स्वः" ज्ञानकाण्ड की विद्या जिन व्याहृतियों का अर्थ सत्यार्थप्रकाश में ईश्वर लिखा गया उन्हीं व्याहृतियों का अर्थ उसी मंत्र पर वेद में विद्या कर दिया क्या पं० तुलसीराम या और कोई समाजी कभी इस बात का विचार करेगा कि इन दो अर्थों में से कौन अर्थ समाज की दृष्टिमें शुद्ध है। क्या कभी समाज इस बात पर भी ध्यान देगी कि स्वामी दयानन्दजी वेद के मंत्रों का अर्थ नहीं करते किन्तु बच्चों कैसा खेल करते हैं यदि एक मंत्र स्वामी दयानन्द चार जगह लिखेंगे तो अर्थ भी चारही करेंगे।

यदि कोई आर्यसमाजी कहे कि पं० ज्वालाप्रसादकृत अर्थ भी अशुद्ध होगा तो इसके ऊपर हम इतना उत्तर काफी समझते हैं कि जो अर्थ पं० ज्वालाप्रसादजी ने किया है वही तैत्तिरीयोपनिषद में [illegible] सुनकर यदि समाजी कहें कि यह उपनिषद हम को प्रमाण नहीं तो फिर स्वामी दयानन्द के लेख को ही स्वतःप्रमाण मानते हैं तब प्रथम तो हम आपको उत्तर यह देंगे कि स्वामी दयानन्द ने इस जगह तैत्तिरीयोपनिषद का स्वतः प्रमाण मानकर यह बतलाया है कि जो व्याहृतियों का अर्थ हमने लिखा है वह [illegible] का है यह बात दूसरी है कि तैत्तिरीयोपनिषद के बहाने से स्वार्थ [illegible] साधारण मनुष्यों को धोखा दिया

हो या तैत्तिरीयोपनिषद के जोर पर अपने मिथ्या अर्थ को सत्य करना चाहा हो परन्तु किसी हालत में भी उपरोक्त उपनिषद प्रमाण कोटी से बाहर नहीं जासकता। दूसरा उत्तर यह है कि यदि वास्तव में ही वर्त्तमान आर्यसमाज वेद को प्रमाण नहीं मानती और केवल स्वामी दयानन्द के लेख को स्वतः प्रमाण मानती है इस दशा में उचित है कि हम मिश्र ज्वालाप्रसादकृत व्याहृतियों के अर्थ पर स्वामी दयानन्दकृत लेख का प्रमाण दें।

मिश्रजी ने "भूः भुवः स्वः" इन व्याहृतियों का अर्थ प्राण अपान व्यान शरीरस्थ वायुत्रय किया है स्वामी दयानन्दजी भी यजुर्वेद अ० ३ मं० ३५ में "भूः भुवः स्वः" इन व्याहृतियों का अर्थ लिखते हैं कि जो प्रिय स्वरूप प्राण, बल का हेतु उदान, तथा सर्व चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु व्यान वायु है। अब पं० तुलसीराम या और कोई आर्यसमाजी मौन होने के सिवाय और क्या कह सकता है। हमें आशा है कि किसी दिन आर्यसमाज धार्मिक कोटी में प्रवेश करेगी और सत्यार्थप्रकाश में लिखे व्याहृतियों के अर्थ के शुद्धाशुद्ध का निर्णय करेगी किन्तु यह आशा दुराशा सी मालूम होती है क्योंकि आर्यसमाज विचार को अपने पास नहीं फटकने देती।

हमने व्याहृतियों के अर्थ के ऊपर जो कुछ लिखा है इससे यह सिद्ध होता है कि स्वामी दयानन्दकृत अर्थ वेद विरुद्ध और मनगढंत है तथा मिश्रकृत अर्थ वेदानुकूल है साथही साथ यह भी सिद्ध होगया कि पं० तुलसीराम व्याहृतियों के तीन प्रकार के दयानन्द के अर्थ को देखकर चक्कर में पड़ गये कि किस को शुद्ध और किस को अशुद्ध लिखें। अब हम पं० तुलसीरामजी से पूछते हैं कि सच तो बतलाइये चक्कर में पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र आये या आप? इसके अलावा व्याहृतियों के स्वामी दयानन्दकृत तीन अर्थ दिखलाकर हमने यह सिद्ध कर दिया है कि स्वामी दयानन्द वेद का अर्थ मनमाना करते हैं और यदि कोई मन्त्र चार जगह आवे तो चार ही अर्थ करते हैं यह बात निश्चयही स्वामी दयानन्द ऐसे पुरुष को अयोग्य और अनुचित है।

पं० तुलसीरामजी जब पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत व्याहृतियों के अर्थ का खण्डन न कर सके तब हुकुम चढ़ाते हैं कि तुम्हारा अर्थ अनर्थ है और असत्य है। सत्यार्थ प्र० पृ० ३८ पं० २२ में प्रथमही लिख दिया है कि अब तीन महा व्याहृतियों के अर्थ "संक्षेप" से लिखते हैं इसलिये उसपर यह तूफान मचाना और तैत्ति० का बहुत पाठ लिख मारना और वृथा लिखना कि स्वामीजी ने अपनी कल्पना तैत्ति० के नाम

से की है सब अनर्थ और असत्य है पं० तुलसीराम यह बतलावें कि स्वामी दयानन्द ने अर्थ संक्षेप से किया है या वायुवत् [illegible] मनमाना अर्थ ईश्वर किया है क्या इसी को संक्षेप कहते हैं यदि कोई मनुष्य दाग का कुत्ता अर्थ बिगाड़कर भैंस कर दे तो क्या इसका नाम संक्षेप होगा। यदि कहो कि नहीं तो फिर स्वामीजी के अर्थ को कोई संक्षेप कैसे कह सकता है ?

पं० तुलसीराम ज्वालाप्रसाद के ठीक अर्थ करने और उसके प्रमाण में तैत्तिरीयोपनिषद का प्रमाण देने को तूफान मचाना कहते हैं हमें यह खबर नहीं थी कि कोई ठीक अर्थ करके उस अर्थ की पुष्टि में वेद का प्रमाण दे दे तो वह समाज की दृष्टि में तूफान मचाता है क्या कोई भी समझदार मनुष्य इस को तूफान कहसकता है ? यदि इसको तूफान कहते हैं तो फिर अंडबंड अर्थ करने को विद्वत्ता और धार्मिकता कहते होंगे ? पं० तुलसीराम के ऐसे विचार ! यह कितने शोक की बात है जो मनुष्यों की दृष्टि में पं० तुलसीराम के [illegible] का रूप दिखलाते हैं।

पं० तुलसीरामजी यह लिखते हैं कि तैत्तिरीयोपनिषद् का बहुत पाठ लिख मारना वृथा है क्या कोई भी मनुष्य इस को वृथा बता सकता है कि जिसके लिखने से स्वामी दयानन्दकृत मनगढंत अर्थ का चकनाचूर होगया मालूम होता है कि पं० तुलसीराम को वेद से घृणा होगई है तभी तो तैत्तिरीयोपनिषद के पाठ के लिये लिख मारना कहते हैं जो सुसाइटी वेद को अपना धर्म पुस्तक मानती हो और वह वेद के लिये ऐसे शब्द लिखे तो उसके लिये हम शोक शोक महा शोक इन्हीं शब्दों का व्यवहार करेंगे।

पं० तुलसीराम इनका उत्तर क्यों नहीं देते ? क्रोधमें आके मिश्र ज्वालाप्रसाद तथा वेद को फटकार (धमकी) क्यों बतलाते हैं क्या धमकी बतलाने से मनुष्यों पर आर्यसमाज के सिद्धान्तों की [illegible] साबित होजावेगी या समाज विजय की पदवी पर पहुँचेगी इसका विचार पाठकों के ऊपर छोड़ता हूँ।

अब व्याहृतियों का विचार बन्द करके गायत्री मन्त्र के विचार का आरम्भ करता हूँ। तत्—स्वामी दयानन्दजी "तत्" शब्द का अर्थ लिखते हैं कि "उसी परमात्मा के स्वरूप को हम लोग" यहांपर स्वतः स्वामी दयानन्दजी ही आर्यसमाज के निराकारवाद की मिट्टी पलीत कर रहे हैं। आर्यसमाज ब्रह्म को बिलकुल निराकार मानती है किन्तु स्वामीजी "तत्" शब्द के अर्थ में ईश्वर का स्वरूप बतलाते हैं

क्या स्वरूप वाला ब्रह्म भी केवल निराकार ही कहला सकता है जिसके स्वरूप है वह क्या बिल्कुल साकार होता ही नहीं आज स्वामी दयानन्दजी ने ईश्वरका स्वरूप लिखकर आर्यसमाज के निराकारवाद की धज्जियां उड़ा दी हैं अब समाज किस हौसले पर कह सकती है कि ब्रह्म के रूप नहीं क्या समाज स्वामी दयानन्द के इस लेख को सत्य मानती है यदि सत्य मानती है तो साकार का खण्डन सत्यार्थप्रकाश से निकालना उचित ही है और यदि असत्य मानती है तो फिर जोर देकर क्यों नहीं कहती कि स्वामीजी ने गायत्री मंत्र का अर्थ सत्यार्थप्रकाश में अशुद्ध लिखा है। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में तो "तत्" शब्द का अर्थ "उसी परमात्मा के स्वरूप को हम लोग" यह किया है किन्तु यजुर्वेद अ० ३ मं० ३५ इसी गायत्री मंत्र के "तत्" शब्द का अर्थ "उसको" किया है और यजुर्वेद अ० ३६ मं० ३ इसी गायत्री मन्त्रके "तत्" शब्द का अर्थ "उस इन्द्रियों से न ग्रहण करने योग्य परोक्ष" किया है समाज स्वामीजी के इन तीन अर्थों में से किस को सत्य मानती है इसका उत्तर देना पं० तुलसीराम या प्रतिनिधि सभाओं को आवश्यकीय और लाजमी है देखें क्या उत्तर मिलता है।

सवितुः—स्वामी दयानन्दजी "सवितुः" का अर्थ लिखते हैं कि "यः सुनो त्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता ईश्व" जो सब जगत् का उत्पादक और सब ऐश्वर्य का दाता है इसपर [illegible] आत्मारामजी लिखते हैं कि स्वामीजी ने सवितृ पद का व्याख्यान यह लिखा है जो (सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता) दयानन्दजी तो अपने को निघण्टु निरुक्त का पण्डित मानते हैं फिर यह विरुद्ध अर्थ क्यों लिखा क्योंकि नि० अ० ५ खं० ५ में सवितृ पद का भाष्यकार दुर्गाचार्यकृत व्याख्यान यह है कि (सवितापुप्रसवैश्वर्य योः अ० । प० तृचि सविता सर्व कर्मणां वृष्टि प्रदानादिना अभ्यनुज्ञाता) षु धातु प्रसव तथा ऐश्वर्य में है प्रसव नाम अभ्यनुज्ञान का है अर्थात् फल देने वास्ते कर्म का स्वीकार करना सो सविता देव वृष्टिरूप फल देने वास्ते यावत् प्राणिवर्ग के कर्म को स्वीकार करता है और ऐश्वर्य नाम प्रेरणा का है सो सविता देव सर्व जन्तु मात्र को कर्म में प्रवृत्त करता है उदय होकर वा ईश्वर रूप से सब का प्रेरक है तब ऐसी व्युत्पत्ति होनी चाहिये जो (सुवतीति सविता) और दयानन्दजी ने सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता यह व्युत्पत्ति करी है इस से भाष्य विरुद्ध है तथा षुञ् अभिषवे स्वादि गणीय धातु का प्रयोग सुनोति रखकर

उत्पादयति यह अर्थ करा है सो भी पाणिनि ऋषि लिखित धात्वर्थसे विरुद्ध है क्योंकि अभिषव नाम कण्डन का है यथा सोमवल्ली का रस निकालने में सोमवल्ली का अभिषव अर्थात् कण्डन होता है उत्पादन अर्थ षुञ् धातु स्वादिगणीय का नहीं इस से पाणिनीके मतसे भी दयानन्दजी का यह अर्थ विरुद्ध है। इसके ऊपर पं० तुलसी-राम का उत्तर यह है आपने जो पाठ निरु० अ० ५ खं० ४ का लिखा है वह न तो नैगमकाण्ड अ० ५ खं० ४ में है और न दैवतकाण्ड अ० ५ खं० ४ में लिखा है अतः या तो आप पता भूले वा अन्य कुछ कारण हो इस लिये जब तक निरुक्त में इस पाठ का पता पं० ज्वालाप्रसाद न लगायें तब तक उत्तर देना व्यर्थ है रही यह बात कि निरुक्तकार के मतानुसार भ्वादि गणीय षुप्रसवैश्वर्ययोः धातु का प्रयोग "सुवति" होता है "सुनोति" नहीं इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो आपका लिखा निरुक्त का पाठ उस पते पर मूल में उपस्थित नहीं जो पता आपने छापा है इसके अतिरिक्त निरुक्तकार ने कहीं धातुओं के गण भी नहीं बताये हैं कि भ्वादि आदि में से अमुक गणी धातु का प्रयोग है इस लिये आप का (भ्० प०) लिखना असंगत है निरुक्त में केवल प्रयोग से गण पहचाना जाता है सो आप के असत्य पते के निरुक्त में भी सुनोति वा सुवति इन दोनों में से कोई प्रयोग भी नहीं है तो आपके लेखानुसार भी स्वामीजी का "सुनोति" प्रयोग निरुक्त के विरुद्ध नहीं प्रतीत होता और पाणिनि का जो आप प्रमाण देते हैं कि पाणिनि ने स्वादिगणी षुञ् धातु का अर्थ अभिषव लिखा है उत्पादन नहीं इसका उत्तर यह है कि महात्माजी पाणिनिजी ने अभिषव का अर्थ तो लिखा है परन्तु यह तो नहीं लिखा कि अभिषव का अर्थ उत्पादन नहीं वा कुछ अन्य अमुक अर्थ है अर्थ समझना [illegible] का काम है सोमवल्ली के रस निकालने में इस धातु का प्रयोग होता है तो यह तो समझिये कि रस निकालना वा रस उत्पन्न करना इसमें क्या भेद है कुछ नहीं रस निकालने का तात्पर्य भी तो यही है कि सोम रसका उत्पन्न करना इस लिये स्वामीजी का लेख पाणिनि के विरुद्ध नहीं और आपने जो "षुप्रसवैश्वर्ययोः" धातुको भ्० प० लिखा क्या यह अदादिगण में नहीं है जब षु धातु भ्वादि अदादि स्वादि तीनों गणों में है तो स्वादिगण में गण का आदि होने से मुख्य है तो "मुख्यामुख्ययोर्मुख्ये कार्य संप्रत्ययः" के अनुसार स्वादिगणी का ही ग्रहण भी चाहिये जैसा कि स्वामीजी ने किया है। इसके ऊपर यह है कि "सवितुः" पद का अर्थ पं० ज्वालाप्रसादजी ने सूर्य किया है इसका कारण यह है कि यह मंत्र उपासना प्रकरण का है और उपासना सर्वदा साकार की होती है सूर्य और ब्रह्म का

अभेद माना गया है उपासना विषय में जिस की उपासना की जाती है उसका और ब्रह्म का अभेद माना जाता है यह उपासना का नियम है स्वामीजी उपासना विषय को वेद से निकालना चाहते हैं इस वास्ते उपासना को उड़ाकर इसका अर्थ ब्रह्म किया है। स्वामीजी ने जो अर्थ संस्कृत व्युत्पति में किया है भाषा में कुछ अर्थ संस्कृत से अधिक भी कर दिया है आप लिखते हैं कि "और सब ऐश्वर्य का दाता" यह इतना अर्थ स्वामी के संस्कृत अर्थ से अधिक है इस के बढ़ाने से मालूम होता है कि ईश्वर से गायत्री मंत्र में कुछ कमी रहगई उसको १९ वीं शताब्दी में स्वामी दयानन्दजी पूरा करते हैं। हमें इस बातका रंज नहीं बल्कि खुशी है कि और मजहब में नहीं तो आर्यसमाज में तो ऐसे पुरुष होने लगे कि जो ईश्वर से वेद में अशुद्धियां होगई थी उनको शुद्ध कर देते हैं। स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश में "सवितुः" का अर्थ "जो सब जगत् का उत्पादक" लिखा किन्तु उन्हों ने यजुर्वेद अ० ३६ मं० ३ में "सवितुः" का अर्थ "समस्त ऐश्वर्य के देनेवाले परमेश्वर के" किया है यहां पर "समस्त जगत् के उत्पन्न करनेवाले" अर्थ को बिलकुल उड़ा दिया है अब हम को नहीं मालूम कि समाज किस अर्थ को शुद्ध और किस को अशुद्ध मानती है इसका उत्तर समाज के जिम्मे है।

अब हम इसके आगे लिखे पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र के आक्षेप और पं० तुलसीराम के उत्तरों को दिखलाते हैं ध्यान देकर पढ़िये—पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि स्वामी दयानन्द को तो निरुक्त और निघण्टु के जानने का घमंड था इतना होकर भी दयानन्दजी "सुनोति" से "सविता" की व्युत्पत्ति करते हैं निघण्टु अ० ५ खं० ४ में दुर्गाचार्य "षु प्रसवैश्वर्ययोः" धातु को भ्वादिगणीय परस्मैपदी मानते हैं फिर स्वामीजी ने उत्पादन अर्थ में जो स्वादिगण से सविता बनाया है क्या यह दयानन्द की भूल नहीं है क्या इस के यह सिद्ध नहीं होता कि स्वामी दयानन्द को व्याकरण से पूरी अभिज्ञता (जानकारी) नहीं है ? इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि निरुक्तमें पं० ज्वालाप्रसाद के लिखे प्रमाणका पताही नहीं लगता जब पं० ज्वालाप्रसाद ठीक पता लिखेंगे तब हम उत्तर देंगे। पं० तुलसीराम के इस लेख पर बिना हँसे नहीं रहा जाता यह तो वही बात हुई कि किसी मनुष्य ने कहा कि कलकत्ते में ट्राम्बे बड़ी जल्दी चलती है इस को सुनकर दूसरा मनुष्य बोला कि जल्दी तो तब चलेगी जब कि पहिले बन जावेगी अभी तक तो मेरट में तो ट्राम्बे ही नहीं हैं अगर है तो बतलाओ कौन सड़क पर होकर जाती है कहैं कलकत्ता सुनें मेरट। हूबहू यही

यही हाल पं० तुलसीराम का है पं० ज्वालाप्रसादजी तो निघण्टु का प्रमाण देते है ? और पं० तुलसीराम लिखते हैं कि निरुक्त में यह पाठ ही नहीं निघण्टु की जगह निरुक्त का जिकर लाना प्रमाण दे रहा है कि पं० तुलसीराम कुछ उत्तर नहीं देसकते केवल बातों में ही टालेंगे इसके अलावा पं० तुलसीराम यह भी लिखते हैं कि निरुक्त में धातुओं के गण भी नहीं हैं इस वास्ते "पु" धातु को भ्वादि परस्मैपदी मानना असंगत है पं० तुलसीराम क्या ही अच्छा उत्तर देते हैं यदि निरुक्तकार धातुओं के रूप न लिखे या धातुओं के गण न लिखे तो पं० तुलसीराम भू धातु को अदादि गण में पढ़कर भौतिरूप लिख देंगे यदि कोई आक्षेप करेगा तो वही जवाब दे देंगे कि निरुक्तकार ने मूल में धातुओं के गण नहीं पढ़े लीजिये पं० तुलसीराम ने तो व्याकरण का सफाया ही कर डाला।

पं० तुलसीराम ने निरुक्त लिखते समय मूल में नहीं ऐसा पाठ लिखा है इस पाठ के लिखने का कारण यह है कि यदि दुर्गाचार्यकृत व्याख्यान में निकल भी आया तो उसके लिये हम लिख देंगे कि दुर्गाचार्य का व्याख्यान सनातन धर्मियों को प्रमाण होगा हम को नहीं। इसके ऊपर हम यह कह सकते हैं कि आपने तो वेद के व्याख्यानों में सम्भव असम्भव सब ही को माना है कभी भी इनकार नहीं किया आज नया नियम कैसे बना लेंगे। यजु० अ० २१ मं० ६० में स्वामी दयानन्दजी ने "छागस्य" बकरे नर का घी और दूध [illegible] लिखा है हालां कि संसार में बकरीका तो घी दूध होता है किन्तु बकरे का नहीं होता न होने पर भी आपने उस को माना और आज तक मानते चले आते हैं फिर दुर्गाचार्य से आप का कौन द्वेष है जो उस के व्याख्यान को नहीं मानते ?

इस के अलावा स्वामी दयानन्दजी तो हिन्दुओं के छोटे बड़े सभी ग्रन्थों को प्रमाण मानते हैं उदाहरण के लिये आप द्वितीय समुल्लास में स्वामी दयानन्द का स्वतः प्रमाण माना "माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः" श्लोक को देख सकते हैं इसके ऊपर यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि स्वामी दयानन्द ने माना होगा हमें इस से क्या प्रयोजन है हम तो इस को नहीं मानते हम तो केवल चारही शाखाओं को प्रमाण मानेंगे ऐसी दशा में हम कह सकते हैं कि यदि वास्तव में पं० तुलसीराम के सिद्धान्त स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों से भिन्न हैं तो रहें किन्तु इस जगह तो हम स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों का ही खण्डन करते हैं।

द्वितीय–यदि पं० तुलसीराम आदि केवल चार ही शाखाओं को प्रमाण मानेंगे तो फिर जनेऊ और चुटिया दोनों ही उतार देने होंगे क्योंकि इन चार शाखाओं में जनेऊ का पहिनना और चुटिया का रखाना कहीं पर नहीं लिखा अभी तक पं० तुलसीराम के गले में जनेऊ भी है और शिर पर चुटिया भी है इस से हम जानते है कि पं० तुलसीराम चार शाखाओं से भिन्न सनातन धर्म की और और पुस्तकों को भी स्वतः प्रमाण मानते हैं यदि न मानते होते तो चुटिया जनेऊ का त्याग कर देते। जब कि पं० तुलसीराम सनातन धर्म के और और ग्रन्थों को स्वतः प्रमाण मानते हैं तो फिर दुर्गाचार्य के व्याख्यान को प्रमाण न मानने में क्या सबूत रखते हैं?

इस के अलावा पं० शिवशंकर शर्मा ने (जो समाज में वेद के ज्ञाता के नाम से प्रसिद्ध हैं) अपने बनाये "त्रिदेव निर्णय" नामक पुस्तक में दुर्गाचार्य के व्याख्यान को प्रमाण माना है तो क्या पं० तुलसीराम पं० शिवशंकर शर्मा के प्रमाण कोटी में लिये दुर्गाचार्य के व्याख्यान को प्रमाण न मानेंगे। क्या सच ही आर्यसमाज में अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग चलेगा क्या आर्यसमाज का प्रत्येक मनुष्य अपने डेढ़ चावलकी खिचड़ी अलग ही पकावेगा यदि ऐसाहै तब तो हम इन को नमस्कार करते हैं। और यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि ये सब कालूराल की बाते हैं किन्तु आज संसार में जितने आर्यसमाजी हैं उन सब का एक सिद्धान्त है यदि ऐसा है तब तो पं० शिवशंकर शर्मा के प्रमाण कोटी में लिये दुर्गाचार्यकृत व्याख्यान को प्रमाण कोटी से बाहर निकालने का कोई हक पं० तुलसीराम को नहीं है आर्यसमाज के प्रसिद्ध वेदज्ञ पं० शिवशंकर शर्मा ने दुर्गाचार्यकृत व्याख्यान को प्रमाण कोटी में लिया है आर्यसमाज इस को प्रमाण मानती है और दुर्गाचार्य ने "षु" धातु को भ्वादि परस्मैपदी मानकर व्याख्यान में सुवतिरूप दिया है बस अब सिद्ध होगया कि उत्पन्न अर्थ में "षु" धातु भ्वादिगणी है और स्वामी दयानन्द का इस को स्वादिगणी मानना प्रमाद भूल है। और पं० तुलसीरामजी ने जो पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र के लेख को असंगत बतलाया और असंगत होने में कोई प्रमाण न दिया इससे सिद्ध होता है कि पं० तुलसीराम सत्यार्थप्रकाश का मण्डन नहीं कर सकते किन्तु तिमिरभास्कर के उत्तर में असंगत है झूठ है गप्प है जो स्वामी दयानन्द ने लिखा वही सत्य है इत्यादि शब्द लिखकर टालमटोला करते हैं।

और पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने यह भी दिखलाया कि स्वामी दयानन्द ने "षुञ् अभिषवे" स्वादिगणीय धातु का प्रयोग सुनोति रखकर उत्पादयति अर्थ करदिया यह पाणिनी लिखित धात्वर्थ से विरुद्ध है। मिश्र पं० ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि अभिषव नाम सोमवल्ली कण्डन (कूटने) का है क्योंकि इस धातु का प्रयोग सोमवल्ली के कण्डन कूटकर रस निकालने में वेद में होता है इस के ऊपर पं० तुलसीराम लिखते हैं कि पाणिनीजी ने अभिषव अर्थ [illegible] परन्तु यह तो नहीं लिखा कि अभिषव का अर्थ उत्पादन नहीं वा कुछ अन्य अमुक अर्थ है इसके ऊपर हम कहते हैं कि किसी मनुष्य ने संस्कृत में यह कहा कि "देवदत्तः चेतति" इसको सुनकर पं० तुलसीराम ऐसे विचार रखनेवाले किसी पंडित ने उसका अर्थ किया कि "देवदत्तः चेतति" कोर्थः "देवदत्तः शेते" अर्थात् "देवदत्तः चेतति" इसका अर्थ किया कि देवदत्त सोता है वास्तव में तो उस का अर्थ होता था कि देवदत्त विज्ञानिक विचार कर रहा है किन्तु इसने कहा कि नहीं नहीं इस का अर्थ तो यही होता है कि देवदत्त सोता है इस को उत्तर दिया गया कि पाणिनीजी ने "चिती संज्ञाने" धातु लिखा है यह सुनकर बोला कि "चिती संज्ञाने" तो जरूर लिखा किन्तु पाणिनिजी ने यह तो नहीं लिखा कि यह धातु सोने में नहीं रहता और फिर संज्ञा का अर्थ तो हमारे ही आधीन है चाहे जो कर लें [illegible] ही लेख पं० तुलसीराम का है पं० तुलसीराम भी कहते हैं उत्पन्न अर्थ का निषेध तो नहीं किया अभिषव का अर्थ तो हमारे ही आधीन है।

हम पं० तुलसीरामजी से पूछते हैं कि जब पाणिनिजी ने "षुञ् अभिषवे" लिखा तो क्या इस लेख से भिन्न अर्थ की निवृत्ति नहीं होगई। जब कि पाणिनिजी इस धातु का केवल अभिषव अर्थ बतलाते हैं तो फिर दूसरा अर्थ तुम कैसे लोगे यदि पाणिनि के कहे अर्थ से भिन्न अर्थ लिया जाता है और इस में कोई ठीक व्यवस्था नहीं तो फिर जैसे स्वामी दयानन्दजी ने इस का अर्थ उत्पन्न होना लिया है इसीप्रकार कोई छापना और कोई गुरुकुल खोलना कोई नाचना रोना पीटना अपनी अपनी इच्छा के अनुसार अर्थ ले लेंगे ऐसी दशा में पाणिनि का लिखा अभिषव अर्थ मारा मारा फिरेगा और [illegible] मने के मुताबिक होजावेगा जिससे पाणिनिकृत दशगणीय धात्वर्थ को वैयर्थापत्ति आजावेगी अर्थात् पाणिनि के दश गणों में कहे हुए धातुओं के अर्थ लिखना व्यर्थ [illegible] के बिना कोई भी पंडित एक श्लोक

का भी अर्थ नहीं कर सकता इत्यादि इतने दोष आवेंगे कि जिन का उत्तर पं० तुलसी राम दश बीस रिम कागज लिखने पर भी न दे सकेंगे।

इस के अलावा भगवान पतंजलि नागोजी भट्ट और भट्टोजी दीक्षितजी आदि सभी वैय्याकरण इस बात को मानते हैं कि धातुओं के वे ही अर्थ हो सकते हैं कि जो पाणिनिजी ने लिखे हैं यदि उन को किसी धातु का पाणिनि के अर्थ से भिन्न अर्थ मिलता है तो उस के विषय में नहीं-ऊहान बीन करके मानते हैं यह वैय्याकरणों का कायदा है आपने इन सब के विरुद्ध जो यह लिखा है कि पाणिनिजी ने कहीं मना तो नहीं कर दिया कि स्वादिगणीय "षुञ् धातु" का उत्पन्न करना अर्थ नहीं है आप का यह लेख विद्वन्मण्डली में हास्यजनक होता है।

पं० तुलसीराम जो यह लिखते हैं कि अभिषव का अर्थ करना तो हमारे आधीन है यदि ऐसा है तो फिर अभिषव का अर्थ आपने पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत क्यों माना अलाहिदा क्यों नहीं किया। धातुओं का अर्थ करना अपने आधीन नहीं है किन्तु वेदादि शास्त्रों के आधीन है जैसा पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने अभिषव का अर्थ सोमबल्ली कूटकर उस का रस निकालना दिखलाया है यदि यज्ञ में इस का यह अर्थ न मिलता तो पं० ज्वालाप्रसादजी अपने मन से इस का कुछ भी अर्थ न करते अस्तु पं० तुलसीरामजी सोमबल्ली को कूट उस का रस निकालना और उत्पन्न करना इन दोनो अर्थों को एक ही समझ कर लिखते हैं कि सोमबल्ली को कूटकर रस निकालना या रस पैदा करना एकही बात है। पं० तुलसीरामजी भी खूब समझे एक मनुष्य ने इस वर्ष १०० मन गेहूँ पैदा किये तो क्या उस ने सोमबल्ली को कूटकर रस निकाला है या यों कहिये कि पं० तुलसीराम ने अपनी बुद्धि से दयानन्द तिमिरभास्कर का उत्तर पैदा किया तो क्या पं० तुलसीराम ने सोमबल्ली को कूटकर रस निकाला और वह भास्करप्रकाश रूप बन गया सोमबल्ली को कूटकर रस निकालने से भिन्न तो इस धातु का अर्थ ही नहीं होता ईश्वर ने जब संसार को उत्पन्न किया तो क्या उस समय में ईश्वर ने सोमबल्ली को कूटकर रस निकाला था यदि ऐसा किया तब तो पं० तुलसीराम को पता लगाना होगा कि किस की उखली में कूटा था क्या निराकार ईश्वर कुटाई भी करता है? आप लोगों के मारे निराकार ईश्वर का नाक में दम है यजु० अ० ३७ मं० ६ में स्वामी दयानन्द ईश्वर से घोड़ों की लीद बिनवाते हैं आप यहां छिपे छिपे कुटाई का काम लेते हैं क्या आप ने ईश्वर को मजदूर समझा? बातें बनाते हैं आप उत्तर नहीं दे सकते।

वरेण्यम्—स्वामीजी "वरेण्यम्" का अर्थ लिखते हैं कि (वरेण्यम्) "वर्त्तुमर्हम्" स्वीकार करने योग्य अति श्रेष्ट क्रिया और पं० ज्वालाप्रसादजी "वरेण्यम्" का अर्थ प्रार्थनीय करते हैं पं० तुलसीरामजी ने न तो स्वामी दयानन्दजी के अर्थ की पुष्टि की और न मिश्रजी के अर्थ का खण्डन किया जब मिश्रजी के अर्थ का खण्डन नहीं किया तब ऐसी दशा में मिश्रजीका अर्थ सत्य होगया।

भर्गः—स्वामी दयानन्दजी "भर्गः" का अर्थ लिखते हैं कि (भर्गः) "शुद्ध स्वरूपम्" शुद्धस्वरूप और पवित्र करनेवाला चेतन ब्रह्मस्वरूप है इस का अर्थ पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र इस प्रकार लिखते हैं—

अथ भर्ग इति योहवा अमुष्मिन्नादित्ये निहितस्तारकोऽक्षिणिवैषभर्गाख्योभाभिर्गीति रस्यहीति भर्गोभर्जयतीति वैषभर्ग इति रुद्रोब्रह्मवादिनोऽथभ इति भासयतीमान् लोकान् रइतिरंजयतीमानिभूतानि ग इति गच्छन्त्यस्मिन्नागच्छन्त्यस्मादिमाः प्रजास्तस्माद्भर्ग त्वाद्भर्गःशश्वत सृयमानात् सूर्यः सवनात् सविताऽऽदाना दादित्यः पावनात पवनोऽथापोप्याय नादित्येवंह्याह ।

पं० ज्वालाप्रसादजी ने इस का अर्थ बड़े विस्तार से लिखा है इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि आप सविता शब्द से अपने दिये प्रमाण के विरुद्ध सूर्य लोक का ग्रहण करेंगे और गायत्री से सूर्य देव की भौतिक उपासना सिद्ध करेंगे तो आपने ही जो विस्तार पूर्वक गायत्री मंत्र में आये "भर्गः" पद का अर्थ लिखा है कि—

भइति भासयतीमान् लोकान्। रइति रंजयते मानि भूतानि। गइति गच्छन्त्या समन्नागच्छन्त्यस्मादिमाः प्रजाः।

इस का अर्थ भी आपने [illegible] में लिखा है कि "सुषुप्ति प्रबोध वा महाप्रलय उत्पत्तिकाल में सर्व प्रजा परमात्मा में लीन होकर उत्पन्न होती है"

देखिये आपने भी यहां "भर्गः" शब्द के अर्थ में परमात्मा का ग्रहण किया है इस से सिद्ध हुआ कि स्वामीजी ने जो अर्थ किया है वह संगत और शास्त्रानुकूल होने के अतिरिक्त आप के पुस्तक से भी पुष्ट होता है।

पं० तुलसीराम का यह लेख कि अपने दिये प्रमाण के विरुद्ध सूर्य लोक का ग्रहण करोगे और जड़ सूर्य की उपासना मानोगे तो फिर "भर्गः" पद का अर्थ बिगड़ जावेगा पं० तुलसीरामजी ने या तो दयानन्द तिमिरभास्कर के इस प्रकरण को देखा नहीं या उत्तर नहीं सूझ पड़ता पं० तुलसीराम यह कैसे लिखते हैं कि अपने किये सविता अर्थ के विरुद्ध क्या मिश्रजी ने सविता पद का अर्थ सूर्य नहीं किया सविता शब्द का अर्थ सूर्य के ऊपर क्या पं० ज्वालाप्रसादजी ने दो चार सतर भी नहीं लिखी पाठकों को पढ़ना चाहिये और देखना चाहिये मिश्रजी ने तो सविता शब्द का अर्थ सूर्य जो किया है वह विस्तार से किया है और पिंडसार प्राण और ब्रह्माण्डसार आदित्य की एक भावना भी बतलाई है जब कि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र पहिले ही सविता का अर्थ सूर्य विस्तार पूर्वक कर आये हैं उस के पं० तुलसीराम उत्तर भी दे आये हैं फिर उस को न देखकर या भूलकर पाठकों पर मिथ्या ही यह प्रकट करना कि पं० ज्वालाप्रसाद ने सवितृ का अर्थ ब्रह्म किया है और सूर्य नहीं किया इसको हम कह सकते हैं कि दिन दोपहरी आंखों में धूल झोकना या धोखा देना है जब मिश्रजी ने यह अर्थ ही नहीं किया तो फिर "भर्गः" का अर्थ कैसे बिगड़ जावेगा और हम दुर्जनतोषन्याय से यह भी मान लें कि मिश्र ज्वालाप्रसादने सविता का अर्थ ब्रह्म किया फिर भी "भर्गः" का अर्थ कैसे बिगड़ जावेगा क्योंकि मिश्रजी पिण्डसार प्राण और ब्रह्माण्डसार आदित्य की एक भावना दिखला चुके इस में पं० तुलसीराम के पास कोई युक्ति या प्रमाण मौजूद हो तो पेश करें उसपर विचार किया जावेगा किन्तु बिना प्रमाण बिना युक्ति के हठ वश पाठकों पर मिथ्या यह साबित करना कि मिश्रजी पहिले कुछ लिख आये और अब कुछ और लिखते हैं यह पं० तुलसीराम के लिखने योग्य हरगिज़ हरगिज़ नहीं है।

इस के आगे पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि स्वामी दयानन्द का अर्थ संगत और शास्त्रानुकूल है इस को पढ़कर मारे हँसी के पेट फूल उठता है कि पं० तुलसीराम ने स्वामीजी के लेख की पुष्टि में एक भी प्रमाण या युक्ति न दी और इतने पर भी स्वामीजीका लेख शास्त्रानुकूल होगया यदि वास्तव में स्वामीजी का लेख शास्त्रानुकूल है तो फिर आपने उस की पुष्टि में कोई प्रमाण क्यों नहीं दिया ? मिश्र ज्वालाप्रसादजी को तो देखिये कि जिन्होंने अपने अर्थ की पुष्टि में "अथ भर्ग इति" कितनी बड़ी वेद की निरुक्ति की है आप जो बिना प्रमाण दिये या बिना युक्ति दिये

यह हुक्म चढ़ा दिया करते हैं कि स्वामी दयानन्दजी का लेख शास्त्रानुकूल है इससे आर्यसमाज के पक्ष की पुष्टि कदापि नहीं होती हमारी दृष्टि में तो आप भी हमारी भांति संसार के एक साधारण [illegible] समाज की दृष्टि में आप बिलकुल निराकार ब्रह्म हैं कि जो आप के हुक्म मात्र से समाज स्वामी दयानन्द के मत को सच्चा समझ लेती है।

एक और भी शोक की बात है कि स्वामी दयानन्द के लेख की पुष्टि के लिये या यों कहिये कि स्वामी दयानन्द का सिद्धान्त असत्य न हो जावे इस के लिये पं० तुलसीरामजी ने "अथ भर्ग इति" इस वेद की निरुक्ति पर हड़ताल लगा दी है अर्थात् पं० तुलसीराम ने स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त को रखने के लिये हठ की "अथ भर्ग इति" निरुक्ति को ही नहीं माना क्या इसी के ऊपर समाज कहा करती है कि हम वेद को स्वतः प्रमाण मानते हैं क्या आर्यसमाज के मत में यही प्रमाण होता है कि एक अक्षर भी न मानना "हम मानते हैं हम मानते हैं" ऐसा कहते जाना क्या आर्यसमाज इसी घमंड पर [illegible] ईश्वरकृत कहती है यदि समाज की दृष्टि में सच ही वेद ईश्वरकृत है और समाज इस को मानती है तो फिर इस निरुक्ति से सफाचट इन्कार क्यों ? समाज तो यह कहा करती है कि ईश्वर सर्वज्ञ है उस से कभी भूल नहीं होती उस की बराबर किसी में बुद्धि नहीं यदि सच ही समाज ऐसा मानती है तो फिर यहां पर दयानन्द की बुद्धि के विचारों को सत्य मानकर ईश्वर कृत वेद को तिलांजली क्यों दी ? यह कलंक समाज के ऊपर उस समय तक बराबर रहेगा कि जब तक समाज खुलमखुल्ला यह न कह दे कि हम वेदको तो नहीं मानते।

"अथ भर्ग इति" इस निरुक्ति में साफ दिखलाया है कि "भर्गः" उसी को कहते हैं कि जो यह आदित्यरूप तेज है और जो मनुष्यों के नेत्रों में कृष्ण तारारूप होकर स्थित है अब इस पर पाठक विचार कर सकते हैं कि वेद में "भर्ग" शब्द से सूर्य का ग्रहण किया है या नहीं .

इस के अलावा यह भी लिख देना उचित समझता हूँ कि गायत्री मन्त्र उपासनाकाण्ड का है और उपासना बिना साकार के कभी हो नहीं सकती इस नियम से भी गायत्री मन्त्र में सविता पद से या "भर्गः" पद से सूर्य का ही ग्रहण होगा।

पिछले लेख से पाठकवर्ग यह अच्छीतरह जान गये होंगे कि आर्यसमाज वेद का केवल हल्ला मचाती है उस को मानती नहीं अब यह दिखाना है कि आर्यसमाज

जिसप्रकार वेद को तिलांजलि देती है उसीप्रकार स्वामी दयानन्द के लेख पर भी हड़ताल लगा देती है "भर्गः" शब्द के अर्थ में ही स्वामी दयानन्दजी ने ब्रह्म का स्वरूप माना है स्वामी दयानन्दजी "भर्गः" का अर्थ करते हैं। कि शुद्धस्वरूप और पवित्र करनेवाला चेतन ब्रह्मस्वरूप है। यहां पर स्वामी दयानन्दजी ने ब्रह्म को रूप वाला माना है जिसप्रकार से हम और आप। अन्तर केवल इतना है कि हमारा जो रूप है वह कर्म बन्धनों द्वारा मलीन है और ब्रह्म का रूप शुद्ध है कैसा भी हो उसके रूप जरूर है यदि रूप न होता तो स्वामीजी स्वरूप शब्द का व्यवहार न करते। स्वरूप का अर्थ ही यह है कि स्वकीय रूप अर्थात् अपना शरीर जब कि ब्रह्म शरीर रखता है तब तो साकार होगया जब ब्रह्म का साकार होना सिद्ध है तब फिर केवल निराकार मानना समाज की बड़ी भारी भूल है इस स्थान पर केवल निराकार ब्रह्म का खण्डन होकर उस को साकारता भी आती है इसी भय से आर्यसमाज स्वामी दयानन्दकृत "भर्गः" के अर्थ को ही गलत मानती है क्या कोई एक भी आर्यसमाजी संसार में ऐसा है कि जिसने स्वामीजी के कथन ब्रह्म के स्वरूप को मान लिया हो यदि एक भी नहीं मानता तो फिर हम साभिमान कह सकते हैं कि आर्यसमाज वेद और स्वामी दयानन्द के लेख दोनों परही श्रद्धा न रखकर उनपर हड़ताल लगा रही है।

देवस्य—दयानन्दजी ने इस पद का अर्थ लिखा कि (देवस्य) "यो दीव्यति दीव्यते वासदेवः" जो सब सुखों का देनेहारा और जिसकी प्राप्ति की कामना सब करते हैं उस परमात्मा का जो" इस के ऊपर मिश्र ज्वालाप्रसादजी लिखते हैं कि जो देव पद की व्युत्पत्ति करी है "यो दीव्यति दीव्यते वासदेवः" इस व्युत्पत्ति से तो व्याकरण को भी समेट धरा क्योंकि दिवुक्रीडा-विजगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कांतिगतिषु. दिवादिगणीय परस्मैपदी इस धातु का प्रयोग लिखा है तो दीव्यति दीव्यते वासदेवः इस स्थान में धातु तो केवल परस्मैपदि और प्रयोग आत्मनेपद का भी लिख दिया सो प्रमाद है (प्रश्न) दीव्यते यह प्रयोग कर्म में प्रत्यय करके लिखा है (उत्तर) जो दयानन्दजी कर्म में प्रत्यय करते तो इस कर्तृपद में तृतीयाविभक्ति येन ऐसा होना योग्य था और देव शब्द का वाच्य अर्थ प्रकाश क्रिया का कर्म जगत जड़ वस्तु हो जाता और जो कर्म कर्तृ अर्थ में प्रयोग कहैं तो भी असंगत है क्योंकि परमात्मा प्रकाश क्रिया का कर्म हो पश्चात् उसी कर्म को कर्तृत्वरूप से विवक्षा हो तब कर्म कर्तरि प्रयोग हो सो परमात्मा प्रकाश क्रिया

का कर्म होगा इस तौर पर प्रकाशरूप [illegible] प्राप्ति होगी और जो स्तुति अर्थ में दिव धातु को मानकर कर्म में प्रत्यय करें तो देव शब्द का कर्त्तरि अर्थ के प्रकरण में पंचादिगण में पाठ होने से असंगत है इस से दीव्यते यह प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है और अर्थ भाषा में (सब सुखों का देनेहारा लिखा है) विचारना चाहिये कि क्रीडा–किसी वाह्य साधन में विलास। विजिगीषा–जीतने की इच्छा। व्यवहार–क्रय विक्रय करना। द्युति–प्रकाश। स्तुति स्तवन किया। मोद–आनन्द होना। मद–अहंकार करना। स्वप्न–शयन क्रिया। कान्ति इच्छा। गति–ज्ञान गमन वा प्राप्ति इतने अर्थ तो पाणिनीजी ने इस के स्पष्ट लिख दिये हैं परन्तु दयानन्दजी ने थोड़ा समझ सुख दान भी इस धातु का अर्थ और कल्पना कर लिया क्या पाणिनि ऋषि के अर्थों से आपका निर्वाह नहीं होता है परन्तु मनमाना अर्थ तो नहीं निकलता इस से दयानन्दजी ने नये अर्थ की कल्पना करी है।

इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि दीव्यते प्रयोग यथार्थ में कर्म वाच्य है और यही कारण आत्मनेपद लिखने का है और प्रकाश "प्रकट होने" को भी कहते हैं क्योंकि परमेश्वर भक्तों के हृदय में प्रकट होते हैं इस लिये प्रकाश क्रिया के कर्म भी कहे जा सकते हैं इस में कुछ दोष नहीं पचादिगण में कर्त्त वाच्य लिखने से हमारी हानि नहीं क्योंकि स्वामीजी ने कर्त वाच्य अर्थ भी तो लिखा ही है कर्तृवाच्य अर्थ में "यः" है ही कर्मवाच्य में कर्तृपद अप्रयुक्त "येन" का अध्याहार होजायगा "सब सुखों का देनेवाला" यह पदार्थ नहीं किन्तु भावार्थ है दिव धातुका "मोद–आनन्द" अर्थ है ही बस स्वयम् आनन्द स्वरूप है वही अपने भक्तों को सब सुख दे सकता है इस लिये स्वामीजी का तात्पर्य निर्दोष है।

स्वामी दयानन्दजी ने जो [illegible] आत्मनेपद से व्युत्पत्ति की है और फिर कर्ता को प्रथमान्त दिखाकर यह भी साबित किया कि कर्तरि प्रत्यय है इसके ऊपर पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र लिखते हैं कि यहां पर तो व्याकरण को ही धर समेटा इसके ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि "दीव्यते प्रयोग" कर्मवाच्य है इसी कारण से आत्मनेपद दिया है फिर लिखते हैं कि कर्मवाच्य में येनकर्त्ता का अध्याहार कर लेंगे गर्ज यह है कि स्वामी दयानन्द कुछ भी लिख दें किन्तु उस को झूंठ न कहेंगे चाहे सैकड़ों दिक्कतें सहें हम यह पूछते हैं जब कि दीव्यते के आगे साक्षात् प्रथमान्त कर्त्ता स्वामी दयानन्द ने लिख दिया फिर आप तृतीयान्तकर्त्ता का अध्याहार कैसे

करेंगे यदि वास्तव में आप अध्याहार करेंगे तो फिर स्वामी दयानन्दकृत भाषा भी गलत हो जावेगी तृतीयान्तकर्त्ता के अनुकूल भाषा बनानी पड़ेगी। स्वामी दयानन्द का भाषार्थ पुकार कर कह रहा है कि स्वामीजी ने दीव्यते यह कर्त्तरि प्रत्यय लिख दी है चाहे वे व्याकरण कम जानते हों या उन से भूल होगई हो किन्तु प्रत्ययकर्त्ता में ही है जो व्याकरण के विरुद्ध है। अब या तो स्वामी दयानन्दजी कृत भाषार्थ को गलत मानना होगा या पाणिनी आदि सभी वैय्याकरणों के विरुद्ध दिवु धातु को आत्मनेपद मानना पड़ेगा जिस का होनाही असम्भव है।

पं० तुलसीराम लिखते हैं कि प्रकाश का अर्थ प्रकट होना है और परमात्मा भक्तोंके हृदयमें प्रकट होता है ये दोनों बातें पं० तुलसीराम निर्मूल लिख रहे हैं प्रकाश का अर्थ प्रकट होना नहीं होसकता यदि ऐसा हो तो प्रकाश रहित वस्तुओं के प्रकट होने को प्रकट होनाही नहीं कह सकते पं० तुलसीराम ने जो भक्तों के हृदय में ईश्वर का प्रकट होना माना है यह आर्यसमाज के सिद्धान्त के विरुद्ध है प्रथम तो स्वामी दयानन्दजी ने यह लिखा है कि जैसे गुड़ गुड़ कहने से मुंह मीठा नहीं होता ऐसेही ईश्वर ईश्वर कहने से भी कुछ नहीं होता स्वामी दयानन्द के इस सिद्धान्त के अनुकूल न कोई ईश्वर का नाम लेगा और न कोई भक्त बनेगा जब कोई भक्त ही नहीं होगा तब फिर ईश्वर किस के हृदय में प्रकट होगा इसका पता लगना चाहिये।

दूसरे ईश्वर भक्तों के हृदय में कैसा प्रकट होता है क्या बिलकुल निराकार जैसा कि अब संसार में है। यदि कहो कि ऐसाही होता है ऐसी दशा में हम पूछते हैं कि अधिक बात कौन हुई जिस से उसका प्रकट होना कहा गया यदि कहो कि नहीं कुछ विशेषता होजाती है यदि ऐसा है तब तो स्वामी दयानन्द के एक रस माने हुए परमेश्वर में न्यूनाधिक होने से तुम्हारा एक रस का सिद्धान्त पाताल को चला जावेगा एक बात और भी पूछनी है कि जब वह भक्तों के हृदय में प्रकट होता है तब भक्तों को कैसा दीखता है काला काला या लाल लाल या पीला या बिलकुल सफेद कौन रंग का रहता है यदि कहो कि रंग तो उस में कोई नहीं होता तो फिर हम पूछते हैं कि प्रकट होना किस का नाम है क्या किसी विशेष रंग के बिना लम्बा लम्बा या मोटा चौड़ा या गोल सफेद दीखने लगता है यदि कहो कि नहीं २ यह नहीं तो फिर हम पूछते हैं प्रकट होना किस को कहते हैं यदि कहो कि ईश्वर के ज्ञान होने को ही प्रकट होना कहते हैं यदि ऐसा है तो फिर भक्त की क्या जरूरत

कोई ईश्वर है इतना ज्ञान तो आर्या दुनियां को है यदि कहो कि विशेष ज्ञान होता है इस के ऊपर हमारा प्रश्न होगा कि वह कैसा क्या तो ईश्वर मालूम पड़ते हैं इस का उत्तर देने के लिये समाज की लेखनी में शक्ति हो नहीं पं० तुलसीराम कहते हैं कि प्रकट होने को प्रकाश कहते हैं तो क्या भक्तों के हृदय में प्रकट होने के समय "चांद" "सूर्य" सा या "लालटेन" या "हन्डा" सा कैसा दिखलाई देता है क्या आर्य समाज इस बात को मानती है कि जिस में प्रकाश हो और वह निराकार हो या यों कहिये कि जिस में तेज विशेष हो और वह रूप रहित हो पं० तुलसीराम को खूब बिचारना चाहिये कि प्रकाश रखनेवाली कोई भी वस्तु ब्रह्माण्ड में निराकार नहीं होती बस सिद्ध होगया कि जिसप्रकार से गायत्री मन्त्र के "भर्गः" शब्द के अर्थ में स्वामी दयानन्दजी ने ईश्वर को साकारवाला माना है उसीप्रकार "देवस्य" के अर्थ में भक्तों के हृदय में प्रकाशित हुआ साकार पं० तुलसीरामजी भी ईश्वर की साकारता सिद्ध करते हैं अब हम इस विषय पर प्रतिनिधियों की सम्मति लेना चाहते हैं कि वे स्वामी दयानन्द तथा पं० तुलसीराम के लेख पर क्या सम्मति रखती हैं।

अब पं० ज्वालाप्रसादजी उपाधि भेद दिखलाते हुए विस्तार पूर्वक लेख लिख कर स्वामी दयानन्द के अर्थ का खण्डन करते हैं मिश्रजी का लेख यह है अब गायत्री के तृतीय पाद से अध्यात्मतत्त्व का निर्णय करते हैं जिसके निर्णय से स्वामी जी स्वीकृत चेतन का वास्तव भेद पक्ष भी खंडित हो क्योंकि औपाधिक भेद तो स्वीकृत है "खल्वात्मनः" "विभुर्विग्रहे" "आत्मेत्येवोपासीत" इत्यादि से अद्वैतपक्ष सिद्धकर यह भी बतलाया कि वेदों की शाखा ११२७ हैं। यह अयोग्य है क्योंकि महाभाष्यकार ने ११३१ शाखा हैं ऐसा लिखा।

इस के ऊपर पं० तुलसीरामजी लिखते हैं कि आप ने जो—

खल्वात्मनोत्मा नेता मृताव्ययज्ञाता मन्ता गन्तात्मज्ञानन्दयिता कर्त्ता वक्ता रसयिता घ्राता द्रष्टा श्रोतास्पृशतिच॥ और—विभुर्विग्रह सन्निविष्टा इत्येवंवाह। इत्यादि।

लेख से बृहदारण्यक के इस पाठ को जोड़ दिया है कि—

आत्मेत्येवोपासीतात्र ह्येते सर्व एकं भवन्ति। बृह० अ० ३ ब्रा० ४।

सो आपने चातुर्य नहीं किया किन्तु खुल्लमखुल्ला झूठ लिखा है भला पूर्वोक्त पाठ का इससे क्या सम्बन्ध। धन्य! महाराज!! आपने इसी वास्ते अपने पूर्व लेख

(खल्वात्मनोत्मा नेता) का पता जान बूझकर नहीं लिखा जिस से कोई पता न चला लेवे भला इसप्रकार के चातुर्य से कभी सत्यार्थप्रकाश का खण्डन वा विद्वानों की आंखों पर धूल फेंककर कार्य सिद्धि हो सकती है वा अद्वैतपक्ष सिद्ध हो सकता है कभी नहीं तथापि हम आप के ने पूरे लेख का अर्थ करके आप को दिखलाते हैं कि इस में अद्वैत का क्या वर्णन है।

(आत्मनः आत्मा नेता । आप के ही लेखानुसार आत्मा अर्थात् शरीरेन्द्रिय संघात का जो नेता आत्मा है वही नेता मन्तागन्ता उत्सृष्टा आनन्दयिता कर्त्ता वक्ता रसयिता घ्राता द्रष्टा श्रोता और स्प्रष्टा है. भला इस से द्वैत अद्वैत का क्या सिद्ध हुआ और दूसरे वाक्य -

विभुर्विगूहे सन्निविष्टा इत्येवं वाह। अथ यत्र द्वैतीभूतं विज्ञानं तत्रहि शृणोति पश्यति जिघ्रति रसयति चैवस्पर्शयति सर्वमात्मा जानीतेति यत्राद्वैतीभूतं विज्ञानं कार्य-कारण कर्म निर्मुक्तं निर्वचन मनौपम्यं निरुपाख्यं कितदवाच्यम्।

को अर्थ यह है कि व्यापक आत्मा देह में घुसा है यह कहते है जब द्वैतीभूत ज्ञान होता है तब समझा जाता है कि आत्मा सुनता देखता सूंघता चलता और छूता है तथा सर्व को जानता है परन्तु जब अद्वैत अर्थात् देहादि द्वितीय पदार्थों से संबंध छूट जाता है तब कार्य कारण कर्म से निर्मुक्त वचन उपमा और नाम से रहित किम् और तद् शब्द का भी वाच्य नहीं होता तात्पर्य यह है कि आत्मा में देखना सुनना आदि व्यवहार निर्देश देवदत्तादि नाम शरीर सम्बन्ध से बनते हैं केवल में नहीं भला इस से जीव ब्रह्म की एकता अनेकता क्या निकलती है कुछ नहीं स्वामीजी ने संक्षेप के कारण आप के समान तैत्तिरीय शाखा का पाठ नहीं भरा परन्तु जितना लिखा है वह सब तैत्तिरीय के अनुकूल ही है हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि जो अर्थ स्वामीजी ने लिखे हैं वही आपने भी लिखे हैं हां उन्होंने प्रकरणानुकूल संक्षेप से और आपने प्रकरण विरुद्ध विस्तार से लिखा है वेदों की ११३१ शाखाओं में ४ संहिता मूल वेद भी अन्तर्गत गिना है उनको पृथक करके स्वामीजी ने ११२७ गिनाई हैं समझकर देखिये--

पं० तुलसीरामजी "खल्वात्मनः" श्रुति देख क्रोध में आगये और पं० ज्वाला-प्रसादजी को लिखते हैं आप तो खल्वात्मनः झूठ लिखते हैं पूर्व मन्त्र से और इस पाठ से क्या सम्बन्ध है वास्तव में पं० ज्वालाप्रसादजी बड़े झूठे हैं पं० ज्वालाप्रसाद

जी ही नहीं किन्तु पहिले स्वामी दयानन्दजी भी बड़े झूठे थे वह भी अद्वैतपक्ष को मानते थे इसी कायदे से वेदव्यास वाल्मीकि अष्टावक्र वशिष्ठ दत्तात्रय मनु याज्ञवल्क्य आदि २ यह सब झूठे थे क्योंकि यह सब अद्वैतपक्ष को मानते थे इस पाठसे और पूर्व मन्त्र से क्या सम्बन्ध इस का उत्तर यह है कि सविता (सूर्य) और ब्रह्म इन दोनों की एक भावना अर्थात् सूर्य के द्वारा निराकार की उपासना मिश्र ज्वालाप्रसादजी ने लिखी उस की पुष्टि में "खल्वात्मनः" इत्यादि श्रुतियों से, अद्वैतपक्ष सिद्ध किया है अब हमें नहीं मालूम कि इस में ज्वालाप्रसादजी क्या चालाकी करगये।

पं० तुलसीराम "खल्वात्मनः" इस मन्त्र का आप तो कुछ भी अर्थ नहीं करते नहीं मालूम कि समाज इस मन्त्र को बिना ही अर्थ मानती है क्या ? पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र के ही अर्थ को लिख कर पं० तुलसीराम कहते हैं कि भला इस से द्वैत अद्वैत का क्या सिद्ध हुआ पं० तुलसीराम को इतना तो विचारना चाहिये कि इस मन्त्र में "आत्मनः" शब्द से इन्द्रियों का ग्रहण किया है अद्वैत मानने पर ही इन्द्रियों का नाम आत्मा है नहीं तो कभी भी आत्मा शब्द से इन्द्रियों का ग्रहण करना नहीं बन सकता।

पं० तुलसीराम लिखते हैं कि इस चातुर्यता से कभी सत्यार्थप्रकाश का खंडन होसकता है पं० तुलसीराम की समझ में ही सत्यार्थप्रकाश का खण्डन नहीं होता या सभी की समझ में अब सत्यार्थप्रकाश में कौन प्रकरण है कि जिस को लिखे पढ़े असत्य न समझते हों अब तो स्वयं आर्यसमाजी ही सत्यार्थप्रकाश का खण्डन कर रहे हैं जरा कृपाकर प्रथम समुल्लास की भूमिका की समालोचना को पढ़िये।

"विभुर्विग्रहे" इस मन्त्र का अर्थ करके लिखते हैं कि इस में तो अद्वैत नहीं महात्मन् ! इस मन्त्र में तो "अद्वैतीभवं" पद ही पड़ा है यह पद क्यों दिया गया यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि इस "अद्वैतीभवं" पद का अर्थ तो हम लिख चुके कि देहादि द्वितीय पदार्थों से सम्बन्ध छूट जाता है यह अर्थ केवल आपकी कल्पना या चातुर्यता है वेद में "एक" "अद्वितीय" यह पद जहां पर आये हैं वहां पर ही शास्त्रकारों ने "एक" का अर्थ स्वजातीय भेदशून्य और "अद्वितीय" का अर्थ विजातीय भेदशून्य लिया है इस को आप अच्छीतरह से समझ सकते हैं "एकाकीहयमारुह्य जगाम गहनंवनम्" इत्यादि उदाहरण मिल सकते हैं घोड़ा रहने पर भी राजा को "एकाकी" बतलाया गया क्योंकि घोड़ा विजातीय (अन्य जाती) का था अर्थात्

राजा मनुष्य जाति का था और घोड़ा अश्व जाति का था एक कहने से स्वजाति मनुष्य ही का निषेध होता था इस कारण घोड़ा रहने पर भी "एकाकी" शब्द दिया गया शास्त्रों में या प्रत्यक्ष में अकेले मनुष्य के लिये कहीं पर भी अद्वैत शब्द का प्रयोग नहीं पाया जाता इस का कारण यही है कि विजाति वस्त्रादि कुछ न कुछ मनुष्य के साथ रहता है।

और आप ने जो लिखा कि "जब देहादि पदार्थों का सम्बन्ध छूट जाता है तब कार्य कारण कर्म से निर्मुक्त" क्या आर्यसमाज भी जीव को जो प्रथम द्वैतीभूत था उस को कार्य कारण कर्म से निर्मुक्त मानती है समाज के मत में तो मोक्ष में भी शरीर के कारण कर्म बने रहते हैं फिर समाज के मत में जीव कारण कर्म रहित कैसे हो जाता है इस के ऊपर यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि मोक्ष में कर्म नहीं रहते इस के ऊपर हम को यह पूछना है कि क्या बिना कर्म के भी आत्मा की जीव संज्ञा हो सकती है।

दूसरे जब कर्म नहीं रहे तो फिर यह जीव मोक्ष से लौटकर मनुष्य आदि शरीर किसप्रकार धारण करेगा क्या बिना कर्म के भी शरीर बंधन होता है आर्य समाज तो यह कहा करती है कि परमात्मा अवतार नहीं लेता शरीर धारण नहीं करता क्योंकि उसको कर्म बन्धन नहीं है क्या आज यह नियम बदल गया इस के अलावा यदि पं० तुलसीराम यह कहें कि मोक्ष में कर्मों का नाश होजाता है और फिर वह जीव मोक्ष से लौट कर नहीं आता ऐसी दशा में मोक्ष से लौटकर आना स्वामी दयानन्द के इस सिद्धान्त का नकनाचूर होजाता है समाज की दृष्टि में मोक्ष में कर्म अवश्य रहते हैं यदि कर्म न रहें तो फिर मोक्ष से लौटकर मनुष्य आदि शरीर क्या उसको आर्यसमाज के शेष मेम्बरों के कर्म से मिलेंगे स्वामी दयानन्दजी भी मोक्ष में कर्म मानते हैं इस कारण से पं० तुलसीराम का यह लेख आर्यसमाज के एक सिद्धान्त पर पानी फेरता है अतएव यह समाज को अमान्य है।

और यदि वास्तविक में कर्म नहीं रहते तो फिर अद्वैतपक्ष की सत्यता में संदेह ही क्या है कर्म के नाश पर जीव का ईश्वर होजाना सभी उपनिषदोंने मानाहै।

पं० तुलसीराम "आत्मेत्येवोपासीत" इसका कुछ उत्तर ही नहीं देते चाहे पं० तुलसीराम या कोई और समाजी कितनी भी लेखनी चलावे ब्रह्मविद्या अद्वैतपक्ष का खण्डन नहीं होसकता वेद गीता पुराण वेदान्त सब इस की पुष्टि करते हैं और

अद्वैतपक्ष की पुष्टि के लिये शंकर आदि ऐसे भाष्य मौजूद हैं कि जिनके समझने के लिये भी पं० तुलसीराम या कालूराम के पास दिमाग नहीं अद्वैतपक्ष का खण्डन करना चन्द्रमा के ऊपर धूल फेकना है।

स्वामी दयानन्दजी ने (धियो यो नः प्रचोदयात्) इस मन्त्र का अर्थ किया है कि ईश्वर हमारी बुद्धियों को प्रेरणा करे बुरे कामों से छुड़ाकर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे इस के ऊपर हम पं० तुलसीराम तथा आर्यसमाज से प्रश्न करते हैं कि यह प्रार्थना क्या सच है क्या वास्तव में ईश्वर बुद्धियों को ऐसी कर देता है कि वह बुरे काम से छूटकर अच्छे में लग जावें क्या बुद्धियों का अच्छा बुरा करके हम से अच्छे बुरे काम करवाना यह ईश्वर के आधीन है यदि इस के ऊपर समाज कहे कि नहीं तो फिर हम समाज से पूछते हैं कि यह झूठी प्रार्थना क्यों करवाई जाती है और वेद के गायत्री मन्त्र में प्रार्थना करने के लिये वेद ने झूठ क्यों बोला यदि समाज कहे कि ईश्वर बुद्धियों को सुधार सकता है और बिगाड़ सकता है और ईश्वर हम को जैसी बुद्धि देगा हम वैसे ही कर्म करेंगे यदि ऐसा है तब तो मन्तव्या मन्तव्य संख्या ४१ में जो स्वामी दयानन्द ने जीव को कर्म करने में स्वतन्त्र माना है यह कट जावेगा एक दृष्टि समाज को इस के ऊपर अवश्य डालना चाहिये।

स्वामी दयानन्दजी गायत्री के अर्थ को अपनी तरफ से लम्बा चौड़ा करके कुछ आगे भी लिखते हैं कि जो [illegible] में से तो क्या निकलेगा सम्भव है कि चारों वेदों में भी न निकले आप लिखते हैं कि-

"हे परमेश्वर! हेसच्चिदानन्दस्वरूप! हे नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव! हे अजनिरञ्जन निर्विकार! हे सर्वान्तर्यामिन्! हे सर्वाधार! जगत्पते! सकल जगदुत्पादक! हे अनादे! विश्वम्भर! सर्व व्यापिन! हे करुणामृत वारिधे! सवितुर्देवस्य तवयदों भूर्भुवः स्वर्वरेण्यं भर्गोऽस्ति तद्वयं धीमहि दधीमहि धरेमहि ध्यायेमवा कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह हे भगवन्! यहः सविता देवः परमेश्वरो भवानस्माकं धियः प्रचोदयात् स एवास्माकं पूज्य उपासनीय इष्ट देवो भवतुनातोऽन्यं भवत्तुल्यं भवतोऽधिकंच कञ्चित् कदाचिन् मन्यामहे" हे मनुष्यों! जो सब समर्थों में समर्थ सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, नित्य शुद्ध नित्य बुद्ध नित्य मुक्त स्वभाव वाला कृपा सागर ठीक ठीक न्यायका करने हारा जन्म मरणा[illegible] क्लेश रहित आकार रहित सब के घट घट की जानने वाला सब का धर्त्ता पिता उत्पादक अन्नादि से विश्व का पोषण करने

हारा सकल ऐश्वर्य्य युक्त जगत् का निर्माता शुद्ध स्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतन स्वरूप है उसी को हम धारण करें। इस प्रयोजन के लिए कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामी स्वरूप हम को दुष्टाचार अधर्ममयुक्त मार्ग से हटा के श्रेष्ठाचार सत्यमार्ग में चलावें उसको छोड़ कर दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें। क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है वही हमारा पिता राजा न्यायाधीश और सब सुखों का देनेहारा है गायत्री मन्त्र के अर्थ में यह इतनी बड़ी इबारत मिला देना अपने मन के भाव गायत्री मन्त्र के बहाने से लिखना या तो अयोग्य है और नहीं तो वेद बनाने के समय ईश्वर जो भूल गया था उसको स्वामीजी ने पूरा कर दिया।

पं० तुलसीराम जी लिखते हैं कि वेद की ११२७ शाखा हैं और चार संहिता मूल हैं इतना लिखते ही हैं किन्तु इसमें प्रमाण कुछ नहीं देते नहीं मालूम कि किस कारण से समाज ने चार शाखाओं को मूल और शेष ११२७ शाखाओं को गौण क्यों माना जिस तरह से ११२७ शाखा अन्य हैं उसीप्रकार से आर्य्य समाज जिन को मूल वेद बतलाती है वे भी शाखा हैं और उनके नाम क्रम से शाकल, और वाजसनेयी, और कौथुमी, तथा शौनकी शाखा हैं जब कि वे भी शाखा और ये भी शाखा फिर इनको प्रमाण मानना और उनको न मानना या इनको मूल मानना और उनको टीका मानना नहीं मालूम समाजने कहां से या किस वेद मन्त्र के अर्थ से सीखा है यदि आर्य्यसमाज के पास कोई प्रमाण हो तो लिखे किन्तु यह सिद्धान्त स्वामी का मनगढंत है अतएव इस में प्रमाण भी न मिलेगा और सभी शाखा एकसी हैं इस में पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र महाभाष्य का प्रमाण देते हैं महाभाष्य शोलेतूर के विज्ञापन के लिखे अनुसार समाज की दृष्टि में ईश्वरकृत है यहां पर पं० तुलसीराम ईश्वर कृत महाभाष्य को तो प्रमाण नहीं मानते किन्तु स्वामी दयानन्द के लिखे को मानते हैं इस से सिद्ध होता है कि समाज की दृष्टि में स्वामी दयानन्द ईश्वर से बड़े हैं नहीं मालूम कि समाज ने कहीं ईश्वर को रेल का कुली या सड़क का मजदूर तो नहीं माना कि स्वामी दयानन्द के लेख को सत्य मान कर ईश्वर के लेख को मिथ्या करदिया जाता है कुछ भी हो महाभाष्यकार ने ११३१ शाखाओं को ही वेद माना और एक सम्बवाली माना है अब या तो समाज को सभी छोड़ देनी होंगी या सभी स्वतः प्रमाण माननी होगी और दयानन्द का मनमाना लेख तो छोड़ना ही होगा।

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं कि इस प्रकार गायत्री मन्त्र का अर्थ पढ़ाकर सन्ध्योपासन आदि सिखावे। इसके ऊपर हम अपने आर्यसमाजी भाइयों से पूंछते हैं कि यदि इस अशुद्ध अर्थ को न पढ़ाकर शुद्ध शुद्ध पढ़ा दें तो क्या पाप लग जावेगा ? बस गायत्री मंत्र के विचार को यहीं समाप्त करते हैं।

प्राणायाम।

प्राणायाम के विषय में स्वामी दयानन्दजी ने जो कुछ भी लिखा वह हम सनातनधर्मियोंको स्वीकार है परन्तु एक बात में तो इनकार है कि सन्ध्या को ब्रह्मयज्ञ लिख दिया किन्तु प्राणायाम सब ओर लिखा है अतएव यह प्राणायाम आर्य समाज को स्वीकार नहीं क्योंकि प्राणायाम में सभी प्रमाण योग्यसूत्र के दिये हैं और योग्यसूत्र समाज की दृष्टि में स्वतः प्रमाण नहीं समाज का तो यह सिद्धान्त है कि चार शाखाओं में जो कुछ लिखा है उसी को प्रमाण माना जाता है अब स्वामी दयानन्दजी या पं० तुलसीराम [illegible] में वेद का प्रमाण दें जब तक वेद का प्रमाण न होगा समाज न मानेगा।

सन्ध्या का नाम ब्रह्मयज्ञ नहीं [illegible] इस मन्त्र का कहा प्रकरण ही लिखे देते हैं। मनुजी प्रथम पञ्चसूना (हिंसा) लिखाते हैं और फिर उनके दोषदूरी करणार्थ पञ्चयज्ञ बतलाते हैं—

पञ्चसूनागृहस्थस्य चुल्लीपेषण्युपस्करः।
कण्डनीचोदकुम्भश्च बध्यतेयास्तुवाहयन्॥

मनु० अ० ३ श्लो० ६८

गृहस्थ के ये पांच हिंसा के स्थान हैं १ चक्की २ बुहारी ३ ओखली मुसल ४ जल का घाट ५ चूल्हा इन को अपने काम में लाता हुआ पुरुष पापों करिके युक्त होता है। ६८।

तासामक्रमणमर्थाय निष्कृत्यर्थंमहर्षिभिः ।
पञ्चक्लृप्तामहायज्ञाः प्रत्यहंगृहमेधिनाम् ॥
अध्यापनंब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तुतर्पणम् ।
होमोदैवोवलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥

मनु० अ० ३ श्लो० ६९ । ७०

अर्थ—उन चूल्हा आदि पांच वध के स्थानों से उत्पन्न पाप के नाश के लिए क्रम से पांच यज्ञ मनु आदि आचार्यों ने प्रतिदिन गृहस्थों को करने को कहे हैं ॥ ६९ ॥ उन पंचयज्ञों के नाम लिखते हैं (१) वेद का पढ़ना और पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ है (२) तर्पण कहिए अन्न आदि से अथवा जल से पितरों को तृप्त करना पितृयज्ञ है (३) अग्नि में होम करना देवयज्ञ है (४) भूतों को बलि देना यह भूतयज्ञ है (५) अभ्यागत का सत्कार करना यह मनुष्य यज्ञ है ये पांचों महायज्ञ कहे गये । ७० ॥

पञ्चैतान्योमहायज्ञान्नहापयतिशक्तितः ।
सगृहेऽपिनि[illegible]नादोषैर्नलिप्यते ॥

मनु० अ० ३ श्लो० ७१

अर्थ—जो मनुष्य इन पांच महायज्ञों को शक्ति से कभी नहीं छोडता है वह सदा घर में बसता हुआ भी सूना के दोषों करिके लिप्त नहीं होता है ॥ ७१ ॥

पाठक वर्ग ! ध्यान से देखें मनु ने वेद पढ़ना ब्रह्मयज्ञ, तर्पण पितृयज्ञ, हवन देवयज्ञ, भूतबलि भूतयज्ञ, अतिथि सत्कार मनुष्ययज्ञ लिखा है अब साबित होगया कि स्वामी दयानन्दका सन्ध्या को ब्रह्मयज्ञ में रखना और अग्नि होत्रको पञ्चयज्ञमें लेना

कितनी भूल है। हवन और अग्निहोत्र में बहुत अन्तर है क्या समाज मनु के लेख को देख कर सन्ध्या को ब्रह्मयज्ञ से पृथक् समझेगी समझना चाहिए समाज के समझाने के लिए ही यह पोथा लिखा है।

आचमन प्रकरण।

सत्यार्थप्रकाश—

उससे कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ी सी होती है। पश्चात् "मार्जन" अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अंगों पर जल छिड़के उससे आलस्य दूर होता है जो आलस्य और जल प्राप्त न हो तो न करे पुनः समन्त्रक प्राणायाम, मनसापरिक्रमण, उपस्थान, पीछे परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना की रीति सिखलावे। पश्चात् "अघमर्षण" अर्थात् पाप करने की इच्छा भी कभी न करे। यह सन्ध्योपासन एकान्त देश में एकाग्रचित्त से करे।

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः॥
मनु० अ० २। १०४

जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा सावधान होके जल के समीप स्थित होके नित्यकर्म को करता हुआ सावित्री अर्थात गायत्री मन्त्र का उच्चारण अर्थज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है। दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र और विद्वानोंका संग सेवादिक से होता है।

तिमिरभास्कर—

यदि आचमन करना कफ पित्त की शान्तिके लिये है तो क्या सबही लोग संध्याकाल में कफ पित्त ग्रसित रहते हैं, और सबको आलस्य और निद्राही दबाये रहती है, वोह समय निद्राका कदापि नहीं और जलसे कफकी शान्ति नहीं किन्तु वृद्धि होती है, आच-

मन करना यदि कफ पित्तकी शान्तिके लिये है तो हाथमें जल लेकर गायत्री और ब्रह्मतीर्थहीसे आचमन करने की क्या आवश्यकता है, क्या कोई आलस्य और कफने प्रतिज्ञापत्र लिख दिया है कि संध्या समय हम सब संस्कारकर्त्ता तथा संध्या करनेवालों के कंठ में फेरा करेंगे, यदि मार्जन का प्रयोजन आलस्यही दूर करने का होय तो एक चुटकी हुलास न सूंघ लिया करैं, अथवा चाह व काफी पीलें जो पहरों को काफी हो, नहीं सर्वोत्तम उपाय यह कि ऐमोनिया की शीशी सूंघलें जिससे मूर्च्छातक भंग होजाय, आलस्य की तो बातही क्या है और स्नान करकेही प्रातःकाल संध्या करते हैं फिर स्नान करनेहीं आलस्य आगया तो मार्जन से कैसे जासक्ता है, इससे स्वामीजी का यह कथन सर्वथा मिथ्याही है, मनुजी आचमन की विधि इसप्रकार लिखते हैं कि आचमन करने से आभ्यंतर शुद्धि होती है। तथाहि अध्याय २

ब्राह्मेण विप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत् ।
कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन ॥ ५८ ॥
अंगुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते ।
कायमंगुलिमूलेग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः ॥ ५९ ॥
त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततोमुखम् ।
खानि चैव स्पृशेदद्भिरात्मानं शिर एवच ॥ ६० ॥
अनुष्णाभिरफेनाभिरविक्षिप्तेन पाणिना ।
शौचेप्सुः सर्वदाचामेदेकान्ते प्रागुदङ्मुखः ॥ ६१ ॥
हृद्गाभिः पूयते विप्रः कंठगाभिस्तुभूमिपः ।
वैश्योद्भिःप्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरंततः ॥ ६२ ॥

अर्थ—ब्राह्मण ब्राह्मतीर्थ से सदा आचमन करे अथवा देवतीर्थ से आचमन करे परन्तु पितृतीर्थ से आचमन न करे ॥ ५८ ॥ क्योंकि उसकी विधि नहीं है अंगुष्ठमूल के नीचे ब्राह्मतीर्थ कहते हैं और कनिष्ठिका अंगुली के मूल में कायतीर्थ और उसीके अग्र-

भाग में दैवतीर्थ तथा अंगुष्ठ प्रदेशिनी के मध्य में पितृतीर्थ कहते हैं ॥ ५९ ॥ प्रथम जल से तीन आचमन करै अनन्तर दोबार मुख को जलसे स्पर्शकर ज्ञानेन्द्रिय का शिरको हृदय को जलसे स्पर्श करै ॥ ६० ॥ फेन रहित शीतल जलमें पवित्र होनेकी इच्छा करने वाला एकान्त और पवित्र भूमि में पूर्व या उत्तर मुख होकर आचमन करै ॥ ६१ ॥ वोह आचमन का जल हृदय में पहुँचने से ब्राह्मण पवित्र होता है, उसके कंठ में प्राप्त होने से क्षत्री, मुखमें पहुँचनेसे वैश्य, तथा स्पर्शमात्र से शूद्र पवित्र होते हैं ॥ ६२ ॥ क्या स्वामी जी इन श्लोकों को मनु में देखते २ कंठ गये थे भला जो संध्या करने को बैठैगा वोह दोनों समय नहीं तो एक समय निश्चय ही स्नान करेगा पर आपके चेले तो कोट पतलूनही पहरकर करैंगे, फिर आपने मनसा परिक्रमा करनी लिखी सो काहे की परिक्रमा करै ? आपकी या सत्यार्थप्रकाशका परमेश्वरको तो आप निराकारमानते हो उसकी परिक्रमा कैसी, जब मनने उसकी परिक्रमा करली तो उसका महत्व जाता रहा और परमेश्वर निराकारकीही सीमा हो गई, फिर जल तो कफ निवृत्ति के अर्थ है आप पं० १४ (अपांस-मीपे) इस श्लोक से जल के घेरे बैठकर गायत्री का जप लिखते हैं परन्तु जिसे कफने घेरा हो वोह तो आपके मतानुसार कोठी बंगले या ऊसर में बैठकर जप करै ।

भास्करप्रकाश—

कण्ठस्थ कफ की निवृत्ति कण्ठ में थोड़ा जल पहुंचने से अवश्य होती है। स्वर स्पष्ट हो जाता है। जल कफरोग को नष्ट करता है परन्तु यह किसी रोग का तो इलाज नहीं किन्तु सामान्य प्रकार से कण्ठ में कफ रहता और मन्त्रोच्चारणादि में वहां का कफ बाधक होता है वह निवृत्त हो जाता है। यदि जल तर होने से कफरोग को उत्पन्न करता है यह नियम हो तो जितने वैद्यक के प्रयोगों में मिश्री गुड़ शहत गुड़ूची आदि तर वस्तु स्वामी के रोग में प्रयुक्त की हैं, सब व्यर्थ हो जावें। यथार्थ में तरी के द्वारा दोष का नाश नहीं करना है किन्तु उसे शान्त रखना अभीष्ट है। और आप ने जो मनु के श्लोक लिख दिये उन से स्वामी जी

के लिखे फल का निषेध तो नहीं आया किन्तु आचमन के प्रकार का वर्णन है। और ब्राह्मणादि वर्णों की उत्तरोत्तर न्यून जल से शुद्धि का प्रयोजन यह है कि अपने अपने वर्णानुसार उन को उतनी उतनी शुद्धि भी न्यूनाधिक ही अपेक्षित है। ब्राह्मण को उत्तम होने से जितनी शुद्धि अपेक्षित है अन्यों को क्रमशः उस से न्यून अपेक्षित है, इत्यादि प्रकार से कारणवाद सर्वत्र खोजा जा सकता है। हम आप से यह पूंछते हैं कि स्वामी जी ने कर्म तो वे वे लिखे ही जिन्हें आप भी मानते हैं परन्तु उस की प्राप्ति के लिए यदि स्वामी जी ने कुछ युक्ति भी लिखदी तो क्या दोष हो गया. और स्वामी जी के लिखने को तो आप न मानियेगा परन्तु वेदवचन को कैसे न मानियेगा। देखिये यजुर्वेद। ३६। १२॥

शन्नो देवी रभिष्टय आपोभवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः

इस का आध्यात्मिक अर्थ तो पञ्चमहायज्ञविधि के लिखे अनुसार है परन्तु आधिदैविक और भौतिक अर्थ पर दृष्टिपात कीजिये—देव्य आपः नः पीतये शंभुवन्तु। नोऽस्मान् अभिष्टये शंयोरभिस्रवन्तु। अर्थात् दिव्यजल हमारे पीने के लिए सुखदायक हो और वह हम को मनोवाञ्छित सुख को वर्षावे। तात्पर्य यह है कि उत्तम दिव्य जल से (जैसा कि मनु अ० २ श्लोक ६१ में स्वच्छ जल से आचमन लिखा है) आचमनादि करने से सुख की प्राप्त होती है। अर्थात् शारीरिक सुख तृप्तिशान्ति आदि के लिए जलको प्रयोग में लाना चाहिए। यही कारण इस मन्त्र के आचमन करने में विनियोग होने का है। और आलस्य-निवृत्यर्थ मार्जन पर जो आप ने लिखा कि क्या सब को आलस्य दबाये रहता है? और स्नान से आलस्य दूर न हुआ तो मार्जन से क्या होगा। महाशय! प्रथम तो यह बात है कि जल के छींटा पड़ने से जैसी चेतनता होती है उस प्रकार की स्नान से नहीं होती दूसरी बात यह भी है कि भला प्रातः सन्ध्या में तो स्नान करके बैठते हैं परन्तु सायंसन्ध्या में स्नान का नियम नहीं देखा जाता और तीसरी बात यह है कि जाड़े में भी एक वार नित्य स्नान करना उत्तम कर्म है और गरमी आदि में दो वार वा जितने वार से देह शुद्ध रहे। परन्तु स्नान की कर्त्तव्यता, सन्ध्याकी कर्त्तव्यता के बराबर नहीं रक्खी गई। जिस प्रकार मानवधर्मशास्त्र में—

नातिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्चपश्चिमाम्॥
सशूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः। २। १०३॥

दोष लिखा है कि "प्रातः सायं सन्ध्या न करे उसे शूद्रतुल्य बाहर किया जावे" इस प्रकार मन्वादि किसी धर्मशास्त्रकार ने प्रातः सायं स्नान न कर सकने वा न करने वालों को बाहय करना नहीं लिखा इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि स्नान कर्त्तव्य नहीं किन्तु सन्ध्या के बराबर नहीं अर्थात् स्नान १ के स्थान में १० बार भी करे और सन्ध्या न करे तो पतित ही हो जायगा। परन्तु स्नान न करके भी सन्ध्योपासन कर लेने वाला पतित नहीं हो सकता तो सन्ध्या के अङ्ग आचमन मार्जनादि में स्नान से व्यर्थता लिखना ठीक नहीं। ब्राह्म तीर्थ से सुगम और उत्तम रीति से आचमन हो सकता है और धर्मशास्त्र ने भेद भी भिन्न भिन्न कर्मों के कर दिए हैं इस लिए ब्राह्म तीर्थ से आचमन करना अन्य रीति की अपेक्षा उत्तम है। हुलास की चुटकी से आलस्य दूर करने की विधि सन्ध्याकाल में सच्छास्त्रों में होती तो वह भी माननीय होती। परन्तु स्वामीजी का तो प्रयोजन यह था कि जो कुछ विधि शास्त्रानुकूल है उसको अनुकूल तर्क से पुष्ट किया जावे, न कि नई बात चलावें। स्वामीजी के चेले कोट पतलून पहर कर तो सन्ध्या कर लेंगे परन्तु आप के चेले तो वह आप सन्ध्या आदि सभी से छुट्टी पागये और पाते जाते हैं। यदि स्वामीजी महाराज का पुरुषार्थ न होता तो अंग्रेजी शिक्षा के फैलते ही सब कर्म धर्म दूर हुआ था। धन्य है स्वामीजी को जो कोट पतलून वालों को गिरजों से बचाकर सन्ध्या सिखलाई। परिक्रमा मन से परमात्मा की हो सकती है। परिक्रमा का वह अर्थ नहीं जो आप ठाकुरजी की परिक्रमा समझते हैं कि बीच में ठाकुरजी को करके उनके चारों ओर घूमना। किन्तु परि=सब ओर, क्रम=घूमना अर्थात् सब ओर [illegible] और जहां जावे वहां परमात्मा को ही पावे, पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर ऊपर नीचे सर्वत्र परमात्मा को ही पावे। यह परिक्रमा है। (अपां समीपे) जलाशयों के किनारे हरित वृक्ष पत्र पुष्पादि से रम्यस्थान में सन्ध्या करे और आप कोठी बंगलों पर क्यों चिढ़े हैं। यदि कोठी बंगलों में सुन्दर फव्वारे लगे हों, एकान्त हो, पुष्पादि के गमलों से सुसज्जित हो तो क्या हानि है। इस प्रसङ्ग में शास्त्रीय प्रमाणों से काम न लेकर आपने ठठोल-बाज़ी बहुत की है, अतः हम को अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं॥